* श्री *

दीर्घायु

लेखक :—

गणेशदत्त शर्म्मा गौड़ ।

प्रकाशक —

रिखबदास वाहिती,

प्रोप्राईटर :—"दुर्गा प्रेस" और

आर० डी० वाहिती एण्ड को०,

नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता ।

प्रथम बार — सन् १९२४ — मूल्य २॥) रेशमी ३)

प्रकाशक :—
रिखबदास वाहिती,
आर० डी० वाहिती एण्ड को०,
नं० ४, घोरबगान, कलकत्ता।



मुद्रक—
रिखबदास वाहिती
"दुर्गा प्रेस"
नं० ४, घोरबगान,
कलकत्ता।

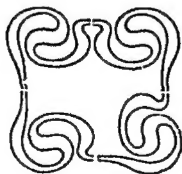


वक्तव्य.

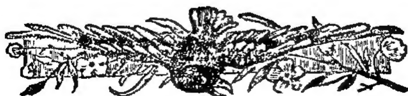
हिन्दीमें यद्यपि अन्यान्य विषयोंकी अनेकानेक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, परन्तु सबसे आवश्यक आरोग्यता सम्बन्धी विषयपर लोगोंका बहुत ही कम ध्यान है। जब शरीर ही आरोग्य नहीं, मन शान्त नहीं तथा देह दिनो-दिन दुर्बल, मस्तिष्क शक्तिहीन, बलहीन होता जा रहा है और होता जायगा, उस अवस्थामें अन्य विषयोंका मनन तो अत्यन्त ही कठिन है। भारत इस समय दरिद्रताके जैसे चक्रमें पडा है, रोगने भी उसी तरह इसको घेर रखा है। लोग अपनी गाढी कमाईका अधिकाश वैद्य डाक्टरोंकी जेबमें डाल देते हैं, तिसपर भी सुख नहीं है, तिसपर भी आरोग्यता नहीं प्राप्त होती और इतनेपर भी दीर्घायु या वह आयु, जिसे काल मृत्यु, कह सकें, नहीं प्राप्त होती। थोडे ही दिनोंमें लोग इहलीला सवरण कर परलोक पयान कर जाते हैं। घर घरमें इसी कारण से हाहाकार मच रहा है—विलापकी ध्वनि सुन पड रही है। अत यह परमावश्यक है, कि लोगोंका उनका सबसे आवश्यक

विषय, अवश्य बता और समझा दिया जाये। दरिद्र भारतके लिये वैद्य डाक्टरोंकी जेब भरना, भूखों मरनेकी निशानी है—अपने हाथों अपने पैर कुल्हाडी मारना है। इसीलिये, हमने बड़े परिश्रम और खोजसे, प्रमाण, चित्र तथा नियमों सहित, यह पुस्तक लिखवाकर प्रकाशित की है, जिसमें सरल उपायों द्वारा, बिना विशेष व्यय किये, बिना अधिक झंझट उठाये, प्राकृतिक नियमों द्वारा ही, जन साधारण वह आरोग्यता प्राप्त कर सकें और उस दीर्घ जीवनका आनन्द उपभोगकर सकें जो वास्तविक जीवन कहलाता है। आशा है, कि हमारे प्रेमी पाठक इस पुस्तक पर भी अपनी वही कृपा दरसायेंगे, जो अन्य पुस्तकोंपर दिखाते आये हैं।

भवदीय—
रिखबदास बाहिती,
प्रकाशक।



विषय-सूची



चित्र-सूची

विषय— पृष्ठ—



आत्म-शासन

आत्मा और इस स्थूल शरीरका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। आत्मशून्य शरीरका होना न होना समान है। अतएव शरीरको स्वस्थ और दीर्घायु बनानेके लिये सबसे पहिले आत्म-शासनकी महान् आवश्यकता है। इस जगतमें शासन कई प्रकारके हैं (१) प्रभु शासन, (२) राज-शासन और (३) जाति शासन, ये तीन शासन ही प्रबल शासन कहे जा सकते हैं। सर्वेश्वर जगन्नियन्ताका शासन ही सर्वाङ्गपूर्ण है। यह शासन सर्वतोपरि है—इसके अधीन यह अखिल विश्व है। हमारे राजा महाराजा सम्राट्के अधीन हैं, परन्तु वह प्रभावशाली प्रतापी सम्राट भी उस "प्रभुशासन" के सन्मुख अपना सिर झुकाता है। प्रभु शासन जीवित और जागरित है—उसके शासनमें ऊँच-नीच, छोटे बडे, राव रङ्क, और मूर्ख विद्वानका कोई ध्यान नहीं है। वहाँ तो केवल न्याय होता है और कर्मोंके अनुसार फल दिया जाता है। संसारके बडेसे बडे प्राणीकी शक्ति नहीं जो इस प्रभु शासनका निरादर कर सके—यही उसकी असीम शक्तिका प्रमाण है।

इस शासनमें ईश्वरके दो प्रबल नियम कार्य करते हुए दृष्टि-गोचर होते हैं (१) ऋत और (२) सत्य। इन दोनों नियमोंका

कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता। इन्हीं दो नियमोंके आधार-पर यह शासन इतनी सुगमता और शान्ति-पूर्वक चल रहा है कि इसके विपरीत कोई कभी जा ही नहीं सकता। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि ब्रह्मचर्यके समय प्राणीने ब्रह्मचर्यकी रक्षा न करते हुए अपना वीर्यपात करना आरम्भ कर दिया तो इस नियमोल्लघनका दण्ड उसे जवानीमें कष्ट और अल्पायु-रूपमें अवश्य भोगना पडेगा—यह अटल नियम है। मान लीजिये, कि आप नियमोंको लाँघते हुए भूखसे अधिक भोजन पेटमें ठूंस गये तो उसका दण्ड आपको अजीर्ण, कब्ज, अतिसार, सग्र-हणी आदि किसी न किसी रोगके रूपमें अवश्य ही भोगना पडेगा। यदि आपने अधिक अपराध किये होंगे तो दण्ड भी कठोर होगा और यदि कम किये होंगे तो फल भी कम होगा—क्योंकि इस "प्रभु-शासन" में न्याय होता है। सम्भव है कि कभी कभी ईश्वरीय नियमोंको न माननेका फल आपको प्रत्यक्ष रूपमें नहीं दिखाई दे परन्तु सूक्ष्म-दृष्टिसे यदि आप देखेंगे तो आपको मालूम हो जावेगा। इसीलिये महात्माओंने इस प्रभु-शासनको सर्वोपरि शासन माना है।

इस प्रभु शासनके पश्चात् दूसरा नम्बर राज शासनका है। जिस प्रकार प्रभु-शासनमें मनुष्यको ईश्वरके नियमोंका पालन करना पडता है, उसी तरह राज-शासनमें राजाके बनाये नियमोंके अनुसार ही मनुष्यको कार्य करना पडता है। उस अखिल विश्वके स्वामीके पश्चात् यदि दूसरा नम्बर किसीका है

तो वह राजाका कहा जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने श्रीमुखसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनको कहा है—

"नराणाञ्च नराधिपम्" (अ० १० श्लो० २७)

कि "मनुष्योंमें राजा उस परमात्मदेवका प्रतिनिधि है।" जिस तरह प्रभुशासनके नियमोंका पालन करना आवश्यक है, प्राय: इसी तरह राजशासनके नियमोंको भी मानना पडता है। इस "प्राय" शब्दसे हमारा तात्पर्य्य यह है कि प्रजाहितकारी अच्छे नियमोंको ही मानना चाहिये न कि प्रजा पीडक कानूनको। परमात्माके शासनके कानून कायदे निश्चय, अव्यय, अक्षर और सनातन हैं। उनमें रद्दोबदल करनेकी आवश्यकता ही नहीं पडती क्योंकि वह कानून तो उस सर्वज्ञकी रचना हैं जिसने इस अखिल ब्रह्माण्डको रचकर अपनी पूर्णता हम अल्पज्ञोंको दिखायी है। मानवी बुद्धि अल्प होनेके कारण राजशासनके नियमोंमें सृष्टिके आरम्भसे हेर फेर होते आ रहे हैं और प्रलय पर्य्यन्त इस प्रकार परिवर्तन होते रहनेपर भी वह पूर्णता नहीं पा सकेंगे। यहाँ इस विषयपर लिखनेका सारांश यह है, कि मनुष्य जिस प्रकार प्रभु-शासनमें बँधा हुआ है, ठीक उसी तरह राजशासनमें भी जकडा हुआ है। चोरी आदि अपराधोंके करनेसे राजा दण्ड देता है—इस भयसे ही मनुष्य सदाचारी बना रहता है। इस शासनका यही बडा भारी लाभ है। जहाँका राज शासन शिथिल होता है, वहाँ पाप बढ जाता है और जहाँ

"वह ईश्वर हम सबोंका रक्षक, माता, पिता, भाई, मित्र आदि है।" इन मन्त्रोंसे स्पष्ट है कि माता, पिता, भाई, मित्र, रक्षक आदिसे डरनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। परमात्माके साथ पिता, भाई और मित्रका सा व्यवहार रखना चाहिये—भयभीत होनेकी जरूरत ही क्या है? जो दुराचारी हैं, उन्हें अवश्य डरना चाहिये क्योंकि वे अपने कर्त्तव्यसे पतित हो चुके हैं। जो धीर वीर मनुष्य होते हैं वे शासन सुधारके समय ऋत और सत्यका ध्यान रखते हुए निर्भय होकर काम करते हैं। सदाचारका और निर्भयताका बडा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहाँ निर्भयता है, वहीं सदाचार है और जहाँ सदाचार है, वहीं दीर्घायु है। निर्भयता ही अमरत्व है और भय ही मृत्यु है। जो डरता है, वही मरता है। अर्थात् सदाचारी बनकर सबको निर्भय होना चाहिये किन्तु सदाचार-सम्पादनके लिये आत्म शासनका होना सर्व प्रथम आवश्यक है।

बाहिरी डरोंसे डरकर जो मनुष्य सदाचारी बनता है वह व्यक्ति उस डरके हट जानेसे शीघ्र ही दुराचारमें प्रवृत्त हो जाता है। नास्तिक विचारोंके होनेसे ईश्वरके अस्तित्वमें सन्देह हुआ कि "प्रभु शासन" का भय जाता रहा। इसी प्रकार अन्यान्य भयोंके हट जानेपर मनुष्यका दुराचारोंसे बचना अत्यन्त कठिन है। इसीलिये योगशास्त्रमें कहा है कि "आत्म-शासन द्वारा अपनी शुद्धि करनी चाहिये!" अपने ही स्वीकृत नियमों द्वारा अपनी शुद्धि, पवित्रता और पूर्णताका नाम

"आत्म शासन" है। इसमें किसी बाहिरी भयका लगाव नहीं हैं किन्तु प्रबल "आत्मिक इच्छा-शक्ति" द्वारा आत्मोन्नति करनेका भाव इसमें मुख्य होता है। नास्तिक व्यक्ति भी आत्म शासन द्वारा श्रेष्ठ बन जाता है—अराजक मनुष्य भी आत्म शासन द्वारा राजभक्त बन सकता है—जाति सम्बन्ध तोड़नेवाला भी आत्म शासन द्वारा दुष्कार्योंसे बच सकता है, "क्योंकि इसमें अपना शासन अपने ही ऊपर होता है।" यही कारण इसकी उत्तमता और सर्वश्रेष्ठताका है। जो लोग अपनी दीर्घायु चाहते हैं, उन्हें सबसे प्रथम आत्म-शासन करना सीखना चाहिये। जो आदमी अपने आत्मापर अथवा शरीरपर ही अपना अधिकार नहीं रख सकते हमारे विचारसे तो वे मनुष्य कहलानेके अधिकारी ही नहीं हैं। आजकल हमारे देशमें "स्वराज्य" का आन्दोलन खूब ही जोरोंपर है। किन्तु, उसमें सफलता मिलना तबतक असम्भव है जबतक कि हमारे देशबन्धु आत्मशासन करना न सीख लेंगे। जो आत्मशासन नहीं कर सकते, ऐसे व्यक्ति "स्वराज्य" के लिये लडते झगडते हैं, वे लोग, हमारे विचारसे, देशको और भी सङ्कटमें देखना चाहते हैं। अस्तु,

"आत्म शासन" मनुष्यके लिये कोई कठिन बात नहीं है, चाहिये प्रबल आत्मिक इच्छा-शक्ति! इसके बिना आत्मशासन कदापि नहीं हो सकता। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि तमाखू पीना बड़ी ही बुरी आदत है। इस बातको

पीनेवाले खूब अच्छी तरह जानते हैं—लेकिन उनसे छोडी नहीं जाती! अर्थात् उनमें आत्म-शासन करनेकी शक्ति नहीं है। वे शक्तिशून्य हैं—निर्बल हैं—नामर्द हैं। हमने कई मनुष्योंसे तमाखू पीना छुडाया है जिनमें कई तो इतने दुर्बल हृदय निकले जो कुछ दिन छोडकर फिर उसका सेवन करने लग गये। और कई ऐसे प्रबल विचारोंके भी निकले जिन्होंने उसे स्पर्श तक भी नहीं किया! ऐसे लोग आत्म शासन कर सकनेवाले कहे जा सकते हैं। जो लोग आत्मशासन करनेमें असमर्थ हैं। वे दीर्घजीवी नहीं हो सकते—उनके लिये रातदिन मृत्युपाश खुला हुआ है। अतएव प्रबल आत्मिक इच्छाशक्ति द्वारा आत्मशासन करना हरेक व्यक्तिको सीखना चाहिये—हमारे महात्मा पुरुषों, ऋषिमुनियों और ब्रह्मज्ञानियोंने दीर्घायु-पानेका यह मूलमन्त्र अपने अनुभव द्वारा हमें बताया है।

"आत्म-शासन" में अपने दृढ निश्चयकी आवश्यकता है। सदाचार और उन्नतिके नियम और अभ्युदयका मार्ग आप स्वय निश्चित कीजिये अथवा दूसरोंसे सीखिये, नहीं तो सद्ग्रन्थोंसे ढूँढ निकालिये और उन नियमोंके अनुसार चलनेका अत्यन्त दृढ निश्चय कर लीजिये। "आत्मशासन" की यही संक्षिप्त व्याख्या है। दूसरोंके बनाये नियम जबरदस्तीसे अथवा भयसे अपनी इच्छाके विरुद्ध होते हुए भी पालन किये जाते हैं परन्तु इस आत्म-शासनके नियम स्वय बनाकर किंवा स्वीकार करके किसी दूसरेके भयसे भयभीत न होते हुए



पूर्ण निर्भयताके साथ उत्तम रीतिसे पालन करने पडते हैं, इसमें यही उत्तमता है।

"आत्मैव ह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मन।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमव साधयेत्॥ गीता अ० ६।५

आत्माको आत्मासे ही रोको किन्तु उसे अवनतिकी ओर न जाने दो, क्योंकि आत्माका आत्मा ही बन्धु और शत्रु है। मनुष्य स्वयं ही अपना भाई और स्वय ही अपना शत्रु होता है। जो अपनी परीक्षा करके दृढ़ निश्चयसे पुरुषार्थ करता है वह उद्योगशील मनुष्य स्वय ही अपना बन्धु है, परन्तु वह अकर्मण्य मनुष्य जो अपनी उन्नतिके लिये कुछ भी नहीं करता और दैवके भरोसे आलसी बनकर अपना जीवन व्यतीत करता है, वह स्वय ही अपना शत्रु है। इस ससारमें अज्ञानके कारण उतनी हानि नहीं हो रही है, जितनी कि आलस्यके कारण प्राय प्रतिशत निन्यानवे मनुष्य शरीरमें पुरुषार्थ होने-पर भी उसका उपयोग नहीं करते। ये आलसी न तो अज्ञानी ही होते हैं और न उद्यमके लिये बिलकुल असमर्थ ही होते हैं, किन्तु सुस्त होते हैं और हाथपर हाथ रखे बैठना पसन्द करते हैं, यह एक निराशावादी दल है जो भाग्यके सामने पुरुषार्थको तुच्छ समझता है। भारतमें ऐसे सुस्त मनुष्योंकी एक बडी भारी सख्या है। ये भाग्यके लिखे हुए पर इतने अध विश्वासी होते हैं कि बहुत समझानेपर भी इनके मस्तिष्कसे यह विचार नहीं निकाले जा सकते। ऐसे पुरुष

अधार्मिक और अज्ञानी कहे जा सकते हैं। मृत्यु—जिसे सब-लोग अटल और भाग्यमें लिखी हुई मानते हैं, वह भी पुरुषार्थ द्वारा दूर हटाई जा सकती है अर्थात् दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है। देखिये वेदमें लिखा है—

"पुरुष अत. उत्क्राम। मा अवपत्था। मृत्यो पड्वीश अव मुञ्चमान•।"

"O man! rise up from this place' sink not downward, casting away the bonds of death that hold thee

हे मनुष्य! उन्नत होओ गिरो मत, मृत्युके पाशोंको तोड डालो। और देखिये—

"प्राणेनात्मन्वता जीव मा मृत्योरुदगाद्वशम्।"

Submit not to the power of death.

अर्थात्—मृत्युके वशमें मत जाओ! यह आज्ञा अत्यन्त स्पष्ट है और यह बताती है कि यदि मनुष्य उचित रीतिसे प्रयत्न करेगा तो मृत्युको भी हटा सकेगा। जो लोग कहते हैं कि आयु घट बढ नहीं सकती, वे भूल करते हैं। जिसका मन बल-वान होगा, वही निश्चय पूर्वक मृत्युको जीत सकेगा। मृत्युपर विजय पाना निर्बल हृदयके वशकी बात नहीं हैं। पाठको! मनमें बल करो—अपनेको दीन हीन मत समझो। याद रखो तुम्हारे आत्मामें मृत्युको जीतनेकी महान शक्ति मौजूद है।

"उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्यवरान्निबोधत।" कठ—३—१४

खड़े हो, जागो और श्रेष्ठोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। और फिर इसके बाद—

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा ।

एवम् त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।"

यजु० ४०।२

खूब पुरुषार्थ करते हुए ही यहाँ सौ वर्ष जीवित रहनेकी महत्वाकांक्षा मनमें रखनी चाहिये। ये भाव तेरे मनमें रहें इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। पुरुषार्थसे मनुष्यको दोष नहीं लगता। वेद कहता है—

"मा पुरा जरसो मृथा ॥" अथर्व ५।३०।१७

"(जरस) वृद्धावस्थासे (पुरा) पहिले (मा मृथा) मत मर।"

"नवप्राणान्नवभि: सं मिमीते दीर्घायुत्वायशत शारदाय।"

अथर्व ५।२८।१

अर्थात्—वेदमें ऐसे सैकड़ों मन्त्र हैं जिनमें सौ वर्षतक और इससे भी अधिक जीवित रहनेका उपदेश है। द्विजोंकी सन्ध्योपासनामें—

"पश्येम शरद: शत जीवेम शरद: शत ॐ श्रृणुयाम शरद: शत प्रब्रवाम शरद: शतमदीनास्याम शरद: शत भूयश्च शरद: शतात्

यजु० ३६। २८

यह वेद मंत्र है जिसका अर्थ यह है कि "हम सौ वर्षतक देखें, अर्थात् हमारे नेत्रोंकी शक्ति सौ वर्षतक न बिगड़े। सौ वर्षतक जीते रहें। सौ वर्षतक सुनें अर्थात् कर्णेन्द्रिय

रखनेपर पहिली चार अवस्थाएँ दीर्घकालतक रहती हैं। इस उदय और नाशके बीचके संयमका नाम ही आयु है। इन्हें दीर्घकालतक स्थिर रखना, न रखना मनुष्यके हाथमें है। इनमेंसे भी खासकर संवर्द्धन और परिपोष, इन दोनों अवस्थाओंको यथाशक्तिदीर्घ कुछ कालतक सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। दीर्घायुष्य इन दोनोंपर ही अवलंबित है। इन दोनों अवस्थाओंको चिरस्थायी रखनेके लिये "ब्रह्मचर्य्य" की परमावश्यकता है—इस विषयपर हम आगे चलकर एक स्वतंत्र लेख लिखेंगे उसमें पाठकोंको "ब्रह्मचर्य"का महत्व अच्छी तरह समझाया जावेगा।

परमात्माके नियम ऐसे प्रबल हैं कि वे किसीकी भी पर्वाह नहीं करते—वे स्वयम्सिद्ध हैं। यदि आप नियमानुकूल व्यवहार करेंगे तो आपकी दीर्घायु हो सकेगी अन्यथा अल्पायु तो बनी बनायी है ही। स्वच्छ वायुके सेवनसे दीर्घायु और तंग मकानमें रहनेसे अल्पायु अवश्य होगी। ब्रह्मचर्य्य पालन करनेसे पुरुषार्थ और उत्साह बढ़ेगा तथा वीर्यपात करनेसे उत्साहशून्यता, निर्बलता आदि सैकड़ों विकारोंका होना स्वयम्सिद्ध है। ईश्वरीय नियमोंके तोडनेसे उसको प्रायश्चित्त भोगना ही पडता है। पापी अर्थात् प्राकृतिक नियमोंके तोडनेवालोंको अपने समाजमें, जातिमें, अथवा पडोसमें देखिये और फिर उनकी अधोगतिपर विचार करनेके पश्चात् स्वयं शिक्षा ग्रहण कीजिये।

"आत्म शासन" में स्वावलम्बन औ
है। दूसरा भले ही आपका शुभचि
उसपर अवलम्बित रहेंगे तबतक अ
पराधीनता ही दुःखका कारण है और
किसी कविने कहा भी है—

"पराधीन सुख सपने
करि विचार देखहु मन

इसलिये स्वावलम्बन कीजिये।
आगे बढनेका उद्योग कीजिये। तत
और सूर्यकी भाँति अपने उदय द्वारा दु
आजकल "परोपदेशे पाण्डित्यं" कहाव
असंख्यों मनुष्य हैं किन्तु स्वयं तदनुस
इस समय अमावसा ही है। एक कवि

"पर उपदेश कुशल
जे आचरहिं ते नर न

आत्मशासनके लिये सबसे प
आवश्यकता है, क्योंकि बिना बलके श

मृत्युके साथ युद्ध करके विजयी हो सकता है। इच्छा और आत्मविश्वासके न होनेसे ही विविध विघ्न बाधक होते रहते हैं—उनके रहते हुए जो विघ्न आते हैं उनसे उलटी आत्मशक्ति बढ़ जाती है। जो लोग इच्छा शक्तिके महत्वपर विश्वास नहीं करते, उन्हें उपनिषदोंके निम्न कथन ध्यानसे पढ़ने चाहिये।

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, नान्यत् किंचन
मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति॥"

ऐ० उ० १। १

"सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
तदैक्षत बहुस्या प्रजायेयेति॥" छा० उ० ६। २। ३

इस जगतके आरम्भमें एक आत्मा थी, दूसरा गतिशील कुछ भी नहीं था। उस आत्माने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊँ, तब वह केवल अपनी इच्छाशक्तिसे ही बहुत बन गयी। उपनिषद्का यह उपदेश आत्मिक इच्छाशक्तिके असीम बलको बता रहा है। हमारी आत्मामें ऐसी महान शक्ति है जिसके द्वारा संसारमें कुछ भी असंभव नहीं है। अतएव इस इच्छाशक्तिके प्रभावका अनुभव करके देखना चाहिये। आप देखेंगे कि इस संसारमें इच्छाशक्ति कैसे कैसे विलक्षण कार्य कर रही है। आजसे ही आप अपनी इच्छाशक्ति बलवती बनाइये—किन्तु स्मरण रखिये कि संशयको स्वप्नमें भी स्थान न दिया जाये। जहाँ मनमें संशयने जगह पा ली वहाँ सफलताकी आशा त्याग देनी चाहिये। संशयरहित प्रबल आत्मिक

इच्छाशक्ति द्वारा ऐसे ऐसे असम्भव काम भी होते देखे गये हैं, जिनका जनताको स्वप्नमें भी सफल होनेकी आशा नहीं थी—यह हमारा निजी अनुभव है। संशय ही शक्तिका घातक है और दृढ़ विश्वास ही बलवर्द्धक महौषधि है। जहा बल है, वहीं आत्मशासन भी है और जहाँ आत्मशासन है। वहीं अमरत्व है।

मनुष्यके सारे पुरुषार्थ उसकी इच्छाशक्तिपर ही अवलम्बित हैं, अतएव दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको संदेह-रहित प्रबल आत्मिक इच्छाशक्तिको बढाना चाहिये। इच्छा-शक्ति बढानेके लिये तर्क-बुद्धिकी हमेशा जरूरत है। कुछ लोग ऐसे हैं जो अज्ञानताके कारण तर्कको बुरा समझते हैं ऐसे लोग "लकीरके फकीर हैं" यदि तर्क कोई बुरी वस्तु ही होती तो तर्क शास्त्रकी आवश्यकता ही नहीं थी। तर्क द्वारा विचार करके यह निश्चय कर लीजिये कि हमें अमुक कार्य्य करना है—तर्क द्वारा अपने सन्देहोंको पहिले हटा दीजिये। यदि आप स्वयं तर्क द्वारा अपना निश्चय करनेमें असमर्थ हैं तो किसी बुद्धिमान पुरुषके उपदेशानुसार कार्य करनेके लिये मनमें दृढ निश्चय कर लीजिये। जिन्होंने इच्छाशक्ति द्वारा कार्योंमें सिद्धि प्राप्त की है, ऐसे महात्माओंका आदर्श चरित्र अपने सामने रखिये और तदनुसार आचरण कीजिये—आप भी वैसे ही महापुरुष बन जावेंगे।

उदाहरणके लिये "सूर्योदयसे पहिले उठना चाहिये या नहीं?"

इस विषयपर विचार करना है। अब सबसे पहिले यह देखिए, कि हमारे धर्म-ग्रन्थोंकी क्या आज्ञा है? वेद कहता है—

"अग्ने विवस्वदुपसश्चित्र ॐ राधो अमर्त्य। आदाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवा ॐ उषर्बुधः।" साम०

स्मृतियोंमें लिखा है—

"ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौचानुचिन्तयेत्।"

इसके अतिरिक्त प्रभुशासनका नियम भी यही है। आजतक जितने भी दीर्घायु, महात्मा, विद्वान, बुद्धिमान, बलवान, ऋषि मुनि हो गये हैं, वे सूर्योदयके पूर्व उठकर अपने नित्य-कृत्योंमें लग जाते थे। जो लोग उषा कालमें निद्रा त्यागकर उठते हैं—उपासना करते हैं, उनकी वृत्ति बडी शान्त बन जाती है। इस प्रकार प्रत्येक बातपर विचार करनेके पश्चात् उसे करनेका पक्का निश्चय कीजिये। आपने यदि अपनी उन्नतिको तकदीरके भरोसे छोड दिया तो आपकी अधोगति होगी, इसे निश्चय समझ लीजिये और यदि प्रयत्न किया तो निस्सन्देह आप जो चाहेंगे वही कर सकेंगे। इसलिये दृढ़निष्ठाके साथ साथ आप आत्मशासन करनेका पका विचार कीजिये।

यहाँपर यह प्रश्न उठ सकता है कि "आत्मशासन" किस रीतिसे अथवा किस युक्तिसे किया जावे? उत्तरमें हमारा निवेदन है, कि "अपनी प्रबल आत्मिक इच्छा-शक्तिकी प्रेरणासे ही कार्य होगा, अन्य कोई युक्ति नहीं है। आजकल लोग इतनी नीच अवस्थामें पडे हुए हैं, इसका कारण मूर्खता नहीं है,

बल्कि इच्छाशक्तिकी निर्बलता है, जिसके कारण लोग आलसी और अकर्मण्य बने हुए हैं। इस बातको कौन नहीं जानता कि ईश्वरोपासनासे मनको शान्ति और आनन्द मिलता है परन्तु ऐसे कितने लोग हैं जो नियमसे उपासना करते हैं? इसका उत्तर शून्य ही कहा जा सकता है। साराश, यह कि आप अपनी इच्छाशक्तिको एकत्र कीजिये। उसे फालतू और व्यर्थके पचीसों कार्य्योंमें विभक्त करके उसका अपव्यय न कीजिये। यही दीर्घायु होनेका सरल और सुगम मार्ग है। अभ्यास और वैराग्य ही इस उद्देश्यकी सफलताके मूल मन्त्र हैं अभ्यासका अर्थ दृढतापूर्वक सतत उद्योग करना, तथा वैराग्यका अर्थ अपने उद्देश्यके अतिरिक्त अन्य कार्य्यों की ओर न जाना। यही अभ्युदयका एकमात्र उत्तम मार्ग है—

"अभ्यासवैराग्याभ्या तन्निरोध·।" योगदर्शन १। १२

अर्थात्—अभ्यास और वैराग्यसे मनोवृत्तियोंका निरोध होता है। यह महामुनि पातञ्जलिका उपदेश है—गीतामें भी श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनको यही उपदेश किया है। अभ्यास करनेसे कार्य्यकी सिद्धि होती है। एक बारके अभ्यास द्वारा सफलता न मिले तो पुन· पुन प्रयत्न करनेसे अवश्य सफलता मिलती है। हम लोगोंमें यह बडा भारी दोष है कि एक बारके प्रयत्नपर यदि सफलता न मिली तो फिर उसे सर्वथा छोडकर बैठ जाते हैं—ऐसा नहीं करना चाहिये। बारम्बार प्रयत्न करनेका अभ्यास डालना चाहिये—फिर आप देखेंगे

आप पूर्ण उन्नतिपर कितनी शीघ्रतासे पहुँचते हैं। "वैराग्य शब्दका अर्थ आजकलके धूर्त वैरागी नामधारीसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता है और न नचवस्त्र पहिनने, बाल बढ़ाने, मूंड मुड़ाने, लङ्गोटी कसने, राख चढ़ाने और गाँजे चरसका दम लगानेसे ही हैं। वास्तवमें वैराग्यका अर्थ है, अन्य बातोंकी ओर ध्यान न देना—विषयोंसे दूर रहना, जो कार्य करना है, उसीमें संलग्न रहना और उसके अतिरिक्त अन्य कार्योंसे उदासीन रहना। उदाहरणार्थ मान लीजिये, कि हमें वेदका स्वाध्याय करना है। फिर उसीमें प्रीति रखकर, इससे भिन्न जो अन्य अध्ययन हैं, उनके लिये उदासीनता रखना इसीका नाम वैराग्य है। विचार और अनुभव द्वारा पता लग सकता है कि अभ्यास और वैराग्य द्वारा सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं और इच्छाशक्ति बलवती हो जाती है।

समय और परिस्थितिके गुलाम बनकर अपनी जीवन नौकाको इस संसार महोदधिमें चलाना अपनी निर्बलताका सूचक है। पुरुषार्थी मनुष्य निर्भय होते हैं और उनमें समय तथा परिस्थितिको अपने अनुकूल करनेकी शक्ति होती है। पुरुषार्थी मनुष्यके सामने जो विघ्न आते हैं वे उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते, प्रत्युत उसकी शक्तिको बढ़ानेमें सहायक होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मणके सप्तम पञ्चिकामें पुरुषार्थपर बहुत कुछ लिखा हुआ है। मनुष्य अपनी उन्नति बिना पुरुषार्थके कदापि नहीं कर सकता, यह एक सनातन सिद्धान्त है। महाराज

हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितको पूर्व समयमें इन्द्रने उपदेश किया कि—

"नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शश्रुम। पापो
नृषद्वरोजन। इन्द्र इच्चरतः सखा।
चरैवेति चरैवेति ॥१॥" (महीदासकृत ऐतरेय ब्रा०)

"हे राजपुत्र रोहित! (अश्रान्ताय) जो परिश्रम द्वारा नहीं थकता, ऐसे सुस्त मनुष्यके लिये (श्री) धन सम्पत्ति, ऐश्वर्य, बल, प्रभुता आदि (न अस्ति) प्राप्त नहीं होता। (इति शुश्रुम) ऐसा हम सुनते आये हैं (नृषद्वर जन) जो मनुष्य आलसी होता है, वही (पाप) पापी होता है (इत) निश्चयसे (इन्द्र) प्रभु (चरत सखा) उत्साही मनुष्यका मित्र हैं। इसलिये (अतएव) पुरुषार्थ करो।" जो सुस्त मनुष्य सोता रहता है, उसे आप पापी समझिये। अकर्मण्यता, सुस्ती, निरुद्योगता, ढीलापन, आलस्य, निकम्मापन, और आरामतलबी आदि ही पाप हैं। जो निकम्मा रहता है वही पापी होता है। पुरुषार्थ करना ही पुण्य है। जो महान् प्रयत्न करते हैं वे ही पुण्यात्मा और धर्मात्मा मनुष्य हैं।

"इन्द्र इच्चरत सखा।"

"God helps those who help themselves"

ईश्वर प्रयत्नशील पुरुषोंकी ही सहायता करता है और अकर्मण्योंको शाप देता है, अतएव प्रत्येक मनुष्यको पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। पुरुषार्थ करनेवालेकी आत्मामें आत्म-विश्वास होता है और उसमें आत्मशासन करनेकी महान्

शक्ति भी होती है। मैं आत्मोन्नति अवश्य करूंगा, ऐसा विश्वास प्रयत्नशील मनुष्यके अन्त.करणमें सदा रहता है। पुरुषार्थी कभी हताश और निरुत्साही नहीं होता—सदैव अपने प्रयत्नकी धुनमें मस्त रहता है और अन्तमें फलको प्राप्त कर लेता है—उसे अपने प्रयत्नका मधुर फल मिल जाता है।

"आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठ'त.।
शेतेनिपद्यमानस्य चराति चरतो भग.
चरैवेति चरैवेति ॥"

(आसीनस्य) जो बैठा रहता है उसका (भग.) ऐश्वर्य्य (आस्ते) बैठा रहता है। (तिष्ठत) जो खडा रहता है उसका ऐश्वर्य्य भी ऊपर खडा रहता है। (निपद्यमानस्य) जो सोता रहता है उसका ऐश्वर्य भी (शेते) सो जाता है। और (चरत भग·) पुरुषार्थ करनेवालेका ऐश्वर्य्य (चरति) उसके साथ साथ चलता है। इसलिये (चरएव) पुरुषार्थ करो, अवश्यमेव पुरुषार्थ करो।" जो मनुष्य पुरुषार्थ करते हैं उन्हें ही ऐश्वर्य, धन, प्रभुत्व, और दीर्घायु प्राप्त होती है—आलसी मनुष्यकी आयु रात दिन क्षीण होती रहती है। कविने कहा भी है कि—

"आलस्य हि मनुष्याणा शरीरस्थो महान्रिपु ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्य कृत्वानावसीदति ।" "भर्तृहरि"

आलस्य मनुष्योंके शरीरमें बडा भारी शत्रु विराजमान है। आलसी मनुष्य ऐश्वर्य्यका अधिकारी ही नहीं है। सोनेवालेका

धन भी सोता है। भाग्य आकर दे जावेगा, ऐसा कभी न तो हुआ है और न होगा। क्योंकि भाग्यके भरोसे बैठनेवालोंका धन और ऐश्वर्य भी सोता रहता है अतएव वह उनके पास पहुँच ही नहीं सकता।

"कलि शयानो भवति सन्निहानस्तु द्वापर ।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥
चरैवेति चरैवेति ॥"

(शयान) सोना ही कलियुग (भवति) है। (संजिहान.) आलस्य त्याग देना ही द्वापर है। (उत्तिष्ठन्) उठना त्रेतायुग और (चरन्) पुरुषार्थ करना ही सतयुग (संपद्यते) बन जाता है। इसलिये (चरएव) पुरुषार्थ करो, दृढ निश्चयसे पुरुषार्थ करो। जो लोग "समय" और परिस्थिति" को व्यर्थ दोष दिया करते हैं, उन्हें यह उक्त उपदेश ध्यानमें रखना चाहिये। आप चाहें जिस युगका आनन्द ले सकते हैं, यह आपके हाथकी बात है—दूसरोंको दोष देना अपनी ही भूल है। लोग कहा करते हैं कि यह कलियुग है, इसमें अन्य युगोंके समान आयु नहीं हो सकती। ऐसा कहनी ही कलियुग है। यह अकर्मण्य और अन्ध विश्वासियोंका कथन है। आलस्यमें पड़े रहकर सड़नेवालेके लिये तो सतयुग भी कलियुग है और जो कर्मवीर हैं उन्हें घोर कलियुग भी पवित्र सतयुगके समान है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि अपने अन्तःकरणको पुरुषार्थके उत्तम साँचेमें ढाल रखे

और कलियुगको अपने पुरुषार्थ द्वारा सतयुग बनाकर, सतयुगके अनुकूल अपना दीर्घायु बनावे।

"आत्मा" शरीर धारण करके कर्म करता है। उसका स्वभाव इस शब्दसे ही ज्ञात होता है। "अत् सातत्यगमने" इस धातुसे यह शब्द बना है। सततगमन, सततकर्म, सतत-पुरुषार्थ करना इस "आत्मा" शब्दका अर्थ है। यह आत्मा सततकर्म करनेवाला और शरीर उसके पुरुषार्थका साधन है। 'आत्मा' का दूसरा नाम "क्रतु" है। इसका अर्थ "कर्म" है। आत्माका स्वाभाविक धर्म ही कर्म करना है। "इन्द्र" भी इस जीवात्माका नाम है—क्योंकि यह कर्त्तव्यपरायण इन्द्रियोंका अधिपति है। जीवात्माको "शतक्रतु" भी कहते हैं क्योंकि सौवर्षतक इस शरीरमें रहकर कार्य करना इसका कर्त्तव्य है। जिस प्रकार आत्मा अर्थ सूचक शब्दोंका अर्थ पुरुषार्थ करना है, उसी तरह "मनुष्य" शब्दके अर्थ सूचक शब्दोंका भी यही अर्थ है—देखिये—

मनुष्य.—विचारशील, मनन करनेवाला।

नरः—नेता, अगुआ, लीडर (Leader)

धन —स्वामी बनकर उद्योग करनेवाला।

विश —जोखिमके तथा कठिन कार्यों में प्रयत्न करनेवाला।

कृष्टय
चर्षणय } नित्य प्रयत्न करनेवाला। सतत उद्योगी।

मातः—समूह बनाकर रहनेवाला, ऐक्य संपादन करनेवाला।

तुर्वश —शीघ्रतापूर्वक सबको वशमें रखनेवाला ।
आयु —दीर्घायु, पुरुषार्थद्वारा आयु वृद्धि करनेवाला ।
पूरव —पूर्णता करनेवाला ।
जगत —गतिशील, हलचल करनेवाला ।
पञ्चजना —पाँच तरहके लोगोंका सघ बनाकर रहनेवाले ।
विवस्वन्त —विशेष प्रकारसे रहने सहनेका प्रयत्न करनेवाला ।
पृतना —योद्धा, पुरुषार्थी, युद्ध करनेवाला ।

ये मनुष्य वाचक वैदिक शब्द स्पष्ट बता रहे हैं कि मनुष्यका धर्म पुरुषार्थ करना ही है न कि आलसी बनकर भाग्यके भरोसे बैठे रहना ? अतएव यदि आप मनुष्य हैं तो आलस्य त्यागकर पुरुषार्थ द्वारा मृत्युको धक्का मारकर दीर्घायु प्राप्त कीजिये ! आप पुरुष हैं, पुरुषार्थ करना आपका मुख्य धर्म है ।

आत्मविश्वास एक बड़ी विलक्षण शक्ति है। जो आत्म-विश्वासी नहीं हैं, वे आत्मघातकी हैं। आत्मघातकी लोग कभी भी दीर्घायु नहीं हो सकते ।

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता ।
तास्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनोजना ॥"

(यजुर्वेद ४० । ३)

आत्मघाती लोग अवनति पाते हैं, यह इस मन्त्रका भावार्थ है। अपने आत्मबलपर जिनका विश्वास नहीं है, वे लोग कदापि दीर्घायु नहीं हो सकते। जिस समय मनुष्यके

हृदयमें अपनी शक्तिके विषयमें सन्देह होता है, उसी समयसे उसकी शक्ति नष्ट होने लगती है। अभ्यास और वैराग्य द्वारा शक्ति बढ़ती है तथा संशय द्वारा निर्बलता बढ़ती है। आत्मविश्वासी सदा आनन्दित रहते हैं। आपत्तिमें उनका धैर्य्य बढ़ जाता है। दुःखके समय भी उन्हें सुखका अनुभव होता है। क्लेशोंसे भी आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ दूसरे लोग हताश हो जाते हैं वहीं आत्मविश्वासीके मुख-मण्डलपर उत्साह और तेज चमकने लगता है। जो विपत्ति दूसरोंके लिये अवनतिकारक होती हैं, वे ही आत्मविश्वासी मनुष्योंको आगे बढ़ानेमें सहायक होती हैं। जिन लोगोंमें आत्मविश्वास नहीं है, वे छोटी मोटी आपत्ति-विपत्तियोंको देखकर भयभीत हो जाते हैं और इस प्रकार अल्पायुमें ही इस लोकसे विदा हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि आप ही अपनी अधोगतिके कारण हैं—यदि चाहें तो आप कुछ मासके अभ्यास-द्वारा ही अपनी इस दशाको सुधार सकते हैं।

नश्व श्वमुपासीत। कोहिमनुष्यस्यश्वोवेद।

शतपथ ब्रा० २।१।३।६

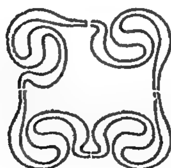
"कल करूँगा, ऐसा न कहिये, कौन जानता है कि कल क्या होगा?" इसलिये पवित्र कार्योंमें आलस्य करना और उन्हें कलपर छोड़ना पाप है। किसी कविने कहा है—

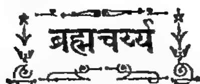
"काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पलमें परलय होयगी, बहुरि करेगो कब्ब॥"

शासनकी रीतिके अनुसार उद्योग करके अपना अभ्युदय किया और आप जहाँके तहाँ ही खड़े हैं! इस बातको आप अच्छी तरह अपने हृत्पटपर लिख लीजिये कि—"अपना भविष्य अच्छा या बुरा बनाना आपहीके अधीन है।" अतएव आप आजसे ही—

"बीती ताहि बिसार दे, आगेकी सुधि लेहु।"

पहिले हुआ सो हुआ, उसका पश्चात्ताप करनेसे कुछ भी लाभ नहीं है, किन्तु अब भविष्यमें अपनी उन्नतिके लिये आजसे ही उचित और आयुवर्द्धक नियमोंका पालन करनेका—पवित्र संकल्प कर लीजिये। ऐसा करनेसे आप निस्सन्देह दीर्घायु होंगे इसपर आप निश्चयपूर्वक विश्वास रखिये।





ॐ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत.
इन्द्रोहब्रह्मचर्येण देवेभ्य स्व १ रा भरत् ॥ १६ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ॥
आचार्यो ब्रह्मचर्य्येण ब्रह्मचारिणमिच्छति १७ ॥
अथर्व ११ । ५ ।

अर्थ—"ब्रह्मचर्य्यरूपी तप द्वारा सब देवताओंने मृत्युको दूर किया। ब्रह्मचर्य्य द्वारा ही इन्द्र देवताओंको तेज देता है। ब्रह्मचर्यरूपी तपके साधनेसे राजा राष्ट्रका पालन करता है।" ह० वेदका उक्त मंत्र हमें यह स्पष्ट कह रहा है कि यदि मृत्युपर विजय प्राप्त करना है तो प्रथम ब्रह्मचर्य्यरूपी महान् तपका अनुष्ठान करो। अथव वेदके ग्यारहवें काण्डमेंके पाँचवें सूक्तमें २६ मंत्र हैं, वे सब ब्रह्मचर्य्य विषयक हैं—यह सूक्त ही ब्रह्मचर्य-सूक्त है। यहाँ हमारे पाठकोंको देवता शब्द अवश्य ही संदेहमें डालेगा। क्योंकि आजकल मनुष्योंमें आत्म विश्वासके न रहनेसे वे देवताको कोई अद्भुत वस्तु समझते हैं और मनुष्यसे अलग ही कोई योनिविशेष मानते हैं। उनका ऐसा निश्चय विश्वास है कि देवता किसी लोकविशेषमें रहते हैं और मनुष्य देवता नहीं बन सकता इत्यादि। ये सब बातें आत्मविश्वासहीन—दुर्बलहृदय मनुष्योंकी हैं। इस विषयपर

आरम्भ करेगा, वह उससे चौगुनी आयुके लगभग ही जीवित रह सकेगा। मान लीजिये कि एक व्यक्तिने अपना वीर्य चौदह वर्षकी उम्रसे ही खर्च करना आरम्भ कर दिया तो वह १४×४ =५६ वर्षसे अधिक उम्र नहीं पा सकेगा। सारांश यह, कि जिसे जितना दीर्घायु चाहिये वह उतना ही अधिक अखण्ड ब्रह्मचर्य तपका अनुष्ठान करे। स्त्री प्रसङ्ग द्वारा ही वीर्यनाश होता है, ऐसा मानना भूल है। हमारे कई नासमझ भाई अपनी बहुत छोटी उम्रमें ही हस्तक्रिया, गुदमैथुन आदि कई बुरी बुरी आदतों द्वारा अपना वीर्य खर्च करने लगते हैं। यह अपने पैरों आप ही कुल्हाड़ी मारना है—यहींसे अल्पायुका भयङ्कर सूत्रपात है। जवानीके पूर्व मरनेवाले मनुष्योंकी संख्याका भारतमें बढ़नेका एकमात्र यही कारण है। लोग कोषकी पूर्णताके पूर्व ही उसमेंसे खर्च करने लगते हैं—भला ऐसी दशामें सिवाय दीवालेके और क्या हो सकता है? देखिये शुश्रुत सूत्रस्थानमें लिखा है—

"शरीरमें धातुओंकी वृद्धि १६ से लगाकर २५ वर्षकी उम्रतक होती है। २५ वें वर्षसे यौवनकी प्राप्ति होती है और २५ से ४० वर्षकी उम्रतक यौवनका पोषण होकर शरीरस्थ धातु पुष्ट होती है। तत्पश्चात् धातु पूर्णता प्राप्त करके बाहिर निकलने योग्य होती है।"

तात्पर्य्य यह, कि शुश्रुतकारने भी ब्रह्मचर्य काल ४० वर्षका माना है। इस बातका समर्थन यूरोप अमरिका आदि

पश्चिमीय देशोंमें होने लगा है किन्तु इस ओर अभी हमलोगोंका ध्यानतक भी नहीं गया है। यहाँ तो ४० वर्षके पूर्व ही शरीरमें वृद्धावस्थाके प्रायः समस्त चिह्न दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसका मुख्य कारण ब्रह्मचर्याका अभाव है।

वीर्यरक्षाका ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य है। बिना वीर्य-रक्षाके "ब्रह्मचर्य" कैसा ? इसलिये हमें यहाँ वीर्यके सम्बन्धमें भी थोडा बहुत लिखना चाहिये। वीर्य क्या है ? इसका संक्षेप उत्तर यही है कि "हमलोगोंके भोजनका अन्तिम सत्व वीर्य है।" अर्थात् जैसा हम खाते हैं, वैसा ही वीर्य्य भी बनता है। हमलोग जो कुछ भी खाते हैं, वह सात धातुओंमें बनता है। पहिले भोजन का रस बनता है, फिर उस रसका रक्त बनता है, रक्तके बाद मांस, मांसके पश्चात् मेद, मेदके पश्चात् अस्थि, अस्थिके बाद मज्जा और मज्जाके पश्चात् वीर्य बनता है। यह आप समझ गये होंगे, कि वीर्य कितनी क्रियाओंके बाद बनता है। इस प्रकारकी क्रियाके होनेमें पूरे ३० दिन लगते हैं अर्थात् जो कुछ भी आज हमने खाया है उसका वीर्य पूरे तीस दिनमें थोडासा बनेगा। शरीर-शास्त्रके ज्ञाताओंका कहना है कि ८० बूँद शुद्ध रक्तका एक बूंद शुद्ध वीर्य बनता है। जठराग्निके यंत्रमें भोजन डाल-कर जो एक इत्र तैय्यार होता है, वही वीर्य है। प्रत्येक धातुके बननेमें ४॥ दिनके लगभग लगते हैं। इस प्रकार छब्बीसवें दिन प्रकृतिके यन्त्रमें पडे हुए भोजनका वीर्य बनना आरंभ होता है। वीर्य कहाँपर रहता है ? यद्यपि यह एक गुप्तभेद है तथापि

इतना जान लेना जरूरी है कि "वह सारे शरीरमें रहता है।" जिस प्रकार दूधमें घृत और गन्नेमें रस गुप्त रूपसे उसके अस्तित्वतक रहता है, ठीक उसी प्रकार शरीरमें वीर्य भी रहता है। जिस तरह दधि मंथन करनेके पश्चात् उसमेंसे घृत अलग हो जाता है, उसी तरह वीर्य शरीरमें आकर्षित होकर एक जगह एकत्र हो जाता है। जहाँ यह इकट्ठा होता है, उसे वीर्याशय कहते हैं। यह स्थान मूत्राशयके पास ही है। मलद्वार और मूत्रद्वारका मध्यका भाग वीर्याशयका स्थान है। गुदा और अडकोषोंके मध्यमें जो चार पाँच अंगुलका अन्तर है, उसे ही वीर्याशय समझिये।

आहार-विहारका ब्रह्मचर्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। यह बात अच्छी तरह ध्यानमें रखनी चाहिये। डाक्टर ट्राल लिखते हैं—

"The more nearly the practice live in accordance with Physiological habits, especially in the matters of food, clothing and exercise, the more nearly normal will be their sexual inclinations, and the less need have they of subjecting their desires to the restraints or control of reason."

पुरुषोंके वीर्य और स्त्रियोंके रजपर आहार-विहारका प्रभाव अधिक होता है। मनोनिग्रह और ब्रह्मचर्यका भी उसके ऊपर

पश्चिमीय देशोंमें होने लगा है किन्तु इस ओर अभी हमलोगोंका ध्यानतक भी नहीं गया है। यहाँ तो ४० वर्षके पूर्व ही शरीरमें वृद्धावस्थाके प्राय. समस्त चिह्न दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसका मुख्य कारण ब्रह्मचर्यका अभाव है।

वीर्यरक्षाका ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य है। विना वीर्य-रक्षाके "ब्रह्मचर्य" कैसा ? इसलिये हमें यहाँ वीर्यके सम्बन्धमें भी थोडा बहुत लिखना चाहिये। वीर्य क्या है ? इसका सक्षेप उत्तर यही है कि "हमलोगोंके भोजनका अन्तिम सत्व वीर्य है।" अर्थात् जैसा हम खाते हैं, वैसा ही वीर्य्य भी बनता है। हमलोग जो कुछ भी खाते हैं, वह सात धातुओंमें बनता है। पहिले भोजन का रस बनता है, फिर उस रसका रक्त बनता है, रक्तके बाद मास, मासके पश्चात् मेद, मेदके पश्चात् अस्थि, अस्थिके बाद मज्जा और मज्जाके पश्चात् वीर्य बनता है। यह आप समझ गये होंगे, कि वीर्य कितनी क्रियाओंके बाद बनता है। इस प्रकारकी क्रियाके होनेमें पूरे ३० दिन लगते हैं अर्थात् जो कुछ भी आज हमने खाया है उसका वीर्य पूरे तीस दिनमें थोडासा बनेगा। शरीर-शास्त्रके ज्ञाताओंका कहना है कि ८० बूँद शुद्ध रक्तका एक बूद शुद्ध वीय बनता है। जठराग्निके यत्रमें भोजन डाल-कर जो एक द्रव तैय्यार होता है, वही वीर्य है। प्रत्येक धातुके बननेमें ४॥ दिनके लगभग लगते हैं। इस प्रकार छब्बीसवें दिन प्रकृतिके यत्रमें पडे हुए भोजनका वीर्य बनना आरभ होता है। वीय कहाँपर रहता है ? यद्यपि यह एक गुप्तभेद है तथापि

इतना जान लेना जरूरी है कि "वह सारे शरीरमें रहता है।" जिस प्रकार दूधमें घृत और गन्नेमें रस गुप्त रूपसे उसके अस्तित्वतक रहता है, ठीक उसी प्रकार शरीरमें वीर्य भी रहता है। जिस तरह दधि मंथन करनेके पश्चात् उसमेंसे घृत अलग हो जाता है, उसी तरह वीर्य शरीरमे आकर्षित होकर एक जगह एकत्र हो जाता है। जहाँ यह इकट्ठा होता है, उसे वीर्याशय कहते हैं। यह स्थान मूत्राशयके पास ही है। मलद्वार और मूत्रद्वारका मध्यका भाग वीर्याशयका स्थान है। गुदा और अंडकोषोंके मध्यमें जो चार पाँच अंगुलका अन्तर है, उसे ही वीर्याशय समझिये।

आहार विहारका ब्रह्मचर्य्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। यह बात अच्छी तरह ध्यानमें रखनी चाहिये। डाक्टर ट्राल लिखते हैं—

"The more nearly the practice live in accordance with Physiological habits, especially in the matters of food, clothing and exercise, the more nearly normal will be their sexual inclinations, and the less need have they of subjecting their desires to the restraints or control of reason."

पुरुषोंके वीर्य और स्त्रियोंके रजपर आहार विहारका प्रभाव अधिक होता है। मनोनिग्रह और ब्रह्मचर्यका भी उसके ऊपर

अधिक आधार है। इसलिये बचपनसे ही इस विषयमें साव-धानी रखनी चाहिये। जो बालक अज्ञान अवस्थामें ही खराब आदतों द्वारा ब्रह्मचर्यका भंग करते हैं, उनकी दशा बड़ी ही करुणाजनक होती है। किन्तु इस विषयमें वह बालक उतना उत्तरदायी नहीं है, जितना कि उनके पालकगण हैं। यदि माता पिताने ब्रह्मचर्य पालन नहीं किया है, तो संतानका ब्रह्मचारी होना भी कठिन है। इसका कारण यह है कि दुर्बल मनुष्यों-की निर्बल संतान कामके प्रबल वेगको दमन कर सकनेमें असमर्थ होती है। इससे कोई यह न समझ ले कि ब्रह्मचर्यभ्रष्ट माता पिताकी औलाद ब्रह्मचारी रह ही नहीं सकती। रह सकती है किन्तु विशेष पुरुषार्थकी आवश्यकता है। हाँ भविष्यमें जो ऐसे ब्रह्मचारी द्वारा संतान होगी वह अच्छी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर सकेगी और इस तरह तीसरी या चौथी पीढ़ीमें पूर्ण ब्रह्मचर्य द्वारा पूर्णायु पानेवाली संतानें इस भारतमें दृष्टिगोचर होने लगेंगी।

कुछ बालकोंका तथा कुछ समझदार बच्चोंका ऐसा खयाल बना हुआ है कि, बारह तेरह वर्षकी अवस्थातक वीर्य न होनेसे उसका खर्च तो होता ही नहीं फिर मैथुनादि करनेसे हानि ही क्या है? यह भारी भूल है—बालकमें भी वीर्य रहता है, किन्तु वह अपक होता है। फूलकी कच्ची कलियोंमें गन्ध होती है, परन्तु वह गन्ध सूँघनेपर भी मालूम नहीं होती। यही बात बालकके वीर्यके विषयमें भी समझनी चाहिये। पुष्पके

खिलनेपर ही उसकी सुन्दर गन्ध प्रकट होती है—बालकके पूर्ण अवयव होनेपर ही उसमें सच्चा वीर्य्य प्रकट होता है। ब्रह्मचर्यका घातक एक और भी विचार हमारे नवयुवकोंको ही क्या बल्कि कई बूढ़े मनुष्योंकी मूर्ख खोपड़ीमें घुसा हुआ है, वह यह कि—"यदि वीर्यपात न किया जावेगा तो बीमारी हो जावेगी। आँखें खराब हो जायेंगी। यह तो शरीरस्थ मल है इसका निकलना ही अच्छा। दूसरे तीसरे दिन वीर्य निकाल देना चाहिये। यदि नहीं निकला तो जब वह बहुत हो जावेगा तब स्वप्नदोष प्रमेह आदि द्वारा निकलने लगेगा। इत्यादि—।" ये सब बातें मूर्खतापूर्ण हैं। समझदार मनुष्योंको ऐसे ज्ञानी पुरुषोंसे दूर ही रहना चाहिये। इस विषयमें मेरा तो केवल यही पूछना है कि यदि चिरागमेंसे तेल निकालकर फेंक दिया जावे तो दीपककी दशा क्या होगी? बुझ जावेगा न? तो यदि इस शरीरसे वीर्य निकाल दिया जावेगा तब यह नष्ट होगा या बचेगा। सारांश यह कि दीर्घायु चाहनेवाले व्यक्तिको वीर्य-रक्षा—ब्रह्मचर्य रखना उतना ही आवश्यक है, जितना कि जीवनके लिये भोजन और जलकी जरूरत है।

आजकल भारतवर्षमें ब्रह्मचारी रहना एक प्रकारसे कष्टसाध्य सा हो गया है—इसका कारण वायुमंडलका प्रतिकूल होना है। यहाँ वायुमंडलका अर्थ हवा नहीं है, बल्कि आसपासकी संगति है। जिधर देखिये उधर ब्रह्मचर्यका अभाव है। और ब्रह्मचर्यके विरोधी कार्य दृष्टिगोचर होते हैं। घरमें देखें तो

माता पिता वडा भाई चाचा आदि गुरुजन ब्रह्मचर्यहीन हैं। पड़ोसी इन्द्रिय-लोलुप और व्यभिचारी हैं। शब्द भी कानोंमें निरंतर ऐसे पडते रहते हैं जिनमे ब्रह्मचारी रहनेमें थोड़ा बहुत धक्का अवश्य लगता है। स्पर्शके लिये भी हमारे आस पास ऐसी वस्तुएँ होती हैं, जो कामोत्तेजक होती हैं—गुदगुदे बिछौने, मखमलके तकिये, कमानीदार पलग, कुर्सी इत्यादि ऐसे कई ब्रह्मचर्यवाधक साधन होते हैं। ब्रह्मचारीको तो मृदुस्पर्शसे सदैव दूर और कठोर-स्पर्श वस्तुओंको निरन्तर पास रखना चाहिये। रूप अर्थात् दृश्य भी आँखोंके आगे आजकल जितने भी आते हैं, सभी ब्रह्मचर्यके घातक हैं। स्त्रियोंके हावभाव, हिजडोंकी अंगभगी, नाचनेवाले लौडोंका स्त्रीवेश, वेश्याओंका नगर निवास, और उनका साय प्रात नगरमें घूमने निकलना, वेश्या नृत्य, नाटक, सिनेमा, गन्दे चित्र, गन्दा साहित्य, और अखवारोंकी कामोत्तेजक औषधियोंकी विज्ञापन वाजी प्रभृति विविध दृश्य ब्रह्मचर्यके वाधक हैं। रस विषयक मामला भी गडवड ही है—घरसे लगाकर वाजारू दूकानों तक चटपटे, मिर्चमसालेदार, उत्तेजक पदार्थ भरे रहते हैं। सात्विक भोजनोंका अभाव है। नरम नरम मिठाइयोंने और चटपटे पदार्थोंने हमारे देशवासियोंके पेटको विगाड़ कर सदारोगी वना दिया है। चा, काफी, कोको, भङ्ग, मदिरा, चडू, चरस, अफीम, तमाखू, सोडा, लेमन, आइस्क्रीम आदि सभी पदार्थ ब्रह्मचर्यके शत्रु हैं। आज

कल जिस नगरमें, होटल, उपहार गृह, ढाबा, सोडा लेमन आदि पेय पदार्थोंकी दूकाने अधिक होती हैं, वह नगर उन्नत और सभ्य माना जाता है परन्तु वास्तवमें ये हमलोगोंके ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्यको जलानेवाले स्मशान हैं। ब्रह्मचर्य व्रतकी इच्छा रखनेवालोंको ऐसे स्थानोंसे कोसोंदूर रहना चाहिये। गन्ध भी हमारे चतुर्दिक् ऐसा रहता है जो हमें वीर्य रक्षासे विचलित करता रहता है। इत्र, फुलेल, गुलाबजल, सेंट, लेवें-डर, हेयर आयल, आदि पदार्थ कामोत्तेजक हैं। इनके अतिरिक्त बड़े बड़े शहरोंके दूषित वायुयुक्त स्थान, गटर, मोरी, नालियाँ, पाखाने, पेशाबघर गन्दे और बदबूदार स्थान ब्रह्मचर्यके घातक हैं। फीनाइल आदि कृमिनाशक पदार्थोंको डालकर उन्हें शुद्ध रखा जाता है परन्तु देखा जाये तो फिनायल ही बेचारा स्वयम् दुर्गंधयुक्त है—उसकी बदबू भी मस्तिष्कको हानि पहुचाने वाली है। एक व्यक्ति जो जन्मसे जङ्गलकी खुली हवामें रहा हो, उसे यदि कलकत्तेके किसी फिनायलसे धुले हुए पाखानेमें ले जाकर शौचके लिये बिठा दिया जावे तो वह बेचारा चक्कर खाकर गिर पड़ेगा अथवा वहासे आधा बीमार होकर निकलेगा। लिखनेका सारांश यह कि हमारे शरीरकी समस्त इन्द्रियोंके लिये आजकल ऐसे कार्य मिल रहे हैं जो वीर्यरक्षाके अवलम्बनको धक्का पहुचा रहे हैं। अतएव ऐसे स्थानोंसे और कार्योंसे दूर रहने पर ही वीर्यरक्षा हो सकती है अन्यथा कष्टसाध्य है। इसके लिये या तो प्राचीन प्रणालीके अनुसार

गुरु कुलोंमें वास करना चाहिये या एसे छोटे ग्राममें रहना चाहिये जहाँ ऊपर कही हुई बाधाएँ आडी न आवें। ब्रह्मचर्य काल यदि घरोंमें अर्थात् नगर ग्राम आदिमें न विताया जावे तो ही उत्तम है। क्योंकि इसके पश्चात् दूसरा आश्रम गृहस्थ है, जिसका अर्थ ही घरमें रहना है।

हम देखते हैं कि हमारा मानव समाज रातदिन सुखकी खोजमें और दुःखसे छुटकारा पानेके लिये चिन्तित रहता है किन्तु वह सच्चा सुख अभीतक नहीं मिला है। आजकल तो लोगोंने अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा पहिनना ओढना, ऊँचे ऊँचे गगनचुम्बी मकानोंमें रहना, नलद्वारा पानी प्राप्त करना, बटन दबानेसे प्रकाश और वायुका आनन्द लूटना, घरके अन्दर ही पाखाना जाना, वहाँपर ही थोडासा साबुन चुपड कर स्नान करना, गद्दोंपर पडे रहना, मोटर, सायकल, ट्राम, रेलप्रभृति यानोंमें बैठकर पंगुकी भाँति घूमना और ऐशो आराममें निरन्तर लिप्त रहना ही सुखकी पराकाष्ठा मान ली है। परन्तु वास्तवमें यह सच्चा सुख नहीं है। बल्कि, महान दुःख है क्योंकि उनके गाल या तो पिचके हुए हैं या मेद बढ जानेसे अत्यन्त फूले हुए हैं। शरीरके वस्त्र खुलवाकर देखेंगे तो या तो अतिशय दुर्बल या मटकी की भाँति पेट लटका हुआ पावेंगे। उनके शयनागारमें ओषधियोंकी शीशियाँ रखी हुई मिलेगी। भोजनके पश्चात् किसी लवणकी या चूर्णकी फाँकी लिये विना उनकी जठराग्नि भोजन नहीं पचा सकती।

सोते समय नींद आनेकी दवा लिये बिना निद्रा नहीं आती॥ इसे सुख कहें या दुःख? मेरे खयालसे तो सभी इसे दुःख कहेंगे। क्योंकि जब शरीर ही स्वस्थ नहीं है तो यह सारा सुख धूल है। जो शरीर रोगी बनकर अल्पायु बन जाता है उसके लिये तो महात्मा तुलसीदासजीने अच्छा उपदेश दिया है—

अर्थ पर्व लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज।
जो तुलसी निज मरण है, तो आवे केहि काज॥

एक उर्दू कविने भी कहा है कि "एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत।" सच्चा सुख एक मात्र स्वास्थ्य ही है। जिसका स्वास्थ्य खराब है, वह स्वर्गके समस्त ऐश्वर्यों को पाकर भी सुखी नहीं माना जा सकता। क्योंकि "शरीरमाद्यं खलुधर्म-साधनम्।" जो आदमी तन्दुरुस्त है—जिसके शरीरमें बल, पुरुषार्थ, उत्साह और वीर्य है, जिसे डाक्टर हकीम, वैद्योंके द्वारपर नहीं जाना पड़ता है, वही सच्चा सुखी है। किन्तु हा! आज ब्रह्मचर्यके महत्वको भूल जानेके कारण ९० प्रतिशत भारतवासी अपने स्वास्थ्यको अपने ही हाथों भूलसे बर्बाद कर चुके हैं। जो लोग ब्रह्मचारी रहे हैं या हैं, उन्हींका स्वास्थ्य उत्तम रह सकता है। ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति कदापि सुखका अधिकारी नहीं है।

जो सुख परिणाम तक सुखरूप है। वही सच्चा सुख है। यही सुखकी व्याख्या है। जो अलग अलग मनुष्य अथवा समाजने अपने अपने लिये सुख-सम्पत्तिको इकट्ठा किया है वे

क्षणिक सुख है—स्थायी नहीं होते। प्राणीमात्रके सुख दुःखमें हमारा भी सुखदुःख है, ऐसा विचार और ऐसी बुद्धिवाला ही सच्चा सुखी है, यह उदार बुद्धि प्रत्येक प्राणी नहीं रख सकता। क्योंकि शरीर शास्त्रज्ञोंका कहना है कि मनुष्यकी बुद्धि और विचार उसके शरीरकी रचनाके अनुसार और शक्तिके अनुसार ही होते हैं। हमारे यहाँ इस शास्त्रको सामुद्रिक विद्याशास्त्र कहा है। शरीरकी रचना परसे ही स्वभाव आदिका पता लगाया जा सकता है। आप यदि विशेष ध्यानसे लोगोंकी आकृति देखकर प्रकृति जाननेका भाव मनमें धारण करके कुछ समय तक अभ्यास करेंगे तो कुछ समयके बाद आप मुँह देखकर मनुष्यका स्वभाव बता सकेंगे। निर्दय मनुष्य और सदय मनुष्यकी मुखाकृति एक कदापि नहीं हो सकती। चञ्चल और शान्त स्वभावके मुखोंमें भिन्नता दीख पड़ती है। मूर्ख और विद्वानकी शक्ल छिपी नहीं रहती। सारांश यह कि मुख देखकर ही बहुत सी मनकी बातें जानी जा सकती हैं। केवल अभ्यास और अनुभवकी आवश्यकता है। इन बातोंको यहाँ लिखनेसे हमारा यह मतलब है कि शरीरकी रचना स्वभावके अनुकूल ही होती है। अतएव दूसरोंके सुखमें सुख और दुःखमें दुःख माननेवाले व्यक्तिका सङ्गठन बड़ा ही उत्तम पुरुषार्थी और वीर्यवान होना चाहिये। तभी वह सच्चे सुखका अनुभव कर सकता है। बिना ब्रह्मचर्यके मनुष्य पुरुषार्थी और वीर नहीं हो सकता। अतएव समस्त सुखोंको

भोगनेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको ब्रह्मचर्य तपका अनुष्ठान करना परमावश्यक है।

आजकलके विद्याभ्यासका ढङ्ग इतना बुरा है कि उससे मनुष्य ब्रह्मचारी कदापि नहीं रह सकता, क्योंकि शिक्षाप्रणाली ही ऐसी है। जहाँके शिक्षक वेतन पाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हों, वहाँसे ब्रह्मचारी विद्यार्थियोंका पढ़कर आना असम्भव है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्कूल और कालिजोंमें अयोग्य अध्यापकोंकी भरमार है। उन्हें मानसिक, शारीरिक और नैतिक ज्ञान बिलकुल ही नहीं है। जैसा उन्होंने अपने अध्यापकसे सीखा या पढ़ा है, वैसा ही वे भी अपने शिष्यको सिखा देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। भला ऐसे अध्यापकोंसे देशका क्या कल्याण हो सकता है? अधिकांश अध्यापक वर्ग प्रायः सदाचारी नहीं होते। चा, तम्बाकू, भङ्ग, जरदा, गांजा, सिगरेट, बीड़ी वगैरह सेवन करते हैं। चटकीला रहना उन्हें पसन्द होता है। माँग पट्टीदार बाल रखते हैं—इत्र फुलेलसे उनका शरीर महँकता है। लिखते हुए लेखनी लज्जित होती है, कि अपने उन पुत्र समान शिष्योंसे कुकर्म्मद्वारा अपनी काम वासना शान्त करते हैं॥ सायंकालको गली कूचोंमें धूल खाते और वेश्याओंके यहाँ रात-दिन अड्डा जमाये पड़े रहते हैं। कहिये, ऐसे पतित अध्यापकों द्वारा शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी क्या ब्रह्मचारी रह सकते हैं? यही कारण है कि स्कूल कालिजोंके विद्यार्थी, हस्तमैथुन, गुदामैथुन, परस्त्रीगमन आदि नी-

कार्योंमे फँसे हुए देखे जाते हैं। विद्यार्थी सदा अपने गुरुका अनुकरण करता है—मान लीजिये कि गुरुजी गाँजा भाँगका सेवन करते हैं तो उनका शिष्य भी अब नहीं तो आगे चलकर अवश्य गँजेडी भँगेडी बनेगा। ऐसे अध्यापक वर्ग हमारे देशको मिट्टीमें मिलानेवाले अत्यन्त पापी माने जाने चाहियें। पालकोंको तथा समझदार बच्चोंको ऐसे गुरुजीके पास जाकर बैठना भी नहीं चाहिये। पाठशालाओंके मास्टर सदाचारी, पवित्रात्मा, और परोपकारी व्यक्ति ही होने चाहियें। ऐसे अध्यापक भी हैं किन्तु वे इतनी कम सख्यामें हैं कि जिनका होना न होना एकसाही है। सैकडों मीठे जलकी नदियाँ समुद्रमें गिरती हैं किन्तु उनके कारण समुद्र मीठा नही माना जा सकता! अब देशको ब्रह्मचर्यघातिनी शिक्षामें सुधारकी आवश्यकता है।

सभव है, हमारे देशका अध्यापक समाज हमपर आँख भौं चढावे, किन्तु जो बात सत्य है उसे किसी कोपके भयसे छुपा लेना भी तो पाप है। हमारा अनुभव है कि आजकलकी शिक्षा और शिक्षक ब्रह्मचर्यके लिये बाधक हैं। जब कभी हमने देखा है, तब स्कूल कालिजोंसे निकले हुए विद्यार्थियोंको ही वीर्य-रोगमें फँसे देखा है। वैद्यों चिकित्सकों और डाक्टरोंके हाजिरी रजिस्टर हमारे इस कथनकी साक्षी दे रहे हैं। हमारे इन विद्यार्थी युवकोंके पैसे द्वारा ही अधिकाश विज्ञापनबाज अपना जेब गर्म करते हैं। सबसे प्रथम स्कूल छोड़नेके बाद

यदि कोई चिन्ता हमारे विद्यार्थी भाईको होती है तो वह वीर्य सम्बन्धी रोगसे छुटकारा पानेकी होती है।" वे इस चिन्तामें इतने तल्लीन रहते हैं, कि अखबारको पढने लायक बातें पहिले न पढकर बल वर्द्धक चूर्ण, नपुंसकताकी औषधि, स्वप्न दोष मिटानेकी दवा, प्रमेह नाशक वटी आदिके विज्ञापनों-को आँखें फाड फाड कर देखेंगे और उन्हें बडे ही ध्यानपूर्वक पढेंगे। उन विज्ञापनोंकी लच्छेदार चटकीली भडकीली, हृदय-ग्राही भाषासे दिल पिघल उठेगा और दवा मंगाकर उसे लुक छुपकर सेवन करेंगे। इसका फल यह होगा कि रोग अपनी जड और गहरी जमाता जावेगा। साराश यह कि हमारा वायु मंडल अत्यन्त दूषित होगया है—इसमें ब्रह्मचर्य रखना पुरुषार्थी मनुष्योंका ही काम है। देखिये मनुजी ब्रह्मचारी विद्यार्थीके लिये क्या उपदेश देते हैं —

वर्जयेन्मधु मांस च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रिय।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैवहिंसनम् ॥१७७॥
अभ्यंग मञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधच लोभंच नर्तनं गीत वादनम् ॥१७८॥
द्यूतंच जनवादंच परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणाच प्रेक्षणा लम्भमुपघातं परस्यच ॥१७९॥
एक शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयेन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मन ॥१८०॥

(अध्याय द्वितीय)

अर्थात्—शहद, मांस, सुगन्धितद्रव्य, पुष्प हार, रस, स्त्री, सिरकेकी भाँति बनी हुई वस्तु, हिंसा, उबटन, अंजन, जूते, छत्री, काम, क्रोध, लोभ नाचना, जुआ, झगडा, निन्दा, झूठ स्त्रियोंको देखना और आलिंगन करना ब्रह्मचारीको त्याग देना चाहिये। सर्वत्र अकेला सोवे, वीर्यपात न करे, कामेच्छा द्वारा वीर्य गिरानेवाला ब्रह्मचारी अपने व्रतको नष्ट कर देता है।" देखिये ब्रह्मचारीके लिये कैसे कडे कडे नियम बनाये गये हैं। क्या स्कूल कालिजोंमें इन नियमोंका पालन होता है? वहाँ तो इनके विरुद्ध आचरण होता है—वे मर्द नहीं बनाये जाते हैं बल्कि जनाने बनाये जाते हैं। हमारे प्राचीन ब्रह्मचर्यमें सुगंधित द्रव्य, हार, रस, अंजन, जूते, छत्री, उबटन आदि वर्ज्जित हैं तो आजकलके ब्रह्मचर्यमें इन समस्त वर्ज्जित कार्योंका पूर्णतया साम्राज्य है। जब हम मांग पट्टीदार बालोंमें "कामनिया आयल" लगाये, गलेमें फूलोंकी माला डाले, आँखोंमें सुरमा लगाये, पैरोंमें जूते ही नहीं बल्कि जुर्राबों पर लाग बूट अडाये, पौष माघके महीनेमें भी सिरपर छाता झुकाये एक विद्यार्थीको मदरसेमें पढने जाता देखते हैं तब भारतकी इस अधोगति पर दुःख होता है। इस पाश्चात्य वेश भूषाने तो हमारे देशवासियोंकी मर्दीपर पानी फेरकर जनाना बना दिया!! ब्रह्मचर्यको खोकर देशने नजाकतमें भी खूब उन्नति प्राप्त की है—इसी कारण लोग अल्पायु हो गये। तात्पर्य यह, कि जबतक प्राचीन प्रणालीके अनुसार देशमें

ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याभ्यासका क्रम स्थापित नहीं किया जावेगा तबतक देशमें दीर्घायुषी लोगोंका होना असम्भव साही है।

पूर्व कालमें वीर्य रक्षा करना ब्रह्मचारीका प्रथम कर्त्तव्य होता था—इसके साथ ही विद्याभ्यास भी चलता था। शुक्र नीति अध्याय ४ में लिखा है कि—

"विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात्।"

विद्याधन संचयार्थ ही ब्रह्मचर्य तपका अनुष्ठान करना चाहिये। धर्मशास्त्रोंके आज्ञानुसार ६।१० वर्षमें उपनयन सस्कारके बाद बालकको गुरु गृहमें विद्याभ्यास और अखण्ड ब्रह्मचर्य पालनके लिये भेज दिया जाता था—हमारे बालक धर्म, सदाचार और नीतिके ज्ञाता गुरुओंके हाथमें ही सौंपे जाते थे। कन्याओंका भी लगभग इसी उम्रसे विद्याभ्यास आरम्भ हो जाता था। कन्याओंके लिये अलग और लडकोंके लिये अलग, कहीं वस्तीसे दूर गुरुगृह होते थे—वहाँ आजकलके स्कूल कालिजोंकी भाँति ऊँची ऊँची अट्टालिकाएँ नहीं होती थीं, बल्कि फकीरोंकी साधुसन्तोंकी, ऋषि-मुनियोंकी पर्ण कुटियाँ होती थीं। हमारे अगाध ज्ञान भण्डार भारताचार्य उन पत्तोंकी झोपडीमें अपना सादा सीधा पवित्र जीवन व्यतीत करते थे, फिर भला उनके शिष्य कैसे होंगे? इसका अनुमान अब पाठक ही स्वय लगाले। ये आश्रम वस्तोसे दूरीपर होते थे। अतएव विविध लालसाएँ, इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेवाले पदार्थ, विचार, बातें, चिन्ताएँ वहाँ फटकने नहीं पाती थीं।

गुरु शिष्य दोनों सदैव एक ही आश्रममें निवास करते थे। इस लिये शिष्य भी गुरु जैसा ही सदाचारी, धर्मात्मा, नीतिज्ञ, और दीर्घायुषी हो जाता था—उन्हें अत्यन्त ही सात्विक भोजन दिया जाता था। दुर्व्यसन, दुराचार क्या है—इन बातोंको वे बिलकुल नहीं जानते थे। वीर्य क्या है—उसका रङ्ग क्या है—कैसा होता है इत्यादि बातोंको वे बिलकुल समझते ही न थे। इस तरह बालकोंको कमसे कम २५ वर्षतक ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक विद्याभ्यास कराया जाता था। इसके पूर्व उन्हें गृहस्थमें प्रवेश होनेकी तो क्या बल्कि घर पर जाकर अपने मातापिता प्रभृति घरके लोगोंसे मिलने तककी सख्त मनाही होती थी। यही कारण था कि उस समय भारतवर्षमें वीर मनुष्योंकी कमी नहीं थी। अल्पायुमें मरजाना एक नवीन बात थी। पिताके होते पुत्रका मरना बड़ा ही बुरा माना जाता था। सौ वर्षकी उम्र पाये बिना मृत्यु पानेवाला पापी माना जाता था। जिन्हें हमारे इस कथनपर विश्वास न हो, वे रामायण उठाकर देखलें कि "रामचन्द्रजीको भला बुरा कहता हुआ एक ब्राह्मण उनके पास आया और बोला कि "राम! तू पापी है यही कारण है कि मेरे होते मेरा पुत्र मर गया है। यह पहिला ही मौका है। इत्यादि।" इन सब बातोंसे स्पष्ट होता है, पहिले सभी लोग दीर्घायु पाते थे—इसका कारण एक मात्र अखण्ड ब्रह्मचर्यका पूर्ण रीतिसे पालना ही था।

बालविवाहकी एक बुरी प्रथाने हमारे देशमें हिमालयसे

कन्या कुमारी तक और ब्रह्मपुत्रसे सिन्धु नदीतक मानवजातिमें अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया है। ब्रह्मचर्यकी जड़में यह वज्रकीटकी तरह काम कर रहा है। असंख्य बालविधवाएँ इसकी बदौलत देशमें गर्म आँसू बहा रही हैं। हमारे करोड़ों बालक और नवयुवक इसी बुरी प्रथाके कारण अकाल मृत्यु पा चुके हैं—भारत माताके करोड़ों लाल कालके कराल गालमें चले जा रहे हैं! इतने पर भी देशकी निद्रा नहीं खुली। इस बालविवाहने ब्रह्मचर्यका नामोनिशान मिटा दिया। ब्रह्मचर्य शारीरिक और मानसिक उन्नतिका प्रथम साधन है और बालविवाह ब्रह्मचर्यका घातक है। सुश्रुताचार्य जहाँ ४० वर्षकी उम्रमें विवाह करनेकी सलाह देते हैं, वहाँ चौदह पन्द्रह वर्षके लौंडोंको लड़के लड़की होने लगते हैं। यह देशके लिये कैसी नाशकारी बात है? जहाँ सोलह वर्षकी उम्रसे शरीरकी धातु-वृद्धि होती है, वहाँ चौदह वर्षके बच्चोंके सन्तान पैदा होना सर्वनाश नहीं तो और क्या है? आजकल तो ४० वर्षकी अवस्थामें लोगोंको वृद्धावस्था धर दबाती है और प्राचीन कालमें हमारे पूर्वज ४० वर्षतक ब्रह्मचारी रहकर बादमें अपना विवाह करते थे। वाग्भट्टने जल्दीसे जल्दी विवाहका समय

"षोडश वर्षाया पञ्चविंशतिवर्ष पुत्रार्थं यतेत्।"

२५ वर्षका पुरुष और सोलह वर्षकी कन्याको ही सन्तान उत्पन्न करने योग्य बताया है। ऐसे जोड़ेसे जो सन्तान पैदा होती है, वही दीर्घायु पाती है। वर्तमान कालमें लोगोंके

विवाहके पवित्र हेतुको भुला दिया। यही कारण है कि १५।१६ वर्षके लडके आज पिता बनकर अपने दिलमें फूले नहीं समाते ! भारतवर्ष किस अधोगतिको पहुच चुका है, इसको बतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं रह गई है—विचारशील पाठक स्वयम् विचार लें और अपनी आखोंसे भी देख लें। यहाँ हम एक चित्र देते हैं। यह १४ वर्षकी कन्याका चित्र है, जो दो बच्चे प्रसव कर चुकी है। देशके लिये इससे बढकर दूसरा बुरा समय और क्या होगा ? देखिये इस विषयमें आयुर्वेद स्पष्ट कह रहा है—

"उनषोडश वर्षायामप्राप्त पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भ कुक्षिस्थ सविनश्यति ॥
जातोवा न चिरं जीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रिय ।
तस्मादत्यन्त बालाया गर्भाधान नकारयेत् ॥"

अर्थात्—सोलह वर्षसे कम उम्रकी लडकीमें २५ वर्षसे कम उम्रका लडका यदि गर्भाधान करेगा तो वह गर्भ माताकी कुक्षमें ही नष्ट हो जायेगा। यदि उत्पन्न भी हुआ तो कदापि जीवित नहीं रह सकता और यदि दैव कृपासे जीवित भी रहा तो दुबला पतला बलहीन तथा अल्पायु होगा। इसलिये १६ वर्षसे कम उम्रकी स्त्रीमें गर्भाधान नहीं करना चाहिये। "यह कमसे कम समय, गर्भाधानका आयुर्वेद बता रहा है, परन्तु हा शोक कि १५।१६ वर्षकी उम्रवाले पिताकी पदवीको प्राप्त होते हैं और माताकी अत्यन्त पवित्र जयावदेदीको भ्रष्ट करनेका

एक १२।१३ वर्षकी वालिकाके सिर आ पडता है। कहिये, ,! बेचारे ब्रह्मचर्यकी पूछ कहाँ ? शोक है कि मनुष्य जातिकी मावस्थाका इससे अधिक अधम, अधिक निर्लज्ज और रक नीच दर्जेका दूसरा दृश्य और आपके सामने क्या हो ता है ? छोटे छोटे बालक गृहस्थ धर्म पालन करें, क्या यह ष्य जातिकी अधमावस्थाका चिह्न नहीं है ? क्या उन्हें ी छोटी उम्रमें यौवनावस्था प्राप्त हो जाती है ? क्या ऐसे उम्रके लडके लडकी दीर्घायु बालक उत्पन्न कर सकते हैं ? ! प्रकृतिने अपने नियमोंमें कुछ परिवर्त्तन कर दिया है ? क्या ा उत्पन्न करने योग्य रज-वीर्य इस कच्ची उम्रमें तय्यार होने ! गया ? प्रातःकालके सूर्यको मध्यान्हका सूर्य कहना जितनी ता है। उतनी ही एक बच्चेके लिये यौवन प्राप्त हो गया है ना कहना भी अत्यन्त अज्ञानता है। जिस प्रकार पुरुषके रीरकी धातुएँ ४० वर्षकी अवस्थामें पूर्णता प्राप्त कर लेती हैं, नी प्रकार स्त्रियोंके लिये भी महर्षि मनु कहते हैं कि—

"त्रीणीवर्षाण्युदिक्षेत कुमार्युतुमती सती।
ऊर्ध्वं तस्मात्तु कालाच्च विन्देत सदृशपतिन ॥"

अ० ६ श्लो० ६०

न्याके ऋतुमती होनेके बाद तीन वर्ष तक अपनेसे अधिक गुण वाले पतिकी प्रतीक्षा करे और यदि योग्य पति न मिले तो समान गुणवालेके साथ ही विवाह कर ले। पितामह भीष्मने भी धर्मराज यु[illegible] उपदेश दिया है।

"माताचैव पिताचैव ज्येष्ठ भ्राता तथैवच।
त्रयश्च नरकं यांति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम् ॥"

(काशीनाथ)

इस श्लोकके अनुयायियोंको मनुका उक्त उपदेश जरा आँखे खोलकर पढ़ना चाहिये। लिखनेका साराश यह कि हमारे धर्माचार्यों ने जहाँ देखिये वहाँ ब्रह्मचर्यके गुणोंको मुक्तकण्ठसे गाया है क्योंकि समस्त सुखोंका मूल एक मात्र यह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही उन्नति है और उसकी अवहेलना ही अवनति है—यह बात हमारे देशवासियोंको प्रतिक्षण ध्यानमे रखनी चाहिये।

श्रीयुत भावमिश्र अपने भाव प्रकाशमें ब्रह्मचर्यकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

"आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विता।
स्थिरापचित मासश्च भवन्ति स्त्रीषु संयता।"

अर्थात्–स्त्रियोंके विषयमें संयत रहना,—मनको अंकुशमें रखना ही ब्रह्मचर्य है।" कुछ लोग इस विषयमें इसलिये उदासीनता दिखाते हैं कि ब्रह्मचर्य विरोधी वायुमंडलमें ब्रह्मचर्य व्रतका पूर्ण होना असंभव है? इसका उत्तर यही है कि "जिस क्रमसे ब्रह्मचर्य भङ्ग करती हुई मनुष्य जाति अल्पायु हो गई है, उसी क्रमसे ब्रह्मचर्य पालन द्वारा पूर्व कालके अनुसार दीर्घायु पा सकती है।" इसलिये हमें दृढ़ निश्चयसे आजसे ही ब्रह्मचर्य पालन करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। आप यदि गृहस्थी

"माताचैव पिताचैव ज्येष्ठ भ्राता तथैवच ।
त्रयश्च नरकं याति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम् ॥"

(काशीनाथ)

इस श्लोकके अनुयायियोंको मनुका उक्त उपदेश जरा आँखे खोलकर पढ़ना चाहिये। लिखनेका साराश यह कि हमारे धर्माचार्यो ने जहाँ देखिये वहाँ ब्रह्मचर्यके गुणोंको मुक्तकण्ठसे गाया है क्योंकि समस्त सुखोंका मूल एक मात्र यह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही उन्नति है और उसकी अवहेलना ही अवनति है—यह बात हमारे देशवासियोंको प्रतिक्षण ध्यानमें रखनी चाहिये।

श्रीयुत भावमिश्र अपने भाव प्रकाशमें ब्रह्मचर्यकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

"आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विता ।
स्थिरापचित मासश्च भवन्ति स्त्रीषु सयता ।"

अर्थात्—स्त्रियोंके विषयमें सयत रहना,—मनको अंकुशमें रखना ही ब्रह्मचर्य है।" कुछ लोग इस विषयमें इसलिये
दिखाते हैं कि ब्रह्मचर्य विरोधी वायुमडलमें
होना असभव है? इसका उत्तर यही है
ब्रह्मचर्य भङ्ग करती हुई अल्पायु
क्रमसे ब्रह्मचर्य पालन
सकती है।" इसलिये
पालन करनेकी प्रतिज्ञा आप

हैं तो कोई चिन्ता नहीं। आप गृहस्थ धर्मका पालन करते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रतका अनुष्ठान कर सकते हैं। ब्रह्मचर्य ही नहीं बल्कि गृहस्थी दशामे ही राजा जनककी भाँति महान योगी भी बन सकते हैं—केवल दृढ विश्वास, आत्म शासन, अदम्य उत्साह, और भीम पुरुषार्थकी आवश्यकता है। गृहस्थ किस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर सकता है? इस विषयको हम अपने अगले "गृहस्थाश्रम" प्रकरणमें समझानेकी चेष्टा करेंगे।

यहाँपर पाठकोंको वीर्य रक्षा अर्थात् ब्रह्मचर्य रखनेके लिये युक्तियोंके जाननेकी आवश्यकता बोध होती होगी, किन्तु हम उन्हें यहाँ लिखना विषय विरुद्ध समझ कर अन्यत्र,कहीं आगे चलकर लिखेंगे। वीर्य रक्षा, संयम, दमन, इन्द्रिय निग्रह, उर्ध्वरेता होना, अमोघ वीर्य बनाना, आदि शब्द सभी ब्रह्मचर्यके सूचक हैं। यद्यपि ब्रह्मचर्य मे समस्त इन्द्रियोंपर विजय पानेकी आवश्यकता है, तथापि मुख्यतया लिंगेन्द्रियकी वासनाको ही दमन करना इस व्रतमें कर्त्तव्य होता है। कामको मनुष्यका शत्रु माना है, अतएव इस शत्रुसे युद्ध करनेके लिये व्यक्तिको कटिबद्ध होकर खडे हो जाना चाहिये। जो मनुष्य अपने बाह्य शत्रुओंको मारपीट, खून खराबी, नालिश फर्याद द्वारा बर्बाद करनेमें रात दिन भिडे रहते हैं, उन्हें सबसे पहिले अपने शरीरस्थ कामादि छ' शत्रु ओंपर विजय पानेका प्रयत्न करना चाहिये। इन शरीरस्थ महा रिपुओंपर विजय

एक दिन "अजात शत्रु" बन जाता है। परन्तु शत्रुसे मुकाबिला करनेके लिये पुरुषार्थकी पहिले आवश्यकता है जो बिना ब्रह्मचर्यके असम्भव है। पाठको! आजकलकी परिस्थिति और दूषित वायुमडलको देखकर आप मत घबराइये। ऐसे विकट समयमें धैर्य पूर्वक अपने मार्गपर चले जाना ही वीरता है। आपमें आत्मशक्ति है, वीर्य होनेके कारण वीर भी हैं, पुरुषार्थ भी है। इतना होनेपर भी आप अपनेको हीन, दीन, क्यों समझते हो? मनुष्य यदि अपनी शक्तिपर भरोसा रखकर पूर्ण निश्चय करेगा तो वह इस परिस्थितिको बदल देगा, यह बिलकुल निश्चय है। इसलिये आप आज ही, इसी समय, ऐसा निश्चय कीजिये और उस परमात्माको अपना न्यायाधीश मानकर यह इकरार नामा Bond एक कागज पर लिखकर ऐसी जगह लगा दीजिये जहाँ आपकी उसपर रातदिन दृष्टि पडती रहे।

"हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामिन्, परमात्मदेव!
ध्यान रखकर आज मैं यह प्रतिज्ञा करता हू कि मैं
अपने ब्रह्मचर्य घातक कार्योंको
तपका आचरण करूँगा।
आने पर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा
अपने मित्रोंको ब्रह्मचर्य पालन
दूँगा तथा अपना दूषित
भाव फैला कर सुधारनेका प्रयत्न करू

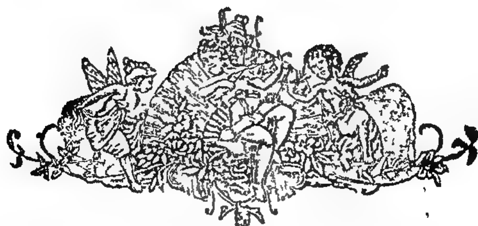
भगवन्! मैं यह अच्छी प्रकार जानता हूं कि मेरे दृढ निश्चयसे और पूर्ण पुरुषार्थसे ही मैं इस व्रतको पूर्ण करके दीर्घायु हो सकूंगा। क्योंकि आप जैसे सर्वशक्तिमान सहायकके होते हुए मुझे इस विषयमें असफल होनेका जरा भी सन्देह नहीं है। ॐ।"

तिथि— हस्ताक्षर—
स्थान—

एक बात यहाँ और जान लेने योग्य है कि एक बारके वीर्यपातसे मनुष्यकी साधारणत १० दिनकी आयु घट जाती है। यदि एक मास वीर्यपात किया तो १० महीने और एक वर्ष किया तो १० वर्ष आयु क्षीण हो जायेगी। यह लगातार वीर्यपातका हिसाब नहीं है—लगातार वीर्यपात तो एक सालमें मनुष्यकी १० वर्ष क्या बल्कि ५० वर्ष आयुको बरबाद कर सकता है। अब आप चाहें जितनी उम्र घटायें बढायें यह आप हीके हाथकी बात है। अज्ञानावस्थामें अर्थात् बचपनमें कुसस्कारों अथवा बुरी सगतिके कारण जो कुछ भी दोष हो गया हो, उसे ज्ञानावस्थामें सुधारनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। यदि उचित रीतिसे सुधार किया गया तो बचपनमें हुए समस्त दोषोंका परिमार्ज्जन हो सकता है। यदि बचपनमें कुछ भी दोष न हुआ हो तो इससे बढ़कर आनन्दकी बात और क्या हो सकती है?

इस समय देशको ऐसे मनुष्योंकी बड़ी भारी आवश्यकता

हैं जो वीर्य-नाशके भयङ्कर परिणामोंको समझाकर लोगोंमें ब्रह्म-चर्य की धुन सवार कर दे। माता पिता और गुरुजनोंका यह प्रथम कर्त्तव्य है। साधु सन्त, महन्त लोगोंको अब ऐशो आराम त्यागकर देशकी रक्षाके लिये कार्यक्षेत्रमें कूद पडना चाहिये। क्योंकि हमारे देशवासियोंकी अल्पायु हो गई है, उन्हें दीर्घायु प्राप्त करानेके लिये कर्मवीरोंकी देशको जरूरत है! वीर्यरक्षा, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रहका महत्त्व देशके बच्चे बच्चेको समझाये विना ब्रह्मचर्यके पहिले सी स्थितिपर पहुँचना असम्भव है। इसलिये आओ, हम सब एक होकर ब्रह्मचारी बनें और दूसरोंको बनावें।



"गृहस्थाश्रम"

ह्मचर्याश्रमके बाद दूसरा नम्बर गृहस्थका है। गृहस्थ शब्द ही इस बातको सूचित करता है कि "घरमें रहना ही इस आश्रमका मुख्योद्देश है"—क्योंकि आगे वाणप्रस्थाश्रम है। ब्रह्मचर्याश्रममें नगरसे तथा घरोंसे दूर रहना पडता है, अब ब्रह्मचर्यकी समाप्तिपर ब्रह्मचारी नगरमें आकर गृहवास करता है और पितृऋणसे उऋण होनेके लिये समान गुणवाली ब्रह्मचारिणी कन्याके साथ अपना विवाह संस्कार करता है। मनुजी कहते हैं—

"प्रजनार्थस्त्रिय सृष्टा संतानार्थंच मानवा ।
तस्मात्साधारणोधर्म श्रुतौपत्न्या सहोदित ॥"

अ० ७ श्लो० ७६

"गर्भके धारणार्थ स्त्रियाँ और गर्भाधानके लिये पुरुष उत्पन्न हुए हैं।" यह श्लोक स्पष्ट कहता है, कि केवल उत्तम संतान पैदा करनेके लिये ही स्त्री पुरुषोंकी सृष्टि हुई है—गृहस्थाश्रम विषय सुखके लिये नहीं है। उत्तम संतान विना ब्रह्मचर्य पालनके कदापि नहीं हो सकती, इसीलिये स्मृतिकार कहते हैं—

"अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाचसेत् ।"

अर्थात्—अखण्ड ब्रह्मचर्यको पूर्ण करके ही मनुष्य गृहस्थाश्रममें

शादीकी चिन्ता छोड़ दें और यह काम उन्हींके सिपुर्द कर दें तो सारा झगड़ा ही तय हो जावे ! जब उनकी उम्र आवेगी—वे गृहस्थाश्रमके योग्य होंगे, उनमें वीर्य रजकी पूर्णता होगी, तब स्वयम् अपने लिये पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको विवाहके लिये चुन लेगी। जैसा कि पहिले होता था। इस तरह यह सारा झगड़ा ही निपट जायेगा।

वे मातापिता जो अपनी सन्तानके विवाह संस्कारकी चिन्तामें घुला करते हैं, मेरे विचारसे अज्ञानी हैं। हाँ पूर्ण वय प्राप्त होनेपर यदि कुँवारे रहे तो चिन्ता करना आवश्यक है। माता पिताको कोई अधिकार नहीं है कि वह अपने पुत्रपुत्रियोंके लिये जोड़ा तलाश करे। मेरे लिए एक वस्तुको दूसरा आदमी ही ढूंढने जाये, यह कैसी असङ्गत बात है? यहाँ एक उदाहरण है कि सुरेन्द्रनाथ, ब्रजेन्द्रकुमारका एक अभिन्न हृदयी मित्र है। सुरेन्द्रको एक वस्तुकी आवश्यकता हुई तो ब्रजेन्द्र उसे बाजारमें जाकर अच्छीसे अच्छी लाया। उधर सुरेन्द्र भी उसी
बाजारसे ले आया। जब दोनोंकी वस्तु मिलाई गई
की उत्तम ठहरी किन्तु दूसरेके रीदी हुई
सुरेन्द्रको वह अच्छी भी गी ?
अपनी लाई हुई वस्तु स-
लिये भी लागू है—माता
किन्तु वह स्वयम् ढूंढी हुई
नहीं हो सकती! यह एक

दीर्घायु

अपनी वस्तुको मैं खुद ढूढ़ूँ और प्राप्त करूँ इससे बढकर और आनन्दकी बात क्या होगी? अतएव माता पिताको चाहिये कि बिना अपनी सन्तानकी पूर्ण सम्मतिके उनका विवाह संस्कार भूल कर भी न करें। आजकलके मा बाप जहाँ लडकीके योग्य वरकी तलाश करने जाते हैं, वहाँ घरके आदमी कितने हैं? उसके यहाँ ढोर कितने हैं?—जेवर कितना है? मकान जायदाद कितनी है? बरतन भाँडे कितने हैं? रुपया पैसा कितना है? इत्यादि ऊपरी बातोंकी बडी ध्यानसे जाँच पडताल करनेके बाद लडके पर दृष्टि डालते हैं। यदि ऊपर लिखी बातें मन्शाके मुआफिक हुई तो फिर लडका छोटा है, कमजोर है, मूर्ख है, अङ्गहीन है, रोगी है, इत्यादि किसी भी बातका विचार न करके सगाई मङ्गनी कर दी जाती है—मानों अपनी लडकीका विवाह घरके मनुष्यों, ढोरों, जेवरों, बरतनों और रुपयोंकी थैलियोंके साथ करते हों!!! धिक्कार है ऐसे वर-शोधनपर! लानत है ऐसे नीच पितापर! विवाह जैसे पवित्र सस्कार की दुर्दशा क्या हुई देश बर्बाद हो गया! सुख ऐश्वर्य कूचकर गया और हम लोगोंका अल्पायु हो गया!!!

महर्षि मनु कहते हैं कि—

अनिन्दिते स्त्रीविवाहैरनिंद्या भवतिप्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥"
म० ३ श्लोक ४२

शादीकी चिन्ता छोड दें और यह काम उन्हींके सिपुर्द कर दें तो सारा झगडा ही तय हो जावे ! जब उनकी उम्र आवेगी— वे गृहस्थाश्रमके योग्य होंगे, उनमें वीर्य रजकी पूर्णता होगी, तब स्वयम् अपने लिये पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको विवाहके लिये चुन लेगी। जैसा कि पहिले होता था। इस तरह यह सारा झगडा ही निपट जावेगा।

वे मातापिता जो अपनी सन्तानके विवाह संस्कारकी चिन्तामें सूखा करते हैं, मेरे विचारसे अज्ञानी हैं। हाँ पूर्ण वय प्राप्त होनेपर यदि कुंवारे रहे तो चिन्ता करना आवश्यक है। माता पिताको कोई अधिकार नहीं है कि वह अपने पुत्रपुत्रियोंके लिये जोडा तलाश करे। मेरे लिए एक वस्तुको दूसरा आदमी ही ढूढने जावे, यह कैसी असङ्गत बात है ? यहाँ एक उदाहरण है कि सुरेन्द्रनाथ, ब्रजेन्द्रकुमारका एक अभिन्न हृदयी मित्र है। सुरेन्द्रको एक वस्तुकी आवश्यकता हुई तो ब्रजेन्द्र उसे बाजारमें जाकर अच्छीसे अच्छी लाया। उधर सुरेन्द्र भी उसी वस्तुको बाजारसे ले आया। जब दोनोंकी वस्तु मिलाई गई तो ब्रजेन्द्र की उत्तम ठहरी किन्तु दूसरेके हाथकी खरीदी हुई होनेके कारण सुरेन्द्रको वह अच्छी भी उतनी प्रिय नहीं लगी जितनी कि उसे अपनी लाई हुई वस्तु सन्तोषप्रद हुई। यही बात विवाहके लिये भी लागू है—मातापिता कैसी ही अच्छी जोडी मिलादें किन्तु वह स्वयम् ढूंढ़ी हुई एक बुरी जोडीसे कदापि अच्छी नहीं हो सकती ! यह एक मानी हुई, तथा स्वाभाविक बात

है। अपनी वस्तुको मैं खुद ढूंढू और प्राप्त करूँ इससे बढ़कर और आनन्दकी बात क्या होगी? अतएव माता पिताको चाहिये कि बिना अपनी सन्तानकी पूर्ण सम्मतिके उनका विवाह सस्कार भूल कर भी न करे। आजकलके मा बाप जहाँ लडकीके योग्य वरकी तलाश करने जाते हैं, वहाँ घरके आदमी कितने हैं? उसके यहाँ ढोर कितने हैं?—जेवर कितना है? मकान जायदाद कितनी है? बरतन भाँडे कितने हैं? रुपया पैसा कितना है? इत्यादि ऊपरी बातोंकी बडी ध्यानसे जाँच पडताल करनेके बाद लडके पर दृष्टि डालते हैं। यदि ऊपर लिखी बातें मन्शाके मुआफिक हुई तो फिर लडका छोटा है, कमजोर है, मूर्ख है, अङ्गहीन है, रोगी है, इत्यादि किसी भी बातका विचार न करके सगाई मङ्गनी कर दी जाती है—मानों अपनी लडकीका विवाह घरके मनुष्यों, ढोरों, जेवरों, बरतनों और रुपयोंकी थैलियोंके साथ करते हों!!! धिक्कार है ऐसे वर-शोधनपर! लानत है ऐसे नीच पितापर! विवाह जैसे पवित्र सस्कार की दुर्दशा क्या हुई देश बर्बाद हो गया! सुख ऐश्वर्य फूचकर गया और हम लोगोंका अल्पायु हो गया!!!

महर्षि मनु कहते हैं कि—

अनिन्दितै स्त्रीविवाहैरनिंधा भवतिप्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणा तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥"

अ० ३ श्लोक ४२

"उत्तम विवाहसे उत्तम सन्तान पैदा होती है और अधम

शादीकी चिन्ता छोड दें और यह काम उन्हींके सिपुर्द कर दें तो सारा झगडा ही तय हो जावे। जब उनकी उम्र आवेगी—वे गृहस्थाश्रमके योग्य होंगे, उनमें वीर्य रजकी पूर्णता होगी, तब स्वयम् अपने लिये पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको विवाहके लिये चुन लेगी। जैसा कि पहिले होता था। इस तरह यह सारा झगडा ही निपट जावेगा।

वे मातापिता जो अपनी सन्तानके विवाह संस्कारकी चिन्तामें सूखा करते हैं, मेरे विचारसे अज्ञानी हैं। हाँ पूर्ण वय प्राप्त होनेपर यदि कुँवारे रहे तो चिन्ता करना आवश्यक है। माता पिताको कोई अधिकार नहीं है कि वह अपने पुत्रपुत्रियोंके लिये जोडा तलाश करे। मेरे लिए एक वस्तुको दूसरा आदमी ही ढूंढने जावे, यह कैसी असङ्गत बात है? यहाँ एक उदाहरण है कि सुरेन्द्रनाथ, व्रजेन्द्रकुमारका एक अभिन्न हृदयी मित्र है। एक वस्तुकी आवश्यकता हुई तो व्रजेन्द्र उसे बाजारमें अच्छीसे अच्छी लाया। उधर सुरेन्द्र भी उसी वस्तुको ले आया। जब दोनोंकी वस्तु मिलाई गई तो व्रजेन्द्र उत्तम ठहरी किन्तु दूसरेके हाथकी खरीदी हुई होनेके कारण वह अच्छी भी उतनी प्रिय नहीं लगी जितनी कि उसे लाई हुई वस्तु सन्तोषप्रद हुई। यही बात विवाहके भी लागू है—मातापिता कैसी ही अच्छी जोडी मिलादें किन्तु ... हुई एक बुरी जोडीसे कदापि अच्छी नहीं ... मानी हुई, तथा स्वाभाविक बात

है। अपनी वस्तुको मैं खुद ढूढ़ूँ और प्राप्त करूँ इससे बढकर और आनन्दकी बात क्या होगी? अतएव माता पिताको चाहिये कि बिना अपनी सन्तानकी पूर्ण सम्मतिके उनका विवाह संस्कार भूल कर भी न करें। आजकलके मा बाप जहाँ लडकीके योग्य वरकी तलाश करने जाते हैं, वहाँ घरके आदमी कितने हैं? उसके यहाँ ढोर कितने हैं?—जेवर कितना है? मकान जायदाद कितनी है? बरतन भाँडे कितने हैं? रुपया पैसा कितना है? इत्यादि ऊपरी बातोंकी बडी ध्यानसे जाँच पडताल करनेके बाद लड़के पर दृष्टि डालते हैं। यदि ऊपर लिखी बातें मन्शाके मुआफिक हुईं तो फिर लडका छोटा है, कमजोर है, मूर्ख है, अङ्गहीन है, रोगी है, इत्यादि किसी भी बातका विचार न करके सगाई मङ्गनी कर दी जाती है—मानों अपनी लडकीका विवाह वरके मनुष्यों, ढोरों, जेवरों, बरतनों और रुपयोंकी थैलियोंके साथ करते हों!!! धिक्कार है ऐसे वर-शोधनपर! लानत है ऐसे नीच पितापर! विवाह जैसे पवित्र संस्कार की दुर्दशा क्या हुई देश बर्बाद हो गया! सुख ऐश्वर्य कूचकर गया और हम लोगोंका अल्पायु हो गया!!!

महर्षि मनु कहते हैं कि—

अनिन्दितै स्त्रीविवाहैरनिंद्या भवतिप्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणा तस्मान्निद्यान्विवर्जयेत्॥"

अ० ३ श्लोक ४२

"उत्तम विवाहसे ...

दादीकी
ते सारा
वे गृहस्था
स्वयम् अप
चुन लेगी
झगडा ही
वे म
चिन्तामें द

[illegible] है इसलिये
[illegible] है [illegible]
[illegible]
[illegible] है कि विवाह [illegible] बहुत ही
[illegible] लिये लड़के
[illegible] विवाह करनेके
[illegible] धन,
[illegible] है
[illegible]

चित हो चुके हैं, ऐसी दशामें दीर्घायु पानेके लिये एक गृहस्थीका क्या कर्त्तव्य है इस बातका यहाँ विचार करना परम आवश्यक है। विदुर नीतिमें कहा है—

"त्रिविधं नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन.।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रय त्यजेत्।"
(महाभारत उ० ३२ ७०)

"काम, क्रोध, और लोभ ये तीनों नरकके द्वार हैं। इनसे हमारा नाश होता है अतएव इन्हें त्यागना चाहिये।" काम-वासनाको यहाँ नरक बताया है। यह बात बिलकुल सत्य है। यहाँ हमारे पाठकोंके मनमें यह प्रश्न होगा कि "यदि काम वासना नरक ही है तो गृहस्थी भी नरकका द्वार समझनी चाहिये। इसका उत्तर यह है कि जिसे हमलोग गृहस्थ माने बैठे हैं, यह वास्तवमें गृहस्थ नहीं है—यह तो व्यभिचार है, जो हम लोगोंको अल्पायु बनाकर मौतके मुखमें खींचकर ले जा रहा है। यह कामवासना ऐसी वस्तु है कि जितना इस ओर बढ़ा जावे उतनी ही उत्तरोत्तर लालसा बढती जाती है। प्रकृतिने प्राणिका नाश भी उसीमें रख दिया है जो काम वासनाके रूपमें उन्हें सदा अपने वशीभूत रखती है। महर्षि मनु कहते हैं—

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्मेव भूय एवाभि वर्धते॥
अ० २ श्लो० ६४

"विषय भोगसे विषयकी वैसे ही शान्ति कदापि नहीं

मनुष्यका कर्त्तव्य है—यह प्रकृतिकी भी आज्ञा है, इसलिये अविवाहित पुरुष आधा है—अपङ्ग है। घरमें रहना ही गृहस्थ धर्म नहीं है बल्कि भार्यासहित २५ वर्षतक सुख पूर्वक रहना ही गृहस्थ धर्म है। तात्पर्य यह है कि विवाह संस्कार बहुत ही सोच विचारकर करना चाहिये। अपने स्वार्थके लिये लडके लड़कियोंके जीवनको नष्ट नहीं करना चाहिये। विवाह करनेके पहिले यह जान लेना चाहिये कि, कुल, विद्या, वय, शील, धन, रूप, और देश कैसा है। शुक्रनीतिमें भी यही कहा है।

"आदौ कुल परीक्षेत ततोविद्या ततो वय ।
शीलं धन ततोरूप देश पश्चाद्विवाहयेत् ॥"

महर्षि मनु कहते हैं कि—

"अव्यंगाङ्गी सौम्यनाम्नीं हंसवारण गामिनीम् ।
तनु लोम केशदशना मृद्व ङ्गी मुद्वहेत् स्त्रियम् ॥"
अ० ३ श्लो० १०

जो अङ्गहीन न हो, जिसका सुन्दर सीधा नाम हो, हंस और हाथीके समान चाल हो और जिसके रोम, केश, और दाँत छोटे हों ऐसी कोमल अङ्गवाली कन्याके साथ विवाह करना चाहिये। इसी प्रकार मनुजी इस विषयमें बहुतसे उपदेश देते हैं जिन्हें देखना हो वे मनुस्मृति अध्याय तीसरेमें देख सकते हैं। हमलोगोंको चाहिये कि हम अपने शास्त्रकारोंकी आज्ञानुसार अपने आश्रमोंमें सुधार करे।

अब आप आज कलके वर्तमान विवाहकी दशासे भी परि-

चित हो चुके हैं, ऐसी दशामें दीर्घायु पानेके लिये एक गृहस्थीका क्या कर्त्तव्य है इस बातका यहाँ विचार करना परम आवश्यक हैं। विदुर नीतिमें कहा है—

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रय त्यजेत्।"
(महाभारत उ० ३२. ७०)

"काम, क्रोध, और लोभ ये तीनों नरकके द्वार हैं। इनसे हमारा नाश होता है अतएव इन्हें त्यागना चाहिये।" काम-वासनाको यहाँ नरक बताया है। यह बात बिलकुल सत्य हैं। यहाँ हमारे पाठकोंके मनमें यह प्रश्न होगा कि "यदि काम वासना नरक ही है तो गृहस्थी भी नरकका द्वार समझनी चाहिये। इसका उत्तर यह है कि जिसे हमलोग गृहस्थ माने बैठे हैं, वह वास्तवमें गृहस्थ नहीं हैं—वह तो व्यभिचार है, जो हम लोगोंको अल्पायु बनाकर मौतके मुखमें खींचकर ले जा रहा है। यह कामवासना ऐसी वस्तु है कि जितना इस ओर बढा जावे उतनी ही उत्तरोत्तर लालसा बढती जाती है। प्रकृतिने प्राणिका नाश भी उसीमें रख दिया है जो काम वासनाके रूपमें उन्हें सदा अपने वशीभूत रखती है। महर्षि मनु कहते हैं—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्मेव भूय एवाभि वर्धते॥
अ० २ श्लो० ९४

"विषय भोगसे विषयकी वैसे ही शान्ति कदापि

हो सकती जैसे कि अग्निमें घृत डालनेसे अग्नि नहीं बुझ सकती!" अर्थात् विषयको कदापि नहीं बढ़ने देना चाहिये। आजकलका गृहस्थाश्रम तो गृहस्थाश्रम कहलाने योग्य ही नहीं है—इसको यदि "व्यभिचाराश्रम" या अधमाश्रम" कह दें तो अत्युक्ति न होगी। विवाह संस्कारके बाद स्त्रीपुरुष मैथुनमें सलग्न होते हैं—यदि कुछ समझदार या नासमझ युवक इससे बचना भी चाहते हैं तो उनके निर्लज्ज मातापिता या घरके अन्य लोग उन्हें जबरदस्ती किसी एक निर्जन कमरेमें बन्द कर देते हैं!!! कहिये क्या इसीका नाम 'गृहस्थाश्रम है? जो कार्य पति-पत्नी की इच्छासे प्रसन्नता पूर्वक होना चाहिये, उसी कार्यको आज हमारे इस अधम समाजमें जबरदस्ती कराया जाता है! कभी कभी हमारे अज्ञानी पतिपत्नी वीर्यकी अमूल्यताको न जानकर इसके खर्च करनेमें इतने भिड जाते हैं कि नित्य एकबार मैथुन किये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ती!! इन्द्रिय विषय जितना बढाया जावे उतना ही वह बढ़ता जाता है—यह एक प्रकृतिका नियम है। फल यह होता है कि पहले वीर्य खर्च होता है, जब वह नहीं रहता तो अपक्व वीर्य जाने लगता है और जब आमदनीसे अधिक खर्चा हो जाता है तब उस जगह खून जाने लगता है और दम्पत्तिको वही आनन्द (!!) आता है जो वीर्य स्रावसे आता था। यह दशा घर घर देखी जाती है। विवाह जैसे पवित्र और उत्तर दायित्वपूर्ण सस्कारकी ऐसी अधोगति देखकर जितना दुःख होता है, वह लिखकर प्रदर्शित नहीं किया

जा सकता। कुछ लोग इससे भी बढ़े हुए हैं—एक रातमें दो तीन बार मैथुन करना उनका नित्य कर्म है-ये लोग अत्यन्त नीच और पतित हैं—इन लोगोंने दवाइयां खाखाकर अपना वीर्यपात करना ही अपने जीवनका उद्देश मान रखा है। मानव समाजमें ऐसे लोग धिक्कारने तथा मुँह न दिखाने योग्य हैं। स्त्री जातिके साथ इन अधम पुरुषोंका अन्याय है। स्त्री जातिको इन लोगोंने ऐशो आरामकी मैशीन सी समझ रखा है। ऐसे लोगोंकी आयु विवाहके पश्चात् ४।५ सालसे अधिक नहीं होती। शीघ्र ही क्षय तथा अन्य दूसरे राज रोगोंके शिकार बनकर इस लोकसे अपना मुँह काला करते हैं।

अब हमें यहाँ यह विचारना है कि "विवाह संस्कारके पश्चात् मैथुन कितने कितने दिनके अन्तरसे करना चाहिये?" इस विषयमें हमारे महर्षियोंकी आज्ञा है कि—

"ऋतौ भार्या मुपेयात्।"

मनुष्यको ऋतुगामी होना चाहिये। जब स्त्री रजस्वला हो और स्नान करके शुद्ध हो तभी उसे गर्भाधानके योग्य समझना चाहिये। कई जघन्य मनुष्य इतने नीच होते हैं कि ऋतुमती स्त्री से भी सभोग करनेमें नहीं चूकते। ऐसे मनुष्य अल्पायु तथा रोगमें पड़े हुए सड़ सड़कर प्राण त्यागते हैं। ऋतुमतीसे सम्भोग आयुनाशक है। अतएव रजदर्शनसे तीन दिनतक उसे स्पर्शमात्र नहीं करना चाहिये। यह एक साधारण नियम है कि स्त्री चौथे दिन शुद्ध हो जाती है परन्तु कभी कभी देखा

गया है कि इससे कम या अधिक दिन भी लग जाते हैं। साराश यह कि ऋतुस्रावके दिनोंमें स्त्री प्रसङ्ग वर्जित है। जब वह शुद्ध हो तभी उसके साथ समागम होना चाहिये। समागम भी रजोदर्शनसे सोलह दिन तक ही होना चाहिये क्योंकि इन दिनों पुष्प, अर्थात् गर्भस्थानका मुख खुला रहता है बादमें बन्द हो जाता है। मुख बन्द होनेके पश्चात् वीर्यपात करनेसे सिवाय हानिके कुछ भी लाभ नहीं—मूर्खता है—नीचता है। मनुजी कहते हैं—

"ऋतु स्वाभाविक स्त्रीणा, रात्रय षोडश स्मृता।"

केवल सोलह रात्रिया ही ऋतुकाल माना गया है। उनमेंसे

"तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशीचया।
त्रयोदशीच शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रय।"
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु॥

आदिका चार और ग्यारहवी तथा तेरहवीं, रात्रियाँ निन्दित हैं, शेष १० अच्छी हैं। युग्म अर्थात् छठी आठवीं, दसवीं, बारहवीं चौदहवीं और सोलहवीं रात्रिमें सङ्गम करनेसे पुत्र तथा ५ वी, ७ वीं ९ वी और १५ वीं रात्रिमें सङ्गम करनेसे कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। इन रात्रियोंके अतिरिक्त पर्व्व दिनकी रात्रिया भी वर्ज्जित हैं। किन्तु प्राय देखा जाता है कि हमारे भारतीय बन्धु पर्व दिनोंको पवित्र दिन या खुशीका दिन, समझकर स्त्री सङ्गम करते हैं! यह कैसी [illegible] है [illegible] क्या ऐसे गर्भसे उत्पन्न बालक दीर्घायु पा सकते

पूर्णिमा और ग्रहण आदिके दिनोंको बचानेका ध्यान अच्छी प्रकार रखना चाहिये। नियम पूर्वक चलनेवाला गृहस्थ भी ब्रह्मचारी होता है।

"निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन्॥"

मनु० अ० ३ श्लो० ५०

जो मनुष्य निन्दित छ और अन्य आठ रात्रियोंमें स्त्री संसर्गको त्यागता है, वह ब्रह्मचारी ही होता है। गृहस्थ भी यदि चाहे तो ब्रह्मचारी हो सकता है। यह भाव इस श्लोकसे स्पष्ट हो रहा है।

ब्रह्मचारिणी कन्याका पाणिग्रहण संस्कार यदि ब्रह्मचारी ही के साथ किया जावे और वे ऋतुगामी ही होवे तो एक ही वारके सङ्गमसे उनके सन्तान हो जावेगी। यदि एक वारमें गर्भ नहीं रहा तो २। ४ वारमें अवश्य ही गर्भाधान हो जायगा। ऋतुस्नाता भार्यासे सङ्गम करनेके पश्चात् उसी मासमें २। ४ वार स्त्री समागम नहीं करना चाहिये। दूसरे समय रजस्वला होने तक प्रतीक्षा कीजिये। यदि वह रजस्वला न हो तो समझ लीजिये कि गर्भ रह गया, और रजस्वला हो जावे तो फिर गर्भाधान कीजिये कि इस प्रकार एक ब्रह्मचारी पुरुष ब्रह्मचारिणी स्त्रीमें अधिक से अधिक २। ४ वारके सङ्गम द्वारा ही गर्भस्थापित कर सकता है। जो ब्रह्मचारी नहीं है, उनके विषयमें कुछ भी निश्चय रूपसे नहीं कहा जा सकता

गर्भ रह जानेके पश्चात् कभी भी स्त्री प्रसंग नहीं करना चाहिये। वे लोग अत्यन्त नीच और अधम हैं जो गर्भस्थितिके पश्चात् भी स्त्री जातिके साथ अन्याय करनेमे जरा भी लज्जित नहीं होते। लिखते हुए लेखनी लज्जित होती है, कि कई मूर्ख नृशंस बच्चा पैदा होनेके समयके कुछ पहिले तक भी अपनी पत्नीके साथ काला मुँह किये बिना नहीं रह सकते। गर्भावस्थामें स्त्रीके साथ मैथुन करनेका इतना भयङ्कर परिणाम होता है, कि गर्भस्थ सन्तान तो अल्पायु होती ही है बल्कि पतिपत्नी भी अपनी आयुको नष्ट कर देते हैं। अतएव सदैव ऋतुगामी रहिये। यदि आप ऋतुगामी ही रहेंगे तो आप गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी ब्रह्मचारी ही हैं। जिन भाइयोंका ब्रह्मचर्य अज्ञानतासे नष्ट हो चुका है, उन्हें विवाह संस्कारके पश्चात् ब्रह्मचर्यसे रहनेका बहुत ही ध्यान रखना चाहिये। ऐसा करनेसे भी ... हुई शक्ति पुन प्राप्त हो सकती है।

"रजस्वला न ... पतिता तथा ॥"

गर्भवती स्त्रीके साथ ... करनेका तात्पर्य नहीं है, कि ... गमन दिया जावे। यह तो ... । एक पतीव्रत और स्त्रीको ... दी वाला है। ऐसे जितेन्द्रिय ... सिद्धियाँ सहजहीमें प्राप्त हो ... कि पत्नीमें गर्भस्थापन करनेके

गर्भ रह जानेके पश्चात् कभी भी स्त्री प्रसंग नहीं करना चाहिये। वे लोग अत्यन्त नीच और अधम हैं जो गर्भस्थितिके पश्चात् भी स्त्री जातिके साथ अन्याय करनेमें जरा भी लज्जित नहीं होते। लिखते हुए लेखनी लज्जित होती है, कि कई मूर्ख नृशंस बच्चा पैदा होनेके समयके कुछ पहिले तक भी अपनी पत्नीके साथ काला मुँह किये बिना नहीं रह सकते। गर्भावस्थामें स्त्रीके साथ मैथुन करनेका इतना भयङ्कर परिणाम होता है, कि गर्भस्थ सन्तान तो अल्पायु होती ही है बल्कि पतिपत्नी भी अपनी आयुको नष्ट कर देते हैं। अतएव सदैव

गामी रहिये। यदि आप ऋतुगामी ही

में रहते हुए भी ब्रह्मचारी ही हैं। जिन

नतासे नष्ट हो चुका है, उन्हें विवाह ब्र

रहनेका बहुत ही ध्यान रखना चाहि

हुई शक्ति पुनः प्राप्त हो सकती है।

"रजस्वलां न गच्छेत ।

गर्भवती स्त्रीके साथ सम्भोग

तात्पर्य्य नहीं है, कि उसको

दिया जावे। यह तो बड़ा ही

एक पतीव्रत और स्त्रीको सदा

वाला है। ऐसे जितेन्द्रिय पुरुष

सहजहीमें प्राप्त हो जाती

करनेके पश्च

अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है, कि ब्रह्मचर्य कबतक पालन करना चाहिये ? इसका उत्तर यह है, कि जिस प्रकार गर्भवती स्त्री के साथ सङ्गम मना है, उसी तरह जबतक वह बच्चे को दूध पिलाती है तबतक उसके साथ विषय भोग नहीं करना चाहिये। स्तनपानके समयमें जो लोग इस नियमका अतिक्रमण करते हैं, उनकी सन्तान, रोगी, अल्पायु, निर्लज्ज और मूर्ख होती है। अतएव गर्भके ९ महीने तथा बालकके दुग्धपान तक अर्थात् दाँत न आनेतकके कमसे कम १२ महीने भी मान लिये जावें तो इस प्रकार २१ महीनों तक ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक दम्पतिको अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये। बहुतसे अनुभवी डाक्टर वैद्य और हकीमोंका कहना कि "बालकोंको स्तनपान करानेके कारण स्त्री निर्बल बन जाती है—इतना ही नहीं, बल्कि उस समय स्त्री के सभी गर्भस्थान सम्बन्धी अवयव अच्छी प्रकार परिपक्व नहीं हो चुकते हैं, इसलिये स्त्रीको अधिक आराम देनेकी आवश्यकता है। इसकी अवधि कमसेकम १२ महीनेकी होनी चाहिये। इस प्रकार २१+१२=३३ महीने तक—पौने तीन वर्षतक पतिपत्नीको ब्रह्मचर्यसे रहकर बादमें गर्भाधान करना चाहिये। जो मनुष्य "प्रभुशासन" के इस नियमको पालते हैं, वे ही दीर्घायु पाते हैं और जो लोग इसकी परवाह नहीं करते, वे अपने कियेका फल भोगते हैं।

हमारे विषयी पाठक, गृहस्थाश्रममें रहकर ३३ महीनोंका अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेकी पढ़कर न जाने

दिलमें क्या क्या सोचेंगे, परन्तु हमने तो जो बात आयुर्वेदमें तथा अनुभवी डाक्टरों, शरीर-शास्त्रज्ञोंके द्वारा सुनी, उसीको यहाँ लिखा है। साथ ही प्रकृतिका नियम भी ऐसा ही देखनेमें आता है। इस धर्मानुकूल ब्रह्मचर्य साधन पूर्वक गृहस्थाश्रममें रहकर मनुष्य सौवर्षसे भी अधिक आयु पा सकता है। जो लोग एक पत्नीव्रत रहते हुए नियम पूर्वक चलते हैं, वे अवश्य दीर्घायु पाते हैं। हमारे ग्राम आगर मालवामें एक ओंकारजी नाई नामक वृद्ध हैं, उसकी वय इस समय १०२ वर्ष की है। उससे बातचीत करने पर उसने हमें बार बार यह कहा कि—"मैं वीर्यरक्षाका बहुत ध्यान रखता था। मेरा विवाह संस्कार २० वर्ष की वयके लगभग हुआ था। कुछ वर्षों बाद ही मेरी पत्नीका देहान्त हो गया तब मैंने लोगोंके विशेष अनुरोध करने पर भी विवाह नहीं किया और ब्रह्मचर्य पूर्वक अपना जीवन बिताया। यह व्यक्ति अब भी मौजूद है। बिना चश्मेके खूब अच्छी तरह देखता है। कानोंसे खूब सुनता है। नित्य दोचार कोसकी मंजिल भी करता है। दाढें गिर गई हैं—आगेके दाँत अभीतक मौजूद हैं। वह स्वस्थ है। नीरोग है। यह दीर्घायु उसने एक पत्नीव्रत द्वारा प्राप्त की है। तात्पर्य्य यह कि मनुष्यको चाहिये कि जिसके साथ विवाह संस्कार हुआ है, उसे छोडकर अन्य स्त्रियोंमें—यदि बडी हों तो मातृभाव, छोटी हो तो पुत्रीभाव और बराबरवाली हों तो भगिनी भाव रखे। इससे बढ़कर आयु वृद्धिका दूसरा नुस्खा इस जगतमें कहीं नहीं

मिल सकता। यहाँ एक उदाहरण देखिये—"कृषक भूमिमें बीज डालनेके पूर्व उसको जोतकर, खाद देकर तय्यार करता है—उत्तम बीजकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है। यह भूमि तथा बीजका ब्रह्मचर्य हुआ। बादमें ऋतु आनेपर ही उत्तम बीज खेतमें बोता है। यह ऋतुस्नानके साथ गर्भाधान समझिये। तत्पश्चात् वह बीजके द्वारा वृक्ष पैदा होने, पनपने और फलने फूलने तक उस भूमिमें कुछ नहीं बोता—बीज नहीं बोता—यहाँ तक कि फसल कट जानेके बाद कुछ महीनोंतक भूमिको पड़त रखकर उसकी नष्ट हुई शक्तिको उसमें पुन उत्पन्न होने तक, उसमें बीज नहीं बोता। यह गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्य है। इसी प्रकार गर्भाधानसे लेकर ३३ महीने तक पुरुषको स्त्री प्रसङ्ग नहीं करना चाहिये। नहीं तो उत्तम दीर्घायुषी सन्तान भी पैदा नहीं होगी और स्त्रीपुरुष भी अपनी अपनी आयु क्षीण कर लेंगे।

इसी प्रकरणमें हम पीछे लिख आये हैं कि आयुके ४ भाग चार आश्रमोंके लिये रखने चाहिये। २५ वर्ष ब्रह्मचर्यमें पूर्ण करनेके बाद २५ का गृहस्थ आश्रम है। २६ वे वर्ष यदि ब्रह्मचारीका विवाह संस्कार हुआ तो उसके वानप्रस्थाश्रममें जाने तक उसका पुत्र भी २५ वर्षका ब्रह्मचारी होकर बादमें गृही बन जावेगा। वानप्रस्थाश्रममें सन्तान उत्पन्न करनेका कार्य करना वर्जित है। साराश यह कि सारे जीवनमें आठ या नौ बारसे अधिक अपनी भार्यामें वीर्यपात नहीं करना चाहिये। क्योंकि धर्मशास्त्र और आयुर्वेद तीन वर्षमें एक बार .

संगमकी आज्ञा देता है। ऐसे ब्रह्मचारी दम्पतिके एक बार सम्भोगसे गर्भ रहना अनिवार्य है। वाग्भट्ट लिख गये हैं कि—

"शुद्धे शुक्रार्त्तवस्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथः।
स्नेहैं पुंसवनैं स्निग्ध शुद्ध शीलित वस्तिकम्।"

जिनके शुक्र और आर्त्तव शुद्ध हों, जो रोग रहित हों, परस्पर अच्छी प्रकार प्रेम करनेवाले हों, स्नेहन और पुंसवनके द्वारा स्निग्ध एवं शुद्ध हुए हों तथा वस्ति लेनेका अभ्यास हो, ऐसे जोड़ेसे ही उत्तम सन्तान पैदा हो सकती है। बहुतसे मनुष्योंका विश्वास है कि "अच्छी बुरी सन्तान तकदीरके हाथमें हैं, हम क्या कर सकते हैं।" आत्मशासन प्रकरणमें हमने इस विषयपर बहुत कुछ लिखा है। भली बुरी सन्तान, रूप कुरूप सन्तान, बुद्धिमान या मूर्ख सन्तान, रोगी या निरोगी सन्तान अल्पायु या दीर्घायु सन्तान, साराश, यह कि शूर, डरपोक, कवि, वैज्ञानिक, गणितज्ञ, गायन वादन विशारद जैसी इच्छा हो वैसी ही सन्तान मनुष्य पैदा कर सकता है। यहाँतक कि इच्छानुसार पुत्र और पुत्री तक पैदा करना भी मनुष्योंके हाथकी ही बात है—चाहे पुत्र पैदा करो या पुत्री! यह हमारा विषय नहीं है अतएव इसपर कुछ अधिक लिखना अनधिकार चेष्टा है। हमारे देशसे इस विद्याका चिरकालसे लोप हो चुका है अतएव लोग हमारे उक्त कथनपर बहुत ही कम विश्वास लावेंगे। देखिये सुश्रुतमें लिखा है कि—

"आहाराचार चेष्टाभिर्यादृशोभि समन्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयाता तयो पुत्रोऽपितादृश।"

"जिस तरहके आहार विहार, आचार, और चेष्टा द्वारा स्त्रीपुरुष संयोग करेंगे, उसी प्रकारके आहार विहार और चेष्टा वाला बालक भी उत्पन्न होता है।" इन श्लोकोंपर विश्वास रखिये। यह बात अक्षरश सत्य है। पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंको इस विद्याका पूर्ण ज्ञान था—गुरु इस विद्याकी भी शिक्षा देता था। इसी कारण वे सर्वगुण सम्पन्न होते थे। आज न तो वे गुरुजी ही हैं और न वैसे शिष्य हैं! आजकलके गुरुजी बेचारे स्वयं इस विषयमें मूर्ख हैं, शिष्योंको सिखावें क्या खाक? महाभारतमें जिन्होंने अभिमन्युके चक्रव्यूह भेदनकी शिक्षाकी कथा पढी है, वे इस महत्वपूर्ण बातको अच्छी तरह जानते होंगे कि—"अभिमन्युके पिता अर्जुनने गर्भमें ही अपने पुत्रको चक्रव्यूह जैसे विकट व्यूहका तोडना सिखा दिया था।"

मनुष्यको मनमें यह निश्चय रखना चाहिये कि—"ब्रह्मचर्याश्रमकी अपेक्षा गृहस्थाश्रममें ब्रह्मचर्य रखनेका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।" क्योंकि यदि गृहस्थमें घुसकर वीर्यका अपव्यय आरम्भ कर दिया तो ब्रह्मचर्य रखा जैसा न रखा। प्रकृतिकी भी यही आज्ञा है, कि व्यर्थ ही वीर्यको नष्ट नहीं करना चाहिये। किसी भी पशुको देख लीजिये वह ब्रह्मचारी है, ऋतुगामी है और नियमित रीतिसे चलता है। गर्भवतीसे पशु कदापि सम्भोग नहीं करता। पशु हो कर भी वे इन नियमोंका

संगमकी आज्ञा देता है। ऐसे ब्रह्मचारी दम्पतिके एक बार सम्भोगसे गर्भ रहना अनिवार्य है। वाग्भट्ट लिख गये हैं कि—

"शुद्धं शुक्रात्तवंसत्त्व सरक्तं मिथुनं मिथः।
स्नेहैं पुंसवने स्निग्ध शुद्धं शीलित वस्तिकम्।"

जिनके शुक्र और आर्त्तव शुद्ध हों, जो रोग रहित हों, परस्पर अच्छी प्रकार प्रेम करनेवाले हों, स्नेहन और पुंसवनके द्वारा स्निग्ध एवं शुद्ध हुए हों तथा वस्ति लेनेका अभ्यास हो, ऐसे जोडेसे ही उत्तम सन्तान पैदा हो सकती है। बहुतसे मनुष्योंका विश्वास है कि "अच्छी बुरी सन्तान तकदीरके हाथमें हैं, हम क्या कर सकते हैं।" आत्मशासन प्रकरणमें हमने इस विषयपर बहुत कुछ लिखा है। भली बुरी सन्तान, रूप कुरूप सन्तान, बुद्धिमान या मूर्ख सन्तान, रोगी या निरोगी सन्तान अल्पायु या दीर्घायु सन्तान, साराश, यह कि शूर, डरपोक, कवि, वैज्ञानिक, गणितज्ञ, गायन वादन विशारद जैसी इच्छा हो वैसी ही सन्तान मनुष्य पैदा कर सकता है। यहाँतक कि इच्छानुसार पुत्र और पुत्री तक पैदा करना भी मनुष्योंके हाथकी ही बात है—चाहे पुत्र पैदा करो या पुत्री! यह हमारा विषय नहीं हैं अतएव इसपर कुछ अधिक लिखना अनधिकार चेष्टा है। हमारे देशसे इस विद्याका चिरकालसे लोप हो चुका है अतएव लोग हमारे उक्त कथनपर बहुत ही कम विश्वास लावेंगे। देखिये सुश्रुतमें लिखा है कि—

"अहाराचार चेष्टाभिर्यादृशीभि समन्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयाता तयो पुत्रोऽपितादृशः।"

"जिस तरहके आहार विहार, आचार, और चेष्टा द्वारा स्त्रीपुरुष संयोग करेंगे, उसी प्रकारके आहार विहार और चेष्टा वाला बालक भी उत्पन्न होता है।" इन श्लोकोंपर विश्वास रखिये। यह बात अक्षरशः सत्य है। पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंको इस विद्याका पूर्ण ज्ञान था—गुरु इस विद्याकी भी शिक्षा देता था। इसी कारण वे सर्वगुण सम्पन्न होते थे। आज न तो वे गुरुजी ही हैं और न वैसे शिष्य हैं! आजकलके गुरुजी वेचारे स्वयं इस विषयमें मूर्ख हैं, शिष्योंको सिखावें क्या खाक? महाभारतमें जिन्होंने अभिमन्युके चक्रव्यूह भेदनकी शिक्षाकी कथा पढी है, वे इस महत्वपूर्ण बातको अच्छी तरह जानते होंगे कि—"अभिमन्युके पिता अर्जुनने गर्भमें ही अपने पुत्रको चक्रव्यूह जैसे विकट व्यूहका तोडना सिखा दिया था!"

मनुष्यको मनमें यह निश्चय रखना चाहिये कि—"ब्रह्मचर्याश्रमकी अपेक्षा गृहस्थाश्रममें ब्रह्मचर्य रखनेका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।" क्योंकि यदि गृहस्थमें घुसकर वीर्यका अपव्यय आरम्भ कर दिया तो ब्रह्मचर्य रखा जैसा न रखा। प्रकृतिकी भी यही आज्ञा है, कि व्यर्थ ही वीर्यको नष्ट नहीं करना चाहिये। किसी भी पशुको देख लीजिये वह ब्रह्मचारी है, ऋतु गामी है और नियमित रीतिसे चलता है। गर्भवतीसे पशु कदापि सम्भोग नहीं करता। पशु हो कर भी वे इन नियमोंका

प्राणायाम

"प्राणापानौ मृत्योर्मा पात स्वाहा ।"

(३ । १६ । १)

अथर्व वेदका उक्त मन्त्र प्राण और अपान दोनों वायुका महत्त्व वर्णन कर रहा है अर्थात् "प्राण अपान मुझे मृत्युसे बचावे ।" दीर्घायु दिलानेकी ताकत अपान और पान वायुमें है, यह इससे स्पष्ट हो रहा है । और देखिये—

"प्राणायनमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो य...

"जिसके आधीन (इद सर्वं) ...
लिये मेरा नमन है । वह प्राण ...
उसमें सब जगत (प्रतिष्ठित) ...

है । परमात्माकी इस ...
है । प्राणीमात्रके प्रत्येक शरीरमें ...
तथा विभिन्न इन्द्रिया और ...
हैं । प्राणके आधीन ही सब ...
और सब अवयवोंका ईश्वर है

आधार है। प्राणके विना इस शरीरकी स्थिति नहीं है। प्राणको वशमें करनेसे सब शरीर सुदृढ और निरोग रह सकता है। जब प्राण ही वशमें हो गये तो मृत्यु भी वशमें ही समझिये।

अपने शरीरमें श्वास प्रश्वास की जो क्रिया निरन्तर होती रहती है, इसीका नाम प्राण है। जन्मसे मरणपर्यन्त प्राण अपना कार्य करता है। समस्त इन्द्रियों और अवयवोंके मर जानेके पश्चात् भी कुछ देरतक प्राण अपना कार्य करता रहता है—अतएव सबमें प्राण ही मुख्य है और यह सबका आधार है। जो लोग अपने प्राणको साधारण श्वास समझते हैं, वे भूलते हैं। इसे दिव्यशक्तिका पवित्र अंश समझना चाहिये। मनकी इच्छा शक्तिसे प्रेरित प्राण समस्त शरीरको आरोग्यता प्रदान करनेमें समर्थ होता है, इस कारण प्राणका महत्व इस शरीरमें अधिक है। प्रत्येक मनुष्यको अपने मनमें यह दृढ निश्चय रखना चाहिये कि—

"प्राणके आधीन मेरा यह सारा शरीर है। प्राणके कारण ही यह स्थिर है—इसकी समस्त हलचल प्राणकी प्रेरणासे ही होती हैं—ऐसे प्राणकी मैं उपासना करूँगा और इसे अपने वशमें करूंगा। प्राणायामसे उसे प्रसन्न करूंगा और वशीभूत प्राणद्वारा इच्छानुसार अपने शरीरमें कार्य करूंगा। इस प्रकार एक न एक दिन मैं मृत्युपर विजयी बनकर दीर्घायु प्राप्त करूंगा।" इस भावनाको मनमें धारण करके प्राणशक्ति को अपने काबूमें करना चाहिये। इस अत्यन्त बलवान प्राणको

प्राणायाम

"प्राणापानौ मृत्योर्मा पात स्वाहा।"

(३।-१६।१)

अथर्व वेदका उक्त मन्त्र प्राण और अपान दोनों वायुका महत्व वर्णन कर रहा है अर्थात् "प्राण अपान मुझे मृत्युसे बचावें।" दीर्घायु दिलानेकी ताकत अपान और पान वायुमें है, यह इससे स्पष्ट हो रहा है। और देखिये—

"प्राणायनमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।"

अथर्व ११-४-६

"जिसके आधीन (इद् सर्वं) यह सब जगत है, उस प्राणके लिये मेरा नमन है! वह प्राण सबका ईश्वर (भूत) है और उसमें सब जगत (प्रतिष्ठित) वर्त्तमान है।" यहाँ यह "प्राण" शब्द परमात्माकी विश्वव्यापक जीवनशक्ति (Life energy) का सूचक है। परमात्माकी इस जीवन-शक्तिके अधीन यह सारा संसार है। प्राणीमात्रके प्रत्येक शरीरमें जो जो इन्द्रियादिक शक्तियाँ तथा विभिन्न इन्द्रिया और अवयव हैं, वे सभी प्राणके वशमें हैं। प्राणके आधीन ही सब शरीर है। शरीरमें प्राण ही इन्द्रियों और सब अवयवोंका ईश्वर है—क्योंकि वही इस जगतका

आधार है। प्राणके बिना इस शरीरकी स्थिति नहीं है। प्राणको वशमें करनेसे सब शरीर सुदृढ और निरोग रह सकता है। जब प्राण ही वशमें हो गये तो मृत्यु भी वशमें ही समझिये।

अपने शरीरमें श्वास प्रश्वास की जो क्रिया निरन्तर होती रहती है, इसीका नाम प्राण है। जन्मसे मरणपर्यन्त प्राण अपना कार्य करता है। समस्त इन्द्रियों और अवयवोंके मर जानेके पश्चात् भी कुछ देरतक प्राण अपना कार्य करता रहता है—अतएव सबमें प्राण ही मुख्य है और वह सबका आधार है। जो लोग अपने प्राणको साधारण श्वास समझते हैं, वे भूलते हैं। इसे दिव्यशक्तिका पवित्र अंश समझना चाहिये। मनकी इच्छा शक्तिसे प्रेरित प्राण समस्त शरीरको आरोग्यता प्रदान करनेमें समर्थ होता है, इस कारण प्राणका महत्व इस शरीरमें अधिक है। प्रत्येक मनुष्यको अपने मनमें यह दृढ निश्चय रखना चाहिये कि—

"प्राणके आधीन मेरा यह सारा शरीर है। प्राणके कारण ही यह स्थिर है—इसकी समस्त हलचल प्राणकी प्रेरणासे ही होती हैं—ऐसे प्राणकी मैं उपासना करूँगा और इसे अपने वशमें करूंगा। प्राणायामसे उसे प्रसन्न करूंगा और वशीभूत प्राणद्वारा इच्छानुसार अपने शरीरमें कार्य करूंगा। इस प्रकार एक न एक दिन मैं मृत्युपर विजयी बनकर दीर्घायु प्राप्त करूंगा।" इस भावनाको मनमें धारण करके प्राणशक्ति को अपने काबूमें करना चाहिये। इस अत्यन्त बलवान प्राणको

अपने काबूमें करनेके लिये एकमात्र यदि कोई उपाय है तो वह "प्राणायाम" ही है।

जिस तरह एक मदोन्मत्त हाथीको एक छोटासा लोहेका अङ्कुश अपने वशमें रखकर नाच नचाता है, उसी तरह प्राणको अपने वशमें करनेके लिये प्राणायाम ही अकुशका काम देता है। प्राणायामका अर्थ केवल श्वासका निरोध ही नही है बल्कि जिस जीवनशक्तिके द्वारा फेफडोंको गति मिलती है, उस शक्तिको अधीन करना है। अतएव जितना प्राणका नियम होता जायगा, उतना ही शरीरके स्नायुओंपर हमारा अधिकार जमता जायेगा। जीवात्माकी शक्ति देहपर आकर कार्य करने लगती है, उस समय देहाकाशसे प्राणकी उत्पत्ति होती है। यही प्राणश्वास और उच्छ्वासके रूपमे हमें दृष्टि आता है। प्राणका आयाम अर्थात् विस्तार करना ही प्राणायाम है। प्राणकी मर्यादाको विस्तृत करनेका नाम ही प्राणायाम है। प्राणायामकी क्रियामें पान और अपानका सयोग होता है और इससे प्राण अपानकी शक्ति बढती है। यही कारण है कि याज्ञवल्क्यादिने प्राणायामका लक्षण प्राण तथा अपानका सयोग ही किया है। इस विषयमें अथर्वका यह मन्त्र विचारने योग्य है।

"द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावत ।
दक्ष ते अन्य आवतु व्य १ न्यों वातु यद्‌ रप ।"

४ । १३ । २

(इमौ) यह (द्वौ) दोनों (वातौ) प्राण और अपान वायु (असिन्धो) बहनेवाले इन्द्रिय देशतक और (आपरावत) बाहिर दूरस्थानतक (वात) चलते रहते हैं। (अन्य) एक अर्थात् प्राणवायु (ते) तेरा (दक्षम्) वृद्धि करनेवाले बलको (आवातु) बहाकर लावे और (अन्य:) दूसरा अपानवायु (यत् रप) जो दोष है इसे (विधातु) बहाकर निकाल देवे। प्राण बाहिरसे अन्दर जाता है यह उसकी "आन्तरिक गति है बादमें जो श्वास अन्दरसे बाहिर आता है यह उसकी "बाह्य गति" है। इसका नामही श्वासोच्छ्वास है। उच्छ्वासको प्रश्वास भी कहते हैं। इन दोनों गतियोंसे यह प्राण, देहका सञ्चालन कर रहा है। प्राण निरोधसे अपनी सञ्चालक शक्तिकी स्वाधीनता होती है। "यह हमारा प्राण, विश्वव्यापक सञ्चालक शक्तिका ही एक अंश है।" इस भावनाको हृदयमें धारण करके ही प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये।

जिस प्रकार इस शरीरमें प्राण है, उसी प्रकार बाहिर भी सर्वत्र प्राण है। अर्थात् यह प्राणमय जगत है। विना प्राणके इस जगतकी स्थिति ही नहीं। हमारे शरीरमें प्राण उप वायुका नाम है, जो नासिकाद्वारा छातीमें पहुचता है। अपान उस वायुका नाम है जो नाभि देशसे नीचे गुदातक कार्य करता है। प्राणको स्वाधीन रखनेका मतलब प्राण और अपानको वशमें रखनेसे है। अपानपर आधिपत्य स्थापित करनेसे मल-मूत्रोत्सर्ग उत्तम रीतिसे होता है और प्राणकी

रक्त शुद्धि होती है—इस प्रकार दोनोंपर अधिकार प्राप्त कर लेनेसे शारीरिक स्वास्थ्य अत्युत्तम रहता है। इस तरह प्राणके वशीभूत होनेपर यह अनुभव होने लगता है, कि हमारा सारा शरीर प्राणके अधीन है। शरीरका कोई भाग प्राणशक्तिके बिना कार्य नही कर सकता अतएव शरीरके सब अवयवोंमें सब प्रकारका कार्य करनेवाले प्राणका सदा ही सत्कार करना चाहिये। हरएक व्यक्तिको उचित है, कि वह प्राणकी शक्तिका ध्यान करे—विश्वास पूर्वक इस शक्तिको स्मरण रखे क्योंकि दीर्घायु इसीपर अवलम्बित है। इस प्राणशक्तिका इतना महत्व है कि इसकी मौजूदगीमें ही दवाइयां भी काम करती हैं परन्तु इसकी शक्तिके निर्बल होनेपर कोई औषधि भी असर नहीं करती। यह प्राण ही सब औषधियोंका औषध है—महौषध है। वेद कहता है—

"याते प्राण प्रिया तनुर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥" (अथर्व)

"हे प्राण! जो तेरा (प्राणमय) प्रिय शरीर है और जो तेरे (प्राणापानरूप) प्रिय भाग है, तथा जो तेरा औषध है वह (जीवसे) दीर्घजीवनके लिये हमें दो।" अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ये पाँच कोश हैं। इन्हें ही पाँच शरीर भी कहते हैं। इन पाँचोंमेंसे 'प्राणमय' शरीरका वर्णन इस मन्त्रमें किया है। "प्रियतनु" का अर्थ यह प्राणमय कोश ही है। सभी इसपर प्रेम करते हैं, सब चाहते हैं कि यह

प्राणमय शरीर रहे। प्राण और अपान ये इस शरीरके दोनों प्रेममय कार्य हैं। प्राणसे शक्तिकी वृद्धि होती है और अपान द्वारा विषको दूर करके स्वास्थ्यका संरक्षण होता है। प्राणके अन्दर एक प्रकारका "भेषज" अर्थात् औषध है। औषध और भेषज शब्दोंका अर्थ दोषोंको दूर करनेकी शक्ति है। शरीरके दोष दूर करना और शरीरमें आरोग्यता स्थापित करना यह पवित्र कार्य प्राणका ही है। "प्राण ही महौषध है" वेदके इस उपदेशपर अवश्य विश्वास रखना चाहिये। क्योंकि यह विश्वास झूँठा विश्वास—अन्ध विश्वास नहीं है। मानस चिकित्साका यह मूल है—यह बात ध्यानमें रखकर इस वेद-मन्त्र पर विचार करना चाहिये। अपनी प्राणशक्तिसे अपनी ही चिकित्साकी जा सकती है। मैं अपनी प्राणशक्तिसे रोगोंका अवश्य निवारण करूंगा, यह भाव मनमें धारण करनेसे बड़ा ही लाभ होता है। अपनी प्राणशक्तिपर निश्चय विश्वास रखने-वाला व्यक्ति ही दीर्घायु होता है।

जिस प्रकार पुत्रकी, पिता रक्षा करता है उसी तरह प्राण सबकी रक्षा करता है। प्राणियोंके शरीरमें नस नाडियों द्वारा जाकर वहाँ उनकी रक्षा करता है। न केवल प्राणियोंकी ही यह प्राण रक्षा करता है बल्कि स्थावर पदार्थोंका रक्षक भी यही है। अर्थात् श्वासोच्छ्वास वाले प्राणी ही प्राणधारी हैं यह समझ लेना भूल है, प्रत्युत वृक्ष वनस्पति पत्थर आदि पदार्थोंमें प्राण है—इन सब पदार्थोंमें रहकर भी प्राण सबकी रक्षा करता

है। प्राणको पिताके समान पालक मानना चाहिये और उसे सर्वव्यापक समझना चाहिये। जिस समय प्राण नहीं रहता, उसी अवस्थाका नाम मृत्यु है। शरीरमेंसे प्राणशक्तिके निकल जानेपर मृत्यु होती है। जबतक शरीरमें प्राण कार्य्य करता है, तभी तक शरीरमें सहनशक्ति और सामर्थ्य रहती है। सारांश यह कि प्राण ही जीवन है और प्राणका अभाव ही मृत्यु है। समस्त इन्द्रियाँ प्राणकी उपासना करती हैं—प्राणके साथ रहकर अपने अन्दर बल प्राप्त करती हैं। जो इन्द्रिय प्राणके साथ रहकर बल वृद्धि करती है, वह कार्यक्षम बन जाती है परन्तु जो इन्द्रिय प्राणसे विमुक्त होती है, वह मर जाती है—यही प्राणकी उपासना है।

वेदमें प्राणको "रुद्र" कहा है। प्राणकी उपासना ही रुद्र, महादेव, शम्भु आदिकी उपासना है। सब देवताओंमें महादेवकी शक्ति कितनी बलवान है, यह बात प्राणकी उपासनासे प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है। मनुष्यके शरीरमें प्राण ही शङ्करकी विभूति है। सब जगतमें उसका विश्वव्यापक रूप प्राण ही है। इस व्यापक प्राणशक्तिके आश्रय ही इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवता अपना कार्य करते हैं। प्राणोपासनाका मुख्य अङ्ग प्राणायाम ही है। प्राणकी उपासनासे उत्तम लोक अर्थात् श्रेष्ठता प्राप्त होती है अतएव मनुष्योंके लिये प्राणायाम एक आवश्यक बात है।

गर्भस्थजीव भी यहीं प्राण और अपान द्वारा जीवन धारण

रता है। माताके गर्भमें जीव प्राणरूप रहता है, इसी लिये प्राणको "मातरिश्वा" भी कहते हैं। प्राणका विचार करनेसे ऐसा पता लगता है, कि उसके आधारसे भूत, भविष्य और वर्त्तमानका सभी जगत रहता है। प्राणके बिना जगतमें किसीकी भी स्थिति नहीं हो सकती। पूर्वजन्म, यह जन्म और पुनर्जन्म ये सब प्राणहीके कारण हैं अर्थात् भूत, भविष्य और वर्त्तमान कालमें जो कर्मके संस्कार प्राणमें सञ्चित होते हैं, उसके कारण यथायोग्य रीतिसे पुनर्जन्मादि होते हैं। जो मनुष्य प्राणकी शक्तिका वर्णन श्रद्धासे सुनता है, प्राणके बलको विश्वाससे जानता है, प्राणका बल प्राप्त करनेमें यशस्वी होता है और जिस मनुष्यमें प्राण उत्तम रीतिसे प्रतिष्ठित और स्थिर रहता है, उसका ही सब सत्कार करते हैं, उसकी स्थिति उत्तम लोकमें होती है और उसीका सर्वत्र यश फैलता है। प्राणायाम द्वारा जो अपने प्राणको प्रसन्न और स्वाधीन करता है, उसकी आयु कीर्त्ति, यश और बल बढ़ता है। देवता लोग भी प्राणकी ही उपासना करते हैं। इस बातका अनुभव अपने शरीरमें ही किया जा सकता है—नेत्र, कर्ण, नासिका आदि सभी देव प्राणकी ही पूजा करते हैं। इसकी पूजासे ही वे शक्ति सम्पन्न होते हैं। इसी प्रकार प्राणायामका साधन करनेवाले व्यक्तिका अन्य सज्जन सत्कार करते हैं और उसके उपदेशसे प्राणोपासनाका मार्ग जानकर स्वयं बलवान बन सकते हैं। यही कारण है, कि प्राणायाम करनेवाले योगीकी सब लोग प्रशंसा करते हैं।

इस शरीरमें आठ चक्र हैं—जिनमें प्राण जाता है और विलक्षण कार्य करता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्राक्षर ये आठ चक्रोंके नाम हैं। ये आठों क्रमश गुदा स्थानसे लगाकर मस्तकके ऊपरके भाग तक अपने अपने स्थानोंमें स्थित हैं। पृष्ठके मेरु दण्डमें इन सबकी स्थिति है। प्राण इन प्रत्येक चक्रोंमें जाता है और वहाँ अपना काम करता है। जो सज्जन प्राणायामका अभ्यास करते हैं, उनको प्राणके चक्रोंमें पहुँचनेका अनुभव होने लगता है—वहाँकी स्थिति भी मालूम पड़ने लगती है। सबसे ऊपर सहस्राक्षर चक्रका स्थान है—यही मस्तिष्कका मध्य और मुख्य भाग है। प्राणका एक केन्द्र हृदयमें है। इस प्रकार एक केन्द्रके साथ आठचक्रोंमें यह सहस्र आरोंद्वारा आगे और पीछेकी तरफ गतिवाला यह प्राणचक्र है। श्वासोच्छ्वास—प्राण अपान द्वारा, प्राणचक्रकी आगे और पीछे गति होती है। पाठकोंको चाहिये कि वे इन बातोंको जानने अनुभव करनेका प्रयत्न करें। प्राणका एक शक्तिके साथ सम्बद्ध है और दूसरा सम्बन्ध रखता है। शारीरिक शक्तिके साथ प्राण भागका ज्ञान प्राप्त कर लेना आत्म-शक्तिके साथ मिले हुए प्राण ही मुश्किल है।

सब इन्द्रियाँ आराम लेती हैं,

जाती है और नीचे गिर जाती हैं परन्तु प्राण रात-दिन खड़ा रहकर जागता है। मानो इस शरीररूपी गृहमें रातदिन जागकर पहरा देता है। कभी सोता नहीं, कभी आराम नहीं लेता और अपने कार्यसे भी कभी मुँह नहीं छुपाता। सब इन्द्रियाँ सोती हैं, परन्तु प्राणका सोना आजतक किसीने भी नहीं सुना! अर्थात् जरा सी देर भी आराम न लेता हुआ यह प्राण निरन्तर कार्य करता रहता है। रातदिन उद्योगमें भिड़े रहनेके कारण ही इसने इतनी उच्चता प्राप्त करली है।

जब मनुष्यकी प्राणशक्ति बलवती होती है, तब वीर्य बढ़ता है और स्थिर होता है। वीर्य और प्राण ये दोनों शक्तियाँ साथ साथ रहती हैं। शरीरमें वीर्य्य रहनेसे प्राण रहता है और प्राणके साथ वीर्य भी रहता है। इस प्रकार ये शक्तियाँ एक दूसरेके आश्रयसे रहती हैं। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यव्रत पालन-द्वारा ऊर्ध्व रेता बनते हैं, उनका प्राण भी बलवान बन जाता है—उन्हें सहजहीमें, आसानीसे प्राणायामकी सिद्धि प्राप्त होती है। जो प्रारम्भसे प्राणायामका अभ्यास नियम पूर्वक करते हैं, उनका वीर्य स्थिर हो जाता है। यदि किसी मूर्खताके कारण बचपनमें ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग हो गया हो तो भी वह नियम पूर्वक अनुष्ठानकर प्राणायाम द्वारा अपने शरीरमें प्राणशक्तिकी वृद्धि तथा वीर्य रक्षा कर सकता है। जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट न हुआ हो उसको अनायास ही शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

प्रत्येक मनुष्यको यह देखना चाहिये कि अपने

द्वारा प्राणका बल बढ़ रहा है या घट रहा है ? अपने प्राणोंकी प्रतिष्ठा बढ रही है या घट रही है ? प्राण सम्बन्धी व्यवहार उत्तम रीतिसे चल रहे हैं अथवा किसीमें कोई त्रुटि है ? इन बातोका विचार करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है, क्योंकि बिना विचार किये मनुष्यको प्राण-विषयक ज्ञान होना असम्भव है। इन्द्रियोंके भोग भोगनेके लिये जो शक्ति खर्च हो रही है, उसमेंका अधिकांश प्राणशक्ति बढानेके लिये व्यय होना चाहिये। आजकल यह देखनेमें आता है, कि इन्द्रिय भोगोंमें ६६ प्रतिशत शक्ति खर्च होती है तो प्राण सम्वर्द्धनार्थ सिर्फ १ प्रतिशत शक्तिका व्यय होता है। इन्द्रियोंके स्वामी प्राणके लिये कुछ भी शक्ति खर्च नहीं होती है और इन्द्रियोंके लिये सम्पूर्णशक्ति व्यय हो रही है। नियम तो यह है कि मुख्यके लिये विशेष और गौणके लिये कम होना चाहिये। किन्तु आजकल उलटा व्यवहार चल रहा है, इसलिये इस विषयमें अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये। अपने दैनिक कृत्यका समय-विभाग ऐसा बनाना चाहिये, कि जिसमें समयका बहुतसा हिस्सा प्राण शक्तिके बढ़ानेमें लगाया जावे।

यह प्राण राजा है—शरीर इसकी राजधानी है—इंद्रियाँ इसकी दासियाँ हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखकर विचार कीजिये। समझ लीजिये, कि अपना यह प्राण सचमुच राजा है। जब आपके घरमें राजा ही अतिथि रूपसे आता है, तब आप उ आदर सत्कार बड़ी ही सावधानीसे करते हैं। यद्यपि

उसके कर्मचारियोंकी ओर भी ध्यान देना पड़ता है तथापि उतना नहीं जितना कि राजाकी ओर। यही बात यहाँ पर भी है। इस शरीरमें प्राण नामक राजा अतिथि आया है और उसके कर्मचारी गण इन्द्रियाँ हैं। इसलिये प्राणकी सेवा सुश्रूषा अधिक करनी चाहिये क्योंकि वह प्रसन्न रहा तो सारे कर्मचारी भी ठीक रह सकते हैं। परंतु यदि राजा असंतुष्ट होकर चला गया तो किसी कर्मचारी की शक्ति नहीं जो आपकी सहायता कर सके। देखिये वेदमें भी यही बात लिखी है—

"राजा मे प्राण।" यजु० अ० २०।५

आजकल लोग इन्द्रियोंके भोग बढानेमें लगे हुए हैं। अपनी प्राण शक्ति बढ़ानेका कोई भी विचार नहीं करता! यह कितने आश्चर्यकी बात है। यही कारण है कि प्राण अप्रसन्न होकर शीघ्र ही इस शरीरको छोडकर चला जाता है—इसीको अल्पायु कहते हैं। शरीरमें चिरकाल तक प्राणदेवका निवास ही दीर्घायु है और उसका शीघ्र रुष्ट होकर चला जाना ही अल्पायु है। जब प्राण ही शरीरको छोडने लगता है तब इन्द्रियाँ उसके पहिले ही अपना कार्य बन्द कर देती हैं। यह बात बहुत ही विचारने योग्य है। साराश यह कि इन्द्रियोंके भोग भोगनेमें कम शक्ति व्यय करना चाहिये और अपना सपूर्ण बल प्राणकी शक्ति बढानेमें खर्च करना चाहिये। अपने प्राणको बुरे कार्योंमें संलग्न करनेसे बडी हानि होती है। स्वार्थ तथा क्षुद्र गर्जोंके कामोंमें लगे रहनेसे प्राण शक्तिका संकोच होता है

और जनताके हितमें अर्थात् परोपकारमें प्रवृत्त होनेसे प्राणकी शक्ति विकसित होती है। आशा है, कि पाठक इस प्रकारके शुभ कर्मोंमें अपनेको समर्पित करके अपने प्राणकी शक्तिको विशाल बनायेंगे। मनुष्योंको स्वार्थ त्यागकर परोपकारमें लग जाना चाहिये। यही दीर्घायु होनेका उपाय है।

भूलोक अर्थात् पृथ्वी और भुवर्लोक अर्थात् अन्तरिक्ष ये दोनों प्राणके स्थान हैं। वायु और प्राणका स्थान एक ही है। दोनों ही अन्तरिक्षमें रहते हैं। वसन्तऋतु प्राणका ऋतु है, क्योंकि इस ऋतुमें प्राण शक्तिका सचार होकर समस्त प्राणियों में नवजीवनका संचार होता है। यही प्राणदेवका अवतार है, प्राणके संचारसे जगतमें कितना परिवर्त्तन होता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव वसन्तकाल है। इस ऋतुमें सब वृक्ष आदि नूतन पल्लवोंसे सुशोभित होते हैं और फलोंसे युक्त होकर पूर्णताको प्राप्त होते हैं। फल फूल और पल्लव ही इस सृष्टिके नवजीवन की साक्षी देते हैं। यह प्राणदायिनी ऋतु है, इसीलिये इस ऋतुको "ऋतुराज" कहा जाता है।

प्राण कोई खण्ड-खण्ड या अलग अलग वस्तु नहीं है। यह संख्याबद्ध या असंख्य नहीं है। जिसे हम अपने शरीरके अन्दर ग्रहण करते हैं, वह सार्वभौमिक प्राणका एक हिस्सा है— प्राणका ज्ञान रखनेके लिये यह बात ध्यानमें रखना आवश्यक है। सारे अन्तरिक्षमें प्राण भरा हुआ है। उसमेंसे थोडा सा प्राण हमारे शरीरको जीवन दे रहा है। हम प्राणके अगाध

सागरमें पडे हैं और आवश्यकतानुसार उसमेंसे अपने शरीरमें धारण करके जीवित हैं। इस प्राणको हम नासिका मार्ग द्वारा श्वास प्रश्वास रूपमें अपने शरीरमें धारण करते हैं।

इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना ये तीनों नाडियां हमारे शरीरमें मुख्य हैं। यही त्रिवेणी है। इन्हींका नाम क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती हैं। अर्थात् सुषुम्ना सरस्वती है। इसमें ही प्राणकी प्रेरक शक्ति है। जिन्हें त्रिवेणीमें जाकर स्नान करनेकी इच्छा हो, वे इस शरीरस्थ त्रिवेणीमें ही घर बैठे स्नान कर अपना पाप धो डालें।

प्राण बहुत प्रकारके हैं। प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान—ये मुख्य प्राण हैं। प्राणका निवास हृदयमें हैं, अपानका गुदा प्रान्तमें, नाभिस्थानमें समान, कंठमें उदान और इस सारे शरीरमें व्यान है। प्राणशक्तिका विस्तार महान है। जिसका पूर्ण वर्णन करना हमारी लेखनीकी शक्तिके बाहर है। लिखने-का तात्पर्य यह है, कि प्राणकी महान शक्तिसे अपने शरीरको बलवान बनाकर मृत्युपर पूर्ण विजय प्राप्त करनी चाहिये। अथर्व वेदका यह उपदेश याद रहना चाहिये कि—

"जरिम्ण शेवधि इह वर्धतां।" ७।५३।५

"वृद्ध आयुका कोष यहाँ वृद्धि पाता रहे।" अर्थात् उम्र घटने नहीं पाये और बढती ही रहे—लोग अल्पायुषी न हों और दीर्घायु पावें। उक्त वेद वाक्यसे एक ध्वनि और भी निकलती है कि "आयु निश्चित नहीं है। घट बढ सकती है।" यदि ऐसा

न होता तो वेद यह बात कभी नहीं लिखता। जो व्यक्ति अपनी आयु बढाना चाहेगा उसे आयुवर्द्धक सुनियमोंका पालन करना पडेगा। अपना अभ्युदय करनेका यत्न करना चाहिये—अवनतिकारक कार्य कदापि नहीं करना चाहिये। जीवनके लिये प्राणके बलकी बडी ही जरूरत है—प्राणका बल बढनेसे ही दीर्घायु प्राप्त होता है। यह शरीर एक पवित्र रथ है, जिसमें इन्द्रियरूपी १० घोडे जुते हुए हैं। इस रथमें प्राणरूपी अमृत है—इसीलिये इसको सुखमयरथ कहा जा सकता है। इस सर्वश्रेष्ठ रथपर आरूढ होकर अपनी उन्नतिके पथपर तेजीसे आगे बढो! जब तुम बल और दीर्घायु प्राप्त कर लोगे तब तुम दूसरोंको उपदेश दे सकोगे। हमको स्वार्थी न बनकर दूसरोंकी उन्नतिमें ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये। प्राणायामादि साधनों द्वारा, दीर्घायु, आरोग्यता, अद्वितीय पुरुषार्थ, सूक्ष्म बुद्धि और विशाल मन प्राप्त करनेके पश्चात् मनुष्यको अपना जीवन सार्वजनिक हित-साधनमें लगा देना चाहिये।

प्राणायामादि द्वारा प्राण शक्तिकी वृद्धि करना मनुष्यके लिये एक आवश्यकीय बात है। बहुतसे विद्वान आयुको परिमित और निश्चित मानते हैं और कहते हैं कि "यमदूत सर्वदा सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं। वे आयुकी समाप्तिपर प्राणीका प्राण हरण कर लेते हैं अतएव आयु बढ नहीं सकती।" इस मतका वेदमें खण्डन है—वेद कहता है कि जो कोई यमदूत इस सृष्टिमें भ्रमण करते होंगे उन्हें भी प्राणके अनुष्ठानसे दूर भगाया जा,

सकता है। इस विषयमें मनुष्य पराधीन नहीं है। उचित अनुष्ठान द्वारा प्राणकी शक्ति बढाइये और फिर देखिये कि आप यमदूतोंसे डरते हैं या यमदूत आपसे डरकर भागते हैं। प्राणोपासना करनेवालेका यमदूत कुछ भी नहीं बिगाड सकते। यह अभयदान हमें वेद दे रहा है। इस विचारको मनमें दृढ़तापूर्वक धारण करके निर्भय हो जाना चाहिये और बादमें प्राणायाम द्वारा प्राणका पूजन कर, उसे प्रसन्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे आप निस्सदेह दीर्घायु प्राप्त कर लेंगे। प्राणायाम द्वारा सब प्रकारकी व्याधियाँ, दोष और रोगोंके मूल कारण दूर हो जाते हैं। दुष्ट भाव, बुरे आचरण, प्राकृतिक नियमोंके विरुद्ध व्यवहार आदि सारे दोष प्राणायाम द्वारा दूर हो जाते हैं। सब प्रकारके रोगोंके बीज शरीरसे निकल जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों द्वारा अन्धकारको नष्ट करता है उसी तरह मनुष्य प्राणायामके प्रभावसे सब रोगोंके बीजोंको दूर कर सकता है। बृहदारण्यकोपनिषद् ३।६।६ में कहा है—

"कतम एकोदेव इतिप्राणइति।"

"एक देव कौनसा है? वह प्राण।" छान्दग्योपनिषद् १५।१ में कहा है कि—

"प्राणोह पिता, प्राणोमाता, प्राणो भ्राता,
प्राणस्सा प्राण आचार्य प्राणो ब्राह्मण।"

"प्राण ही माता, पिता, भाई, बहिन, आचार्य, ब्राह्मण आदि है।" ये शब्द प्राणके महत्त्वको बता रहे हैं। प्राणके

विषयमें उदासीन रहना ही अपने हाथों अपनी आयुको घटाना है। ऐसा कौन व्यक्ति है जो स्वर्ग प्राप्तिकी इच्छा न करता हो। यह प्राण ही स्वर्गलोक हैं। यह बात झूठ नहीं समझिये। देखिये बृहदारण्यक उपनिषद् १।५।४ मे लिखा है—

"वागेवायंलोक' मनोअन्तरिक्षलोक प्राणोऽसौलोकः।" वाणी पृथ्वीलोक है, मन अन्तरिक्ष लोक है और प्राण स्वर्गलोक है। प्राणायामके अभ्याससे स्वर्गधामकी प्राप्ति होती है। देखिये प्राणायामकी शक्ति कैसी विलक्षण है। प्राणायामद्वारा बहुत सी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। ऐसा वेद उपनिषद् आदि विविध शास्त्रोंमें वर्णन है। यहाँ तो संक्षिप्त रीतिमें प्राण शक्तिका दिग्दर्शन कराया है। प्राणायामके अभ्याससे ही विविध शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। बिना अभ्यासके कुछ भी नहीं होता। प्राणायामका अभ्यास होनेके पूर्व प्राणकी शक्तिका ज्ञान होना आवश्यक है। इसी विचारसे यह लेख लिखा गया है। अब हम संक्षिप्त रूपसे प्राणायामकी विधिको यहाँ लिखेंगे।

प्राणायाममें तीन भाग होते हैं। पूरक, कुम्भक और रेचक। नासिका द्वारा प्राणवायुको भीतर भरनेका नाम पूरक है। उस वायुको अन्दर धारण करनेका नाम कुम्भक है। बादमें उसीको नासिका द्वारा बाहिर निकालनेका नाम रेचक है। कुछ प्राणायाम ऐसे भी हैं जिनकी पूरक और रेचक क्रिया ... की जाती है किन्तु अधिकांश नाक द्वारा ही पूरक और ... जाते हैं। पहिला केवल "कुम्भक" है, रेचक ...

हुए सिर्फ श्वासोच्छ्वासकी गतिका निरोध करना केवल कुम्भक कहलाता है। दूसरा "मध्य कुम्भक" है। पूरक करनेके पश्चात् यथाशक्ति कुम्भक करके तत्पश्चात् रेचक करनेसे यह प्राणायाम सिद्ध होता है। तीसरा "अन्त्य कुम्भक" है। पूरकके बाद रेचक करना और फिर प्राणको बाहिर ही स्थिर रखनेका नाम "अत्य कुम्भक" है। इसीको वाह्य कुम्भक भी कहते हैं। चौथा "अकुम्भक" है इसमें केवल पूरक और रेचक ही होते कुम्भक नहीं किया जाता।

इन सब प्राणायामोंमें "केवल कुम्भक" सर्वोत्तम है। इसकी सहायताके लिये अन्य प्राणायाम हैं। दीर्घकाल तक "केवल कुम्भक" प्राणायाम सिद्ध होनेसे बडा ही लाभ होता है। स्थान और कालके भेदसे प्राणायाममें भी अनेक भेद होते हैं। कालका भेद अर्थात् पूरक कुम्भक और रेचकमें समयकी न्यूनता अथवा अधिकता। स्थानका भेद यह है कि अपने शरीरके इच्छित अवयवमें प्राण ले जानेकी शक्ति प्राप्त करके, वहा प्राणसे इष्ट कार्य करनेकी इच्छा शक्ति बढाना। इसे "दैशिक प्राणायाम" कहते हैं। प्राणायामके अभ्यासके प्रकाशसे अन्धकारका नाश होता है अर्थात् मनका तेज फैलने लगता है। ध्यान धारणा करनेकी योग्यता मनमें बढ़ जाती है। प्राणकी शक्ति बढनेके साथ साथ ही मनकी शक्ति भी बढ जाती है। जिस प्रकार प्राणायामके अभ्याससे आरोग्यता बढ़ती है—इन्द्रियाँ सबल बन जाती हैं, उसी प्रकार मनका बल भी वृद्धि पाता है।

प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये एक अत्यन्त पवित्र—शुद्ध स्थान निश्चित करना चाहिये। वायु ही प्राण है—अतएव शुद्ध वायु जहाँ बहती हो, उसके बहनेमें किसी प्रकारकी रुकावट न हो, यह बात हमेशा ध्यानमें रखनी चाहिये। न केवल शुद्ध वायुका ही ध्यान रखिये, बल्कि सूर्यके प्रकाशका होना भी वहाँ अत्यन्त आवश्यक है। उपनिषद् कहता है—

"आदित्य उदयन् यत्प्राचींदिशं प्रविशतितेन
प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।" प्रश्न० उ० १।६

"सूर्यका जब उदय होता है तब सभी दिशाओंमें सूर्य किरणों द्वारा प्राण रखा जाता है।" अर्थात् सूर्य-प्रकाश ही वायुको शुद्ध रखता है। सूर्यकिरणोंके बिना प्राणकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस सूर्य मालिकाका मूलप्राण यह सूर्यदेव ही है। यही कारण है कि वेद मन्त्रोंमें आयु, आरोग्य, बल आदिके वर्णनके साथ सूर्यका भी सम्बन्ध बताया गया है। सूर्य प्रकाशका हमारे स्वास्थ्यके साथ कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, इसका पता यहाँ उक्त मन्त्रसे चलता है। जो लोग सदा अंधकारयुक्त स्थानमें रहते हैं—सूर्य प्रकाशमें क्रीडा नहीं करते, सूर्य प्रकाशसे अपना स्वास्थ्य ठीक नहीं करते हैं और अपनी तन्दुरुस्तीके लिये वैद्य हकीमों और डाक्टरोंका घर धनसे भरके विषतुल्य दवाइयाँ पीते खाते हैं। उनकी अज्ञानताका कुछ ठिकाना है? परमात्माने अपनी अनुपम दया द्वारा सूर्य और वायुको उत्पन्न किया है और उनसे पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हो

सकती है। उचित रीतिसे प्राणायाम द्वारा इनका सेवन किया जावेगा तो आपही आप स्वस्थता मिल सकती है। जितनी आरोग्यता अपार धन खर्च करने पर भी नहीं पा सकते, उतनी वायु और प्रकाशसे प्राप्त की जा सकती है।

शुद्धस्थान, शुद्धवायु और शुद्ध प्रकाशका ध्यान रखनेके बाद बैठनेके लिये सुखप्रद आसन तय्यार कीजिये। नीचे लकडीका पट्टा या कुशासन बिछाइये। उसपर ऊनी आसन बिछाइये। इस ऊनी आसनपर कृष्ण मृगचर्म और इस चर्मपर सूती वस्त्र बिछाइये। आसन अधिक ऊँचा या बिलकुल नीचा नहीं होना चाहिये। नरम और सुख देने वाला आसन होना चाहिये। जो लोग प्राणायामके समय कठोर आसनका प्रयोग करते हैं, वे भूल करते हैं। ऐसा आसन तय्यार करके उसपर "सिद्धासन" से सुखपूर्वक बैठ जाइये। बाँये पैरकी एडीको अण्डकोष और गुदाके बीचके भागमें अर्थात् वीर्याशय पर दृढताके साथ जमाइये और दाहिने पैरकी एडी लिंगेन्द्रियके ऊपरके भागमें दृढतासे लगाइये। ठोडी हृदयमें कण्ठमूलसे थोडी दूर, हृदयपर लगाकर शरीरको स्थिर और सीधा रखिये। पलकों और आँखोंको न हिलाते हुए दोनों भृकुटियोंके बीचमें दृष्टिको स्थिर कीजिये। यही सिद्धासन है। हठयोगमें भी सिद्धासन इसी प्रकार बताया है—

"योनिस्थानक मङ्घ्रिमूल घटितं कृत्वा दृढं विन्यसेत्।
मेंढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्॥

फिर अँगूठेसे [illegible]
डालना चाहिये। [illegible]
कर डालनी चाहिये।

"नेती" इस [illegible]
सुतलीको कहते हैं, [illegible]
तो ऐसी अत्यन्त [illegible]
भीतरी भाग [illegible]
जो नासिकाके छिद्रोंमें [illegible]
मोम लगाकर बना [illegible]
पाँच छ अँगुल [illegible]
सा लटकता रहता है। [illegible]
बनानेका है। नाकके छिद्र [illegible]
है, बस इसी क्रियाका [illegible]
जितनी भयङ्कर मालूम होती है [illegible]
करनेपर ६। ७ दिनमें मनुष्य [illegible]
सकता है। "धोती" इस [illegible]
लम्बा कपड़ा मुखद्वारा पेट [illegible]
खींचकर पेटका मलशुद्ध [illegible]
अत्यन्त सहज है, केवल [illegible]
क्रियाओंके दिनोंमें भोजन [illegible]
पड़ता है। प्राणायामके लिये [illegible]
ही आवश्यक [illegible]

प्राणायामके योग्य अपने शरीरको शुद्ध करके उस सुखा सन पर बैठकर मनको एकाग्र और शान्त करना चाहिये। तथा इन्द्रियोंकी गतिका निरोध करके किसी एक पवित्र विषयमें चित्तको लगा देना चाहिये। पीठ और गर्दन सम रेखामें सीधी रखकर नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमा देनी और अन्त करणकी शुद्धि करनेकी इच्छासे स्थिर बैठ जाना चाहिये। गर्दन और पीठको एक ही सीधमें रखनेके लिये पहिले पहिल दीवारका सहारा ले लिया जावे तो कोई हानि नहीं! अभ्यास हो जानेपर दीवारके आश्रयकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। शान्त और स्थिर बैठकर उस समय मनमें ऐसी भावना करनी चाहिये कि मैं ब्रह्ममें लीन हू—ब्रह्मकी एक नौका है, उसमें बैठकर मैं इस ससार महोदधिके पार जा रहा हूँ।

पृष्ठवशकी रीढमें इडा और पिगला ये दोनों नाडियाँ हैं तथा इनके मध्यमें सुषुम्ना नामक एक नाडी है। इस रीढके मूलमें गुदाके ऊपर मूलाधार चक्र है, यहाँ कुण्डलिनी शक्ति है। यही आधारशक्ति अर्थात् मूलशक्ति है। इडानाडीका देवता चन्द्र, पिगलाका सूर्य, और सुषुम्नाका शिव है। इसी कारण इन देवताओंके नामसे इन नाडियोंका नाम क्रमश चन्द्रनाडी, सूर्यनाडी और शिवनाडी है। जैसा कुण्डलिनी शक्तिका स्थान मूलाधार चक्र है। उसी तरह शिवका स्थान मस्तकमें सहस्त्राक्षर चक्र है इसी कारण "पौराणिक सध्यावंदन" में प्राणायामके समय उपासक लोग कहा करते हैं—

"ललाटदेशे त्रिनेत्र शिव ध्यायेत् ।"

इस ललाट देशगामी शिवके ध्यानका अर्थ वास्तवमें ऊपर लिखे अनुसार है। मूलाधार और सहस्रार इन दोनोंका सम्बन्ध प्राणायामसे होता है। यह शिवशक्तिका संयोग एक अपूर्व फलका देनेवाला है। प्राणायाम ठीक होनेके लिये तीन बंध करने चाहिये (१) मूलबंध (२) उड्डियान बंध और (३) जालंधर बंध। मूलबंध पूरकके समय किया जाता है। गुदा और लिंगमूलके मध्यमें जो चारपाँच अंगुलका स्थान है। उस स्थानमें एडीका दबाव रखकर गुदाका और लिंगका ऊपर की ओर खींचते हुए सङ्कोचन करना—अर्थात् अपान वायुको ऊपर खींचनेसे मूलबंध सिद्ध होता है। इससे अपानका प्राणसे संयोग होता है, मलमूत्र अल्प होता है। मूलबंधके द्वारा वीर्य गाढा होकर ऊर्ध्वगामी बनता है—वीर्य रक्षा होती है। इसको करनेवाले वृद्ध पुरुष भी जवानसे दृष्टि आते हैं। अतएव यह बंध सर्वोत्तम है। दूसरा उड्डियानबंध है—यह रेचकके समय किया जाता है। सम्पूर्ण पेटको अन्दर खींचना और जहाँतक हो सके वहाँ तक पेटको पीठकी तरफ ले जानेसे यह बंध सिद्ध होता है। यह बंध बडाही सुगम और लाभ कारक है—जठराग्नि प्रदीप्त होती है। तीसरा जालन्धर बंध है। कण्ठको सिकोड़कर ठोडीको कंठमूलमें हृदयके ऊपर लगानेसे यह बंध सिद्ध होता है; इसीको कण्ठ बंध भी कहते हैं। लगातार पाँच छ महीनेतक इसका अभ्यास करनेसे यह सिद्ध होता है।

पूरकके समय मूलवन्ध करनेसे अपानकी ऊर्ध्वगति होती है। कुंभकके वक्त जालंधर वंध करनेसे प्राणकी अधोगति होती है। इस तरह अपान और प्राणका मध्यमें संयोग होनेके कारण शरीरकी गर्मी वढती है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। उष्णता वढनेसे कुण्डलिनीकी जागृति होती है। वह जागृत होकर सुषुम्ना नाडीके द्वारा ऊपरकी तरफ चढने लगती है और सह स्नार चक्रमें पहुँचकर शिवके साथ संयुक्त होती है। यही परमानन्द है—प्राणायामके दृढ़ अभ्यास द्वारा इसकी सिद्धि होती है।

एक नासिका छिद्रको वन्द करके पूरक करना चाहिये तो दूसरेसे उसका रेचक करना चाहिये। वादमें जिससे रेचक किया हो उससे पूरक करके दूसरे नासिका रध्रसे रेचक करना चाहिये। इस प्रकार दायें और वायें नासिका रध्रसे यथा क्रम-श्वासोच्छ्वास वढ़ानेसे शनै शनै योग्य प्राणायाम होने लगता है। पूरकको जितना समय लगता है उससे चारगुण कुम्भक और पूरकसे दो गुणा रेचक करना चाहिये अर्थात् छ' सेकण्डमें पूरक हुआ हो तो ६×४=२४ सेकंड तक कुंभक रखना चाहिये और ६×२=१२ सेकण्ड तक रेचक करना चाहिये। इस नियमके अतिरिक्त मनुष्य अपनी शक्तिकी योग्यताके अनुसार प्राणायाममें कमोवेशी कर सकता है। प्राणायामके समय श्वासरोकने छोडनेमें जवरदस्ती करना या पूर्वक कुम्भक करनेसे वड़ी हानि है। प्राणायामके समय यह

सावधानी रखनी चाहिये कि पूरक कुम्भक तथा रेचकमें किसी भी समय धक्का न लगे—सरलता पूर्वक ही प्राणका आवागमन होना चाहिये। जो लोग शक्तिसे अधिक प्राणायाम करते हैं, उनका शरीर स्वस्थ होनेके बजाय उलटा रोगी और निर्बल बनता जाता है।

प्रारम्भमें प्राणायाम केवल तीनवार ही करना चाहिये। बादमें धीरे धीरे इसकी संख्या १०० तक बढ़ा सकते हैं। प्रत्येक पन्द्रहवें दिन एक प्राणायाम बढाना चाहिये। जैसे जनवरी ता० १ को प्राणायाम आरम्भ किया तो ता० १५ जनवरी तक नित्य तीन प्राणयाम करना चाहिये और ता० १६ से चार प्राणायाम नित्य करना आरम्भ करके ता० ३१ जनवरी तक करते रहिये फिर ता० १ फरवरीको नित्यके पाँच प्राणायाम आरम्भ कर दीजिये और ता० १५ फरवरी तक पाँच पाँचका अभ्यास करके ता० १६ से ६ प्राणायाम करना आरम्भ कर देना चाहिये। इसी तरह धीरे धीरे सौतक अभ्यास बढा लेना चाहिये। १०० प्राणायाम करनेके लिये ३ घण्टेका समय अवश्य ही लग जाता है। पूरकके समय शक्तियोंकी प्राप्ति, कुम्भकके समय शक्तियोंकी स्थिरता और रेचकके समय दोषोंका निकास हो रहा है—मनमें ऐसी भावना रखते हुए प्राणायाम करनेसे बड़ा ही लाभ होता है।

प्राणयाम करनेके समय मनकी भावना ऐसी होनी चाहिये कि—"मैं प्राण वायु लेनेके समय विश्वव्यापिनी

पूरकके समय मूलबन्ध करनेसे अपानकी ऊर्ध्वगति होती है। कुंभकके वक्त जालंधर बंध करनेसे प्राणकी अधोगति होती है। इस तरह अपान और प्राणका मध्यमें संयोग होनेके कारण शरीरकी गर्मी बढ़ती है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। उष्णता बढ़नेसे कुण्डलिनीकी जागृति होती है। वह जागृत होकर सुषुम्ना नाडीके द्वारा ऊपरकी तरफ चढ़ने लगती है और सहस्रार चक्रमें पहुँचकर शिवके साथ संयुक्त होती है। यही परमानन्द है—प्राणायामके दृढ़ अभ्यास द्वारा इसकी सिद्धि होती है।

एक नासिका छिद्रको बन्द करके पूरक करना चाहिये तो दूसरेसे उसका रेचक करना चाहिये। बादमें जिससे रेचक किया हो उससे पूरक करके दूसरे नासिका रध्रसे रेचक करना चाहिये। इस प्रकार दाये और बायें नासिका रंध्रसे यथा क्रम-श्वासोच्छ्वास बढानेसे शनै शनै योग्य प्राणायाम होने लगता है। पूरकको जितना समय लगता है उससे चारगुण कुम्भक और पूरकसे दो गुणा रेचक करना चाहिये अर्थात् छ' सेकण्डमें पूरक हुआ हो तो ६×४=२४ सेकड तक कुंभक रखना चाहिये और ६×२=१२ सेकण्ड तक रेचक करना चाहिये। इस नियमके अतिरिक्त मनुष्य अपनी शक्तिकी योग्यताके अनुसार प्राणायाममें कमोवेशी कर सकता है। प्राणायामके समय श्वासरोकने छोडनेमें जबरदस्ती करना या पूर्वक कुम्भक करनेसे बडी हानि है। प्राणायामके समय यह

सावधानी रखनी चाहिये कि पूरक कुम्भक तथा रेचकमें किसी भी समय धक्का न लगे—सरलता पूर्वक ही प्राणका आवा गमन होना चाहिये। जो लोग शक्तिसे अधिक प्राणायाम करते हैं, उनका शरीर स्वस्थ्य होनेके बजाय उलटा रोगी और निर्बल बनता जाता है।

प्रारम्भमें प्राणायाम केवल तीनबार ही करना चाहिये। बादमें धीरे धीरे इसकी संख्या १०० तक बढ़ा सकते हैं। प्रत्येक पन्द्रहवें दिन एक प्राणायाम बढाना चाहिये। जैसे जनवरी ता० १ को प्राणायाम आरम्भ किया तो ता० १५ जनवरी तक नित्य तीन प्राणयाम करना चाहिये और ता० १६ से चार प्राणायाम नित्य करना आरम्भ करके ता० ३१ जनवरी तक करते रहिये फिर ता० १ फरवरीको नित्यके पाँच प्राणायाम आरम्भ कर दीजिये और ता० १५ फरवरी तक पाँच पाँचका अभ्यास करके ता० १६ से ६ प्राणायाम करना आरम्भ कर देना चाहिये। इसी तरह धीरे धीरे सौतक अभ्यास बढा लेना चाहिये। १०० प्राणायाम करनेके लिये ३ घण्टेका समय अवश्य ही लग जाता है। पूरकके समय शक्तियोंकी प्राप्ति, कुम्भकके समय शक्तियोंको स्थिरता और रेचकके समय दोषोंका निकास हो रहा है—मनमें ऐसी भावना रखते हुए प्राणायाम करनेसे बड़ा ही लाभ होता है।

प्राणयाम करनेके समय मनकी भावना ऐसी होनी चाहिये कि—"मैं प्राण वायु लेनेके समय विश्वव्यापिनी प्राणश—

अवयवों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। यही इन्द्रिय संयम है जो प्राणायाम द्वारा सिद्ध होता है। अन्य सम्पूर्ण शक्तियोंमें प्राणशक्ति सबसे अधिक बलवान है। जब यही स्वाधीन हो जावेगी। तब अन्य शक्तियाँ बेचारी क्या वस्तु हैं? प्राणायाममें मुख्यशक्ति अर्थात् प्राणशक्तिको वशमें रखनेका प्रयत्न किया जाता है। इसलिये अभ्यास करते समय सावधानी रखनी चाहिये। क्योंकि अनुचित रीतिसे प्राणके साथ बर्त्ताव करनेसे बहुतसे कष्ट होते हैं। अपनी प्रत्येक इन्द्रियके गुण दोषोंकी परीक्षा करके उसके दोष दूर करने और उसमें उत्तम गुण स्थापित करनेके लिये निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये।

प्राणका निरोध करनेसे आपका मन आपके वशमें हो जावेगा। बस, फिर क्या है? विश्वकी सम्पूर्ण शक्तियाँ आपके हाथमें हैं। क्योंकि—

"मनएव मनुष्याणाँ कारण बन्ध मोक्षयो।"

जिस प्रकार दूधमें जल मिलता है, उसी प्रकार प्राण और मन एक दूसरेके साथ मिले हुए हैं। इसलिये प्राणकी स्वाधीनता होनेसे मनकी स्वाधीनता भी होती है। हमारा मन जिन तत्वोंका बना हुआ है, उन्हीं तत्वोंसे अन्य मनुष्योंका मन भी बना हुआ है। अतएव जब हमारा मन हमारे काबूमें हो जाता है, तब वही शक्ति बढकर अन्य मनुष्योंको भी अपने वशमें करने लगती है। यही वशीकरण विद्या है। ऐसी शक्ति जिन्हें प्राप्त हो जाती है, वे अपनी इच्छाशक्तिके चमत्कारों

रा लोगोंको आश्चर्यमें डाल देते हैं। इस तरह अनुभव द्वारा
की अगाध शक्तिका पता लगता है तथा मनको अखण्ड
तिका मार्ग सूझने लगता है। इस प्रकार प्राणायामके
यासमे असंख्य लाभ होते हैं। जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा होवे
णायामका अनुष्ठान अवश्य करें।



व्यायाम

"सर्वा रक्षांसि व्यायामे शह—म हे। अथर्व २।४।४

जिस प्रकार बिना खुराकके शरीरका जीवित रहना असम्भव है, उसी तरह बिना व्यायामके शरीरका स्वस्थ और बलवान रहना भी असम्भव है। जो शरीर स्वस्थ और बलवान नहीं होता, वह चिरजीवी कदापि नहीं हो सकता। अत एव दीर्घायु चाहनेवालेको व्यायाम उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवित रहनेके लिये खुराक। "व्यायाम" शब्दका अर्थ है, परिश्रम, कसरत, मेहनत, कुश्ती, वरजिश, (Exercise) अर्थात् मनुष्यको नित्य ही परिश्रम करना चाहिये। आलसी, सुस्त, काहिल, निकम्मे बनकर अपना स्वास्थ्य धन नहीं खोना चाहिये। प्रकृति भी यही आज्ञा देती है—यदि आप ध्यान पूर्वक अपने आसपासके पदार्थों को देखेंगे तो सभी व्यायाम शील दृष्टि आवेंगे। जो प्राणी जैसा न्यूनाधिक परिमाणमें व्यायाम करता है, वह उतना ही स्वस्थ रहता है। पशु पक्षियोंको देखिये वे सदा नीरोग रहते हैं। कारण इसका यही है कि वे परिश्रम करते रहते हैं—प्रकृतिने बिना परिश्रमके उन्हें खुराक ही नहीं दी है। पशुओंको कोसोंकी उड़ानके बाद भक्ष्य पदार्थ मिलते हैं। उन्हें स्वयं उड़कर या चलकर अपनी खुराक प्राप्त करना पड़ता है किन्तु मनुष्य जाति दिन दिन

आलसी और सुस्त होती जा रही है। अब इसे चार कदम चलनेमें भी आलस्य आता है। जरा जरा सी दूरीपर जानेके लिये लोगोंको इक्कों, ताँगों, मोटरों, सायकलों, रेलों, ट्रामो आदि यानोंकी आवश्यकता पड़ने लगी। हमारे देखनेमें आता है कि बड़े बड़े शहरोंमें ट्रामगाड़ियों और ताँगोंकी आमदनी इन्हीं आलसी मनुष्योंकी पूँजी होती है। लोग इन सवारियोंमें बैठकर अपनेको बड़ा आदमी समझने लगते हैं किन्तु उन भाइयोंका यह बड़प्पन उन्हें ही ले डूबता है। लोग बाइसिकलें रखते हैं—परन्तु अधिकाश लोग केवल अपना शौक पूरा करनेके लिये, अपनी शेखी बतानेके लिये ही रखते हैं। वास्तवमें देखा जावे तो ऐसे वाहनोंका रखना हानिकारक है। रुपया, समय और स्वास्थ तीनोंका नाश है। जो लोग यह दावा करते हैं कि साइकल द्वारा समयकी बचत होती है, वे भूल करते हैं। जिस समय वह बिगड़ जाती है अथवा पंक्चर (Puncture) हो जाती है। उस समय उनके सुधारने में बहुत सा समय व्यय हो जाता है। तात्पर्य्य यह कि ऐसे ऐसे यानोंने भारतवासियोंको धीरे धीरे इतना सुस्त बना दिया, कि उन्हें व्यायाम भी भार सा मालूम होने लगा। जब कभी अपने ग्रामीण भाइयोंको एक दो कोसकी दूरीपरके गाँवमें जानेके लिये रेलवे स्टेशनपर २। ४ घण्टे तक रेलके इन्तजारमें बैठा देखते हैं, उस समय चित्तको महान् खेद होता है। जो देश इस प्रकार हाथ पैर हिलानेसे मुँह चुराता हो, उसका स्वास्थ कबतक ठीक रह सकता है?



दीर्घायु प्राप्तिके लिये अपने इस रोगको हटानेके लिये व्यायामके अभ्यासमें भिड जाइये। यह रोग किस व्यायामसे हटाया जा सकता है? यह बात आपको इसी प्रकरणमें आगे चलकर मालूम हो जावेगी।

दुर्बलचन्दका स्वास्थ्य यद्यपि अच्छा नहीं है—तथापि भोंदूमलसे हजार गुना अच्छा है। दुर्बलचन्द जैसी दशा भी बुरी है। लोगोंको दुर्बलचन्द और भोंदूमलकी अवस्थासे निकलकर शीघ्र ही सुदेहानन्दकी दशामें पहुंच जाना चाहिये। इन शारीरिक परिवर्त्तनके लिये हमें किसी भी ओषधिके प्राप्त करनेके लिये वैद्य, हकीम या डाक्टरकी शरणमें आनेकी जरूरत नहीं है। केवल नियमित व्यायाम द्वारा ही सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त किया जा सकता है। सुदेहानन्दका स्वास्थ्य उत्तम है, शरीर बलवान है, उसके स्नायु, पट्ठे, रग, नस, नाड़ियाँ, हड्डियाँ, सभी पुष्ट और बलवान हैं। शरीर सुडौल, और मांस पिंड पुष्ट और दृढ हैं। यह वीर्यरक्षा, प्राणायाम, और व्यायामकी क्रियाका फल है।

प्राणीमात्रके प्रत्येक व्यवहारमें बलकी आवश्यकता है। बिना बलके मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता, इसलिये मनुष्यने जिस प्रकार अन्य सुख सामग्रियोंकी खोज की है, उसी तरह उसने अपनी शक्ति सम्बर्द्धनार्थ व्यायामकी विविध युक्तियाँ भी ढूढ निकाली हैं। बलकी कितनी आवश्यकता है? वह कैसे बढाया जा सकता है? बढाया हुआ बल कैसे

रखा जा सकता है? इत्यादि विषयोंपर प्राचीनकालमें विचार करके हमारे पूर्वजोंने बलवर्द्धक नियमोंको बनाया है—इसीका नाम "व्यायाम शास्त्र" है। यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो "आयुर्वेद" और "योगशास्त्र" दोनों शारीरिक बल बढ़ानेके साधक ही हैं। यदि इन्हीं दोनों शास्त्रोंको स्थूल दृष्टिसे देखा जावे तो "आयुर्वेद" में रोगोंसे बचनेकी रीति और रोग चिकित्साका वर्णन है तथा "योगशास्त्र" में मुख्यत. अध्यात्मिक उन्नतिके उपाय बताये हैं। आयुर्वेद और योग, दोनोंका ग्रन्थ भाण्डार बहुत ही बड़ा है। प्राचीन कालमें ऋषि लोगोंकी व्यायाम पद्धति जैसी उत्तम थी, वैसी इस समय कहीं भी देखनेमें नहीं आती! जो कुछ भी थोडा बहुत इधर उधर व्यायाम विषयक ज्ञान दृष्टि आता है, वह प्राचीन पद्धतिका ही बिगडा हुआ रूप है। इस समय हमें व्यायाम विषयक उस ज्ञानको ढूंढ निकालना चाहिये जिसके द्वारा धृतराष्ट्र, जरासन्ध, भीमसेन, कर्ण, आदि शक्तिशाली बने थे। उस समय ऐसे अनेक—असख्य बलवान मनुष्य इस भारतभूमिपर निवास करते थे।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासका यद्यपि पूरा नहीं चलता है तथापि जो कुछ भी मिलता है उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि, इस मध्ययुगमें भी प्रचण्ड शक्तिधारी मनुष्य इस देशमें हो गये हैं। सत्रहवी शताब्दि तक भी इस देशके लोगोंमें विलक्षण शारीरिक शक्ति थी। इस समयकी व्यायाम पद्धतिका

सूक्ष्म ज्ञान ततु होते हैं। इनका हृदयपर बडा परिणाम होता है। इसमें विकार हो जानेसे हृदयकी गति वन्द हो जाती है—इनके वलवान होनेसे सधिरोग, दुर्वलता, भस्म रोग आदि नहीं होने पाते।

(६) "प्लीहा" Spleen (स्प्लीन)—इसे ही तिल्ली कहते हैं। यह कमजोर या वीमार मनुष्योंके ही होती है, ऐसा मानना भूल है। यह सबके होती है किन्तु निर्वल मनुष्योंके यह बढ जाती है। हिमज्वरसे यह बढ जाती है। डाकुर लोगोंका मत है कि "इसको काटकर फेंकनेसे भी मनुष्य जीवित रह सकता है।" किन्तु इसका पचनसे सम्बन्ध है और खास करके रक्तमेंके लाल लाल अणुओंसे इसका विशेष सम्बन्ध है।

(७) "ऊर्ध्व वृक्क मासपिंड" Suprarenol (सुप्रारीनल) ये मासपिंड पेटके पीछे और मूत्राशयके ऊपर भागके पिछले हिस्सेमें हैं। रक्तश्राव बन्द करने आदि काय इनके ही अधीन हैं। इसके रसकी एक बून्द दस हजार बूँद पानीमें घोलकर किसी जगह अच्छी प्रकार लगानेसे वहाँका रुधिर प्रवाह बन्द होता है।

(८) "हयद्रुवक मासपिंड" Corotid skoms (केरोटीड स्केन्स) इनका स्थान गलेके दोनों ओर है। इनमें प्रान तन्तुओं-का स्थान है।

(९) "गोलक पूर्ण मासपिंड" Corcygeal skein (काक्सीजियल स्केन) इसका स्थान गुदाके पास है।

(१०) "महास्रोतस् मासपिंड" Aortic bodies (एओर्टिक बाडीज)—गर्भाशयमें इसका स्थान है और गर्भाशयसे ही इन मांसपिंडोंका घनिष्ट सम्बन्ध है।

इनके अतिरिक्त सैकड़ों मासपिंड इस शरीरमें हैं। जिनका वर्णन करना इस जगह व्यर्थ सा ही है। शरीर सुखी अथवा रोगी, छोटा अथवा बड़ा बनाना शरीरके मास पिंडोंके ही अधीन है। शरीरके जिस अवयवमें दोष हुआ, उसी अवयवका व्यायाम करनेसे बिना औषधके वह रोग समूल नष्ट हो जाता है। परन्तु इसके लिये शारीरिक ज्ञानका होना आवश्यक है। अखाड़ोंके उस्तादजी बेचारे इन बातोंको क्या जानें? इस व्यायाम पद्धतिके सुधारकोंको मनकी महान शक्तिका महत्व भी जान लेना चाहिये क्योंकि बिना मनको एकाग्र किये व्यायामको सिद्धि जैसी चाहिये, वैसी प्राप्त होना कठिन है। मनकी शक्तिका नियम है, कि जहाँ आप उसे स्थिर करेंगे, वहाँ ही वह कार्य करने लगेगी। अतएव व्यायामका सच्चा आनन्द प्राप्त करनेकी इच्छा पूर्ण तभी होगी जब कि सबसे पूर्व मनको एकाग्र करनेका अभ्यास कर लिया जायेगा। इसका अभ्यास सहजहीमें किया जा सकता है। एक बिन्दु दीवार पर या कागजपर बना कर उसे अपनी दृष्टिके सामने रखिये—उस बिन्दुपर १५ से ३० मिनटतक मनको स्थिर रखनेका अभ्यास बढाइये। इतनी स्थिरतासे मनकी शक्तिका काम चल सकेगा। तात्पर्य्य यह कि व्यायामके फल प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको,

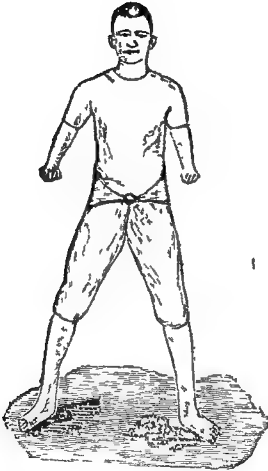
पहिले अपने मनको एकाग्र करनेके लिये उक्त अभ्यास अवश्य कर लेना चाहिये।

अब हम यहाँ व्यायाम करनेके कुछ तरीके बतावेंगे किन्तु यह स्मरण रहे, कि व्यायाम बिना प्राणायामके कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। प्राचीन और वर्त्तमान पद्धतिमें यदि कोई भेद है तो एक यही बड़ा भारी भेद है। शरीरमें शक्ति उत्पन्न करके उसका पोषण करना तथा शक्तिके सहचारी गुण भी शरीरमें स्थापित रखना, यही व्यायामका एक मात्र उद्देश है। जितना बल व्यायामसे बढ़ता है, उससे कहीं अधिक बल प्राणायाम द्वारा बढ़ जाता है। देखिये

"बलेषु हस्ति बलादीनि।"
"रूप लावण्य बलवज्र सहनत्वादीनिकाय सपत्।"
"उदानजयाज्जल पंक कण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च।"
"समान जया उज्वलनम्।"

ये योग सूत्र प्राणायामकी विलक्षण शक्तिको बता रहे हैं—"हाथीके समान बल प्राप्त करना। सुन्दर रूप, उत्तम बल वज्र शरीर प्राप्त करना। उदानको जीतकर उत्क्रान्ति प्राप्त करना और समानको पराजितकर तेज प्राप्त करना। ये सब बातें प्राणायामकी ही हैं। बिना प्राणायामके शरीरमें शक्ति आही नहीं सकती। आजकल्के अखाड़ोंमें जो व्यायामका अभ्यास किया जाता है, यद्यपि उसमें प्राणायामका विचार तक भी नहीं होता किन्तु परिश्रम करनेसे जल्दी जल्दी श्वास उच्छ्वास

इसमें बड़े भारी सुधारकी आवश्यकता दृष्टि आती है। क्योंकि देखा जाता है कि, दण्ड करते समय लोग इतने जल्दी जल्दी दण्ड लगाते हैं, कि किसी मशीनका पुरजा भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। श्वासोछ्वासकी क्रिया इतनी तेजीसे जल्दी जल्दी होने लगती है कि ग्रीष्म ऋतुमें गर्मीके कारण हाँफनेवाले कुत्तेके अतिरिक्त दूसरा कोई उदाहरण ही दृष्टि नहीं आता। इस प्रकारके लगाये हुए दण्ड कदापि लाभकारक नहीं हो सकते। दण्ड लगानेके पूर्व सिद्धासन बैठकर भस्त्रिका प्राणायाम यथाशक्ति कर लीजिये, बादमें चार छ अङ्गुल ऊँचे दो काठके चौकोर टुकड़े, पत्थर अथवा ईंटें रखकर अपने हाथ जमाइये। इन दोनों हाथोंका फासला छातीकी चौड़ाईसे डेढ़ा रखना चाहिये, साधारणत १८ या २० इंचका अन्तर दोनों हाथोंके बीचमें होना चाहिये। अब अपने पैर पीछेकी ओर ले जाकर एड़ी सहित भूमिपर जमा दीजिये। दोनों पैरोंके बीचमें एक फुटका फासला जरूर होना चाहिये। अब कुम्भक प्राणायाम करके बहुत ही आहिस्ता दंड लगाइये। नीचेकी ओर जाते समय सिरको बिलकुल नीचा मत कर दीजिये। उठते समय पेटको आगे तान देना चाहिये। जब ... चुके तब एक तरफ रेचक प्राणायाम कर ... फिर शुद्ध वायु खींचकर कुम्भक करना चाहिये ... लगाना चाहिये। स्मरण रहे कि दण्ड लगाते ... कर लेना चाहिये कि मुझमें बड़ी भारी ...

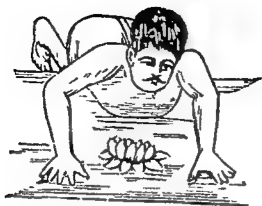


बैठक न० १

(देखिये—पृष्ठ संख्या १५६)







दण्ड।



बैठक न० २

(देखिये—पृष्ट सख्या १५६)





शरीरके समस्त अवयव पुष्ट हो रहे हैं, इसके द्वारा मैं अवश्य दीर्घायु पा सकूंगा। इन उच्च और पवित्र विचारोंको मनमें धारण करके कमसे कम एक मिनटमें एक दण्ड निकालना चाहिये। आरम्भमें थोड़े किन्तु फिर ज्यों ज्यों शक्ति बढ़ती जावे त्यों त्यों इन्हें बढ़ा देना चाहिये। २५ से ५० दण्ड तक करनेवाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

बैठक—अखाड़ेवाले इस अभ्यासमें भी बेहद शीघ्रता करते हैं। खम्भेको, रस्सोंको, या दीवारको पकड़कर ये लोग बैठके करते हैं। इस तरहकी बैठकोंसे बहुत हानि होती है। बैठकें कई प्रकारकी होती हैं। सहूलियतके अनुसार यदि चाहें तो और नई तरहकी बैठकें भी तय्यारकी जा सकती हैं। मुख्यत साधारण बैठक, कूद बैठक ही अच्छी होती हैं। इनके अति-रिक्त हनुमान बैठक, मुंहफार बैठक, एक पाव पसार बैठक, अंगमरोड़ बैठक, घुटने मोड़ बैठक इत्यादि विविध प्रकारकी बैठकें हैं। पाठक, इन बैठकोंका अभ्यास, यदि चाहेंगे तो किसी अन्य पुस्तकसे या किसी जानकार मनुष्यसे कर सकेंगे। हम यहाँ कूदबैठकका एक चित्र देते हैं। पहिले मनुष्यको "कूद बैठक चित्र नं० १" के अनुसार खड़े रहकर "कूद बैठक चित्र नं० २" अनुसार बैठना चाहिये। खड़े होनेके समय सीना आगे निकला हुआ, दोनों हाथोंको मुट्ठियाँ जोरसे बँधी हुई हों। कूदते समय ६। १० इंच आगेकी ओर कूदकर पञ्जोंके बल बैठना चाहिये तथा हाथोंको आगेकी तरफ बिलकुल

सीधे कर देना चाहिये। दोनों हाथोंके अंगूठे चित्र० २ की तरह मिल जाने चाहियें। बादमें फिर कूदकर पीछे अपनी जगहपर चित्र न० १ के अनुसार खडे हो जाना चाहिये। यह एक बैठक हुई। साधारण बैठकमें कूदना नहीं पडता। एक ही जगह खडे रहकर बैठकें लगानी होती हैं। पञ्जोंके बल या एडियोंके बल साधारण बैठकमें बैठनेकी कोई जरूरत नहीं है। चक्कर कूद बैठकमें चक्कर लगाकर बैठकें करनी पडती हैं इतना ही अन्तर है। पचाससे १०० तक बैठकें एक स्वस्थ मनुष्यके लिये बस हो सकती है।

बैठकोंसे मुख्यत पैरोंका व्यायाम होता है। पैरोंके लिये और कई व्यायाम हैं। दोनों पैरोंमें ६ इचका फासला देकर सीधे खडे हो जाइये और दोनों हाथोंकी मुट्ठियाँ बाँधकर अपने सिरपर ले जाइये। ध्यान रहे, कि हाथ बिलकुल सीधे और बल पूर्वक ऊपरकी ओर तने रहे। बादमें बिलकुल धीरे धीरे बैठना आरम्भ कीजिये, परन्तु जब बैठनेमें १। २ इचका अन्तर रह जावे तब फिर धीरे धीरे उठकर पहिली सी दशामें हो जाना चाहिये। इसे ही 'एड़ियाँ उठाकर पञ्जोंके बल करनेसे भी पाँवोंका अच्छा व्यायाम हो जाता है।

दौडना—यह पैरोंका व्यायाम है। फेफडोंको शुद्ध करने, हृदयको गतिशील बनाये रखने, तथा रक्तको शुद्ध करनेके लिये यह व्यायाम बडा ही उत्तम है। प्रात काल अथवा सायंकालके समय २ मीलसे १० मील तक भागना बडा ही हितकर

होता है। भागनेसे भस्त्रिका प्राणायाम खूब होता है, जो रुधिराभिसरणके लिये बड़ा ही अच्छा है। दौड़नेके समय अङ्गोंको शिथिल नहीं रखना चाहिये। हाथोंकी मुट्ठियाँ बाँधकर कटिके समीप ही रखनी चाहिये। अत्यन्त जोरसे साँस चलनेपर भी नाकके द्वारा ही श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करनी चाहिये। आरम्भ में कुछ दूर दौड़नेपर ही दम फूल जाता है और दौड़नेवाला घबराने लगता है किन्तु हिम्मत बाँधकर दौड़ते रहनेसे घबराहट मिट जाती है और हिम्मत भी बढ़ जाती है। दौड़नेके समय लम्बा साँस लेना और छोड़ना चाहिये—इससे घबराहट भी बहुत कम होती है। दौड़ चुकनेके बाद तुरन्त ही बैठ जाना, पड़े रह जाना, या सो जाना बड़ा ही नुकसान करता है। अतएव दौड़नेके बाद जबतक साँस जल्दी जल्दी चलता रहे, तबतक टहलते रहना ही फायदेमन्द है। दौड़नेके लिये स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँकी हवा शुद्ध और खुली हुई हो। हमारे देशी खेल बहुतेरे ऐसे हैं, जिनमें खूब ही दौड़ाई होती है। गिल्लीदण्डा, खोखो, कबड्डी, छीयापाती, आदि सैकड़ों खेल ऐसे हैं जिनमें खूब ही दौड़नेका व्यायाम होता है। फुटबाल, क्रीकेट, हॉकी आदि पश्चिमीय खेल भी जो आजकल भारतीय खेल बन गये हैं, दौड़नेके व्यायाम हैं।

मलखंभ—मलखम्भका व्यायाम भी देशी व्यायामोंमें बड़ा ही उत्तम है। इसके करनेसे शरीरमें फुर्ती, लचीलापन, और नरमी आती है। यह व्यायाम एक स्तंभ—खम्भे



चाहिये। कुछ दिनके अभ्याससे आप ही आप हाथ साफ हो जावेगा। मुद्गरसे मुख्यतया हाथोंकी कसरत होती है, भुजदण्ड बन जाते हैं। कुछ कुछ छाती और सिरका व्यायाम भी हो जाता है। मुद्गर जोडी एकदम हलकी या एकदम वजनदार उठानेसे कोई लाभ नहीं, अपनी शक्तिके अनुसार ही वजन होना चाहिये। आजकल लोगोंने मुद्गरोंको छोड सा दिया है और "डम्बेल्स" को अपना लिया है। डम्बेलका व्यायाम मुद्गरके व्यायामसे उत्तम नहीं कहा जा सकता। डम्बेल्स कई तरहके होते हैं, काठके, लोहेके और कमानीदार। हाथोंकी मुट्ठियोंमें डम्बेल्सको बल पूर्वक दबाकर इसका व्यायाम किया जाता है। इसकी क्रियाएँ सिखानेके लिये बहुत सी पुस्तकें हैं। किसी अच्छी पुस्तककी सहायतासे डम्बेल्सका व्यायाम सीखा जा सकता है। लिखनेवाले व्यक्तिको कमानीदार डम्बेल्सका व्यायाम नहीं करना चाहिये, ऐसे डम्बेल्सके व्यायाम करनेवालोंके हाथोंमें कभी कभी कम्परोग हो जाता है। यदि डम्बेल्स न हों तो मुट्ठियाँ ही जोरसे बाँध करके व्यायाम करनेसे उतना ही लाभ हो सकता है। हाथोंकी कसरतके लिये लोहेके गोलेको फेंकना भी अच्छा व्यायाम है। पत्थरके नाल उठाना भी अत्यन्त लाभदायक है। प्राचीन कालमें पत्थरके नाल उठानेका बड़ा भारी प्रचार था, गाँव गाँवमें नालें पडी होती थीं जिन्हें नगरवासी अवकाशके समय उठाया करते थे, जबसे इस विधिका लोप हुआ तभीसे नाल उठानेका व्यायाम देशसे

सा गया है। नाल उठानेकी भी कई तरकीयें हैं, जो किसी जानकार व्यक्तिसे सीखी जा सकती हैं। मुदुगर, डम्बेल्स, लोहेका गोला, नाल इत्यादिका व्यायाम स्वास्थ्यके लिये बड़ा ही उत्तम होता है।

कूदना—कूदना फाँदना भी अच्छा व्यायाम है। कुदाई भी कई प्रकारकी होती है। लम्बी कुदाई, ऊँची कुदाई, पैर बाँध कर कुदाई, दौड़ कुदाई, वगैरः। कुदाई से समस्त अङ्गोंका अच्छा व्यायाम होता है। मुख्यतया पेट और कपालको बल प्राप्त होता है। बहुत से लोग कुदाईके समय अपने-हाथ पैर ढीले रखते हैं—ऐसी कुदाईसे लाभ बहुत कम होता है। कूदते समय हाथ पैरोंको कठोर रखने तथा प्राणायाम करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। दौड़ना, कूदना, फाँदना, खेलना इत्यादि व्यायाम कम उम्रके बच्चोंके लिये बहुत ही फायदेमन्द हैं। छोटी उम्रके बच्चोंसे दण्ड बैठकका व्यायाम

अपने मनको एकाग्र कर देनेसे कूदनेमें बड़ी सफलता प्राप्त होती है।

तैरना—जलाशयमें तैरना भी उत्तम व्यायाम है, बशर्ते कि क्रिया पूर्वक तैरा जावे। सबसे पहिले जलकी पवित्रताका ध्यान रखना चाहिये। जो लोग गन्दे, मटमैले, दुर्गन्ध युक्त जलमें स्नान करते हैं, उनकी आयु क्षीण हो जाती है। अनेक चर्मरोग हो जाते हैं, सिर दर्द हो जाती है। अतएव पवित्र, शुद्ध, निर्मल जलमें ही तैरनेका व्यायाम करना चाहिये। तैरनेका व्यायाम अपनी शक्तिसे अधिक करनेमें प्राण हानिकी सम्भावना है। अधिक तैरनेके कारण लोगोंको उन्माद, मूर्च्छा मृगी और पागलपन हो जाता है। गहरे जलमें घुसकर प्राणायाम पूर्वक धीरे धीरे बल वृद्धि तथा आयुष्य वृद्धिकी प्रबल इच्छाको मनमें धारण किये हुए तैरना चाहिये। समुद्रके जलमें तैरना हानिकारक है। पानीमें गोते मारना बड़ा ही अच्छा व्यायाम है।

वायुसेवन—वायुसेवनको 'हवा खोरी' भी कहते हैं। आजकल लोग हवाखोरी, वायुसेवन, वाकिंग (Walking) आदि के बडे ही शौकीन देखे जाते हैं। परन्तु घरसे निकलकर, किसी जगह जा बैठना, या निकटस्थ किसी बाग बागीचेमें जा बैठना ही लोगोंने हवाखोरी समझ ली है। कई महाशय तो ऐसे भी हैं जो भोजनके बाद या प्रात साय १०० पचास कदम कर ही अपने वायुसेवनका अन्त कर देते

कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। प्रत्येक स्वास्थ्य और दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको कमसेकम चार या पाँच मीलकी हवाखोरी अवश्य करनी चाहिये। अधिकसे अधिक २० मील नित्य वायुसेवनके लिये जाना चाहिये। यदि इतना समय नित्य नहीं मिल सके तो छुट्टीके दिन तो अवश्य ही आठ या दस मील घूमना चाहिये। वायु सेवनके लिये जिस चालसे चलना आरम्भ किया जावे, वही चाल अन्ततक रहनी चाहिये। कहीं तेजीसे, कहीं मन्द गतिसे चलना ठीक नहीं। बिलकुल जनाना चाल भी नहीं होनी चाहिये। जो लोग अपने बड़प्पनकी शानमें मस्त होकर मोटर, विक्टोरिया, तांगों, ट्रम ट्रम, इक्के, सायंकाल, घोड़ा, ऊँट, आदि यानों पर वायु सेवनार्थ जाते हैं, वे उतना लाभ नहीं उठा सकते जितना कि पैदल वायु सेवननार्थ जाने वालेको लाभ होता है। यानों पर जाने वालोंको व्यायाम नहीं होता, केवल शुद्ध वायु ही प्राप्त होता है। प्रात काल और सायकाल ही वायुसेवनके उत्तम समय हैं। प्रात काल सूर्योदयके पूर्व वायुसेवनार्थ नगरसे बाहिर चले जाना चाहिये और सायकालको सूर्यकी गर्मी कम होते ही हवाखोरीको चल देना चाहिये। प्रात कालके वायुका सेवन सायकालीन वायु सेवनसे लाख दर्जे अच्छा होता है। प्रात'कालके समय वायुसेवनार्थ जङ्गलमें जानेवाले व्यक्तिका स्वास्थ्य, तेज, बल, यश, और बुद्धि बढ़ती है। उष काल अमृत काल, सूर्योदयसे २ घन्टे पूर्वका नाम है।' इस समय

वायु सेवन करने वाला वास्तवमें अमृतका ही सेवन करता है। जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा हो, उन्हें नित्य अमृतकालमें वायु सेवनार्थ ग्रामसे बाहिर २। ४ मील चले जाना चाहिये। वेदने भी उप कालको दुधारी गौके समान कहा है। देखिये —

"अवोध्यग्निः समिधा जनानां प्रतिधेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्रभानवः सस्रते नाकमच्छ ॥"

(सामवेद)

जोर-कुश्ती—इसे "मल्लयुद्ध" भी कहते हैं। यह व्यायाम बड़ा ही अच्छा है। इसमें शरीरके सब अवयवोंको पूर्ण व्यायाम मिलता है। इसमें प्राणायाम मुख्य है। इसके अनेक दाँव पेच हैं, जो मल्लयुद्धके अच्छे जानकारोंसे सीखे जा सकते हैं। कुछ पुस्तकों द्वारा भी इसका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह एक प्रकारका स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध होता है। अत एव कभी कभी इसके द्वारा बड़ी बड़ी हानियाँ हो जाती हैं। इस युद्धको प्रेम पूर्वक आनन्द और हर्षके साथ करनेसे ही दीर्घायु और आरोग्य प्राप्त हो सकता है। क्रोध पूर्वक किया हुआ मल्लयुद्ध शारीरिक शक्तिको क्षीण करके अल्पायु बना देता है। बहुतेरे लोग तो इस मल्लयुद्ध द्वारा खूब रूपया कमाते हैं—पेट भरते हैं। मल्लोंका मुख प्राय निस्तेज होता है और शरीर हृष्ट पुष्ट सुडौल और बलवान होता है—इसका कारण यह है कि मल्ललोग मस्तिष्कका व्यायाम बिलकुल नहीं

कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। प्रत्येक स्वास्थ्य और दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको कमसेकम चार या पाँच मीलकी हवाखोरी अवश्य करनी चाहिये। अधिकसे अधिक २० मील नित्य वायुसेवनके लिये जाना चाहिये। यदि इतना समय नित्य नहीं मिल सके तो छुट्टीके दिन तो अवश्य ही आठ या दस मील घूमना चाहिये। वायु सेवनके लिये जिस चालसे चलना आरम्भ किया जावे, वही चाल अन्ततक रहनी चाहिये। कहीं तेजीसे, कहीं मन्द गतिसे चलना ठीक नहीं। बिलकुल जनाना चाल भी नहीं होनी चाहिये। जो लोग अपने बड़प्पनकी शानमें मस्त होकर मोटर, विक्टोरिया, तांगों, टम टम, इक्के, सायंकाल, घोड़ा, ऊँट, आदि यानों पर वायु सेवनार्थ जाते हैं, वे उतना लाभ नहीं उठा सकते जितना कि पैदल वायु सेवननार्थ जाने वालेको लाभ होता है। यानों पर जाने वालोंको व्यायाम नही होता, केवल शुद्ध वायु ही प्राप्त होता है। प्रात काल और सायंकाल ही वायुसेवनके उत्तम समय हैं। प्रात काल सूर्योदयके पूर्व वायुसेवनार्थ नगरसे बाहिर चले जाना चाहिये और सायकालको सूर्यकी गर्मी कम होते ही हवाखोरीको चल देना चाहिये। प्रात कालके वायुका सेवन सायकालीन वायु सेवनसे लाख दर्जे अच्छा होता है। प्रात कालके समय वायुसेवनार्थ जङ्गलमें जानेवाले व्यक्तिका स्वास्थ्य, तेज, बल, यश, और बुद्धि बढती है। उष काल अमृत काल, सूर्योदयसे २ घन्टे पूर्वका नाम है।' इस समय

वायु सेवन करने वाला वास्तवमें अमृतका ही सेवन करता है। जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा हो, उन्हें नित्य अमृतकालमें वायु-सेवनार्थ ग्रामसे बाहिर २। ४ मील चले जाना चाहिये। वेदने भी उष कालको दुधारी गौके समान कहा है। देखिये —

"अबोध्यग्नि समिधा जनाना प्रतिधेनुमिवायती मुषासम्।
यह्वा इव प्रवयामुज्जिहाना प्रभानव सस्रते नाकमच्छ ॥"

(सामवेद)

जोर-कुश्ती—इसे "मल्लयुद्ध" भी कहते हैं। यह व्यायाम बडा ही अच्छा है। इसमें शरीरके सब अवयवोंको पूर्ण व्यायाम मिलता है। इसमें प्राणायाम मुख्य है। इसके अनेक दाँव पेच हैं, जो मल्लयुद्धके अच्छे जानकारोंसे सीखे जा सकते हैं। कुछ पुस्तकों द्वारा भी इसका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह एक प्रकारका स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध होता है। अतएव कभी कभी इसके द्वारा बडी बडी हानियाँ हो जाती हैं। इस युद्धको प्रेम पूर्वक आनन्द और हर्षके साथ करनेसे ही दीर्घायु और आरोग्य प्राप्त हो सकता है। क्रोध पूर्वक किया हुआ मल्लयुद्ध शारीरिक शक्तिको क्षीण करके अल्पायु बना देता है। बहुतेरे लोग तो इस मल्लयुद्ध द्वारा खूब रुपया कमाते हैं—पेट भरते हैं। मल्लोंका मुख प्राय निस्तेज होता है और शरीर हृष्ट पुष्ट सुडौल और बलवान होता है—इसका कारण यह है कि मल्लोग मस्तिष्कका व्यायाम बिलकुल नहीं

कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। प्रत्येक स्वास्थ्य और दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको कमसेकम चार या पाँच मीलकी हवाखोरी अवश्य करनी चाहिये। अधिकसे अधिक २० मील नित्य वायुसेवनके लिये जाना चाहिये। यदि इतना समय नित्य नहीं मिल सके तो छुट्टीके दिन तो अवश्य ही आठ या दस मील घूमना चाहिये। वायु सेवनके लिये जिस चालसे चलना आरम्भ किया जावे, वही चाल अन्ततक रहनी चाहिये। कहीं तेजीसे, कहीं मन्द गतिसे चलना ठीक नहीं। बिलकुल जनाना चाल भी नहीं होनी चाहिये। जो लोग अपने बडप्पनकी शानमें मस्त होकर मोटर, विक्टोरिया, तागों, टम टम, इक्के, सायंकाल, घोडा, ऊँट, आदि यानों पर वायु सेवनार्थ जाते हैं, वे उतना लाभ नहीं उठा सकते जितना कि पैदल वायु सेवननार्थ जाने वालेको लाभ होता है। यानों पर जाने वालोंको व्यायाम नहीं होता, केवल शुद्ध वायु ही प्राप्त होता है। प्रात काल और सायंकाल ही वायुसेवनके उत्तम समय हैं। प्रात काल सूर्योदयके पूर्व वायुसेवनार्थ नगरसे बाहिर चले जाना चाहिये और सायकालको सूर्यकी गर्मी कम होते ही हवाखोरीको चल देना चाहिये। प्रात कालके वायुका सेवन सायकालीन वायु सेवनसे लाख दर्जे अच्छा होता है। प्रात कालके समय वायुसेवनार्थ जङ्गलमें जानेवाले व्यक्तिका स्वास्थ्य, तेज, बल, यश, और बुद्धि बढ़ती है। उष काल अमृत काल, सूर्योदयसे २ घन्टे पूर्वका नाम है। इस समय

वायु सेवन करने वाला वास्तवमें अमृतका ही सेवन करता है। जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा हो, उन्हें नित्य अमृतकालमें वायु-सेवनार्थ ग्रामसे बाहिर २। ४ मील चले जाना चाहिये। वेदने भी उप कालको दुधारी गौके समान कहा है। देखिये —

"अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रतिधेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्रभानवः सस्रते नाकमच्छ ॥"
(सामवेद)

जोर-कुश्ती—इसे "मल्लयुद्ध" भी कहते हैं। यह व्यायाम बड़ा ही अच्छा है। इसमें शरीरके सब अवयवोंको पूर्ण व्यायाम मिलता है। इसमें प्राणायाम मुख्य है। इसके अनेक दाँव पेंच हैं, जो मल्लयुद्धके अच्छे जानकारोंसे सीखे जा सकते हैं। कुछ पुस्तकों द्वारा भी इसका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह एक प्रकारका स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध होता है। अत एव कभी कभी इसके द्वारा बड़ी बड़ी हानियाँ हो जाती हैं। इस युद्धको प्रेम पूर्वक आनन्द और हर्षके साथ करनेसे ही दीर्घायु और आरोग्य प्राप्त हो सकता है। क्रोध पूर्वक किया हुआ मल्लयुद्ध शारीरिक शक्तिको क्षीण करके अल्पायु बना देता है। बहुतेरे लोग तो इस मल्लयुद्ध द्वारा खूब रुपया कमाते हैं—पेट भरते हैं। मल्लोंका मुख प्राय निस्तेज होता है और शरीर हृष्ट पुष्ट सुडौल और बलवान होता है—इसका कारण यह है कि मल्ललोग मस्तिष्कका व्यायाम बिलकुल नहीं

निरक्षर, मूर्ख, और विद्याके शत्रु होते हैं। यदि इनमें थोड़ी सी भी मस्तिष्ककी शक्ति हो तो सोनेमें सुगन्ध हो जावे और सुख भी कान्तियुक्त बन जावे। मल्लयुद्धके समय जिनका शारीरिक बल और मस्तिष्कका बल लगता है, वे शीघ्र ही प्रतिद्वन्द्वी पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते हैं। अतएव हमारे पहलवानोंको दीमागी कार्यों द्वारा दीमागको भी शक्ति सम्पन्न बनाना चाहिये। इससे बड़ा ही लाभ होता है।

व्यायाम विषयक कुछ सूचनाएँ भी यहाँपर लिख देना आवश्यक है।

(१) स्नान और व्यायाममें कमसे कम २ घण्टेका अन्तर रखना चाहिये। स्नानके १५ या २० मिनिट पश्चात् व्यायाम करनेसे कोई हानि नहीं हो सकती, किन्तु व्यायामके १५ या २० मिनिट बाद ही स्नान करनेसे बड़ी बड़ी बीमारियाँ हो जाती हैं—मनुष्य अल्पायु हो जाता है।

(२) भोजनके बाद व्यायाम नहीं करना चाहिये। कमसे कम भोजनके ६ घंटे बाद व्यायाम होना चाहिये। व्यायामके बाद ही बहुतसे लोग दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थ सेवन करते हैं—यह बड़ी भारी भूल है। व्यायामके बाद कमसे कम आध घण्टे तक कुछ भी नहीं खाना पीना चाहिये। पेटकी आँते उस समय उदरस्थ विकारोंको शमन करने तथा अपक्व अन्नको पचानेमें लगी होती हैं उस समय पेटमें उनके पचानेके लिये भोजन डाल देना ठीक नहीं है। ऐसे लोगोंको बीमारियाँ

होकर अल्पायु हो जाते हैं। बहुतसे मू ...िक पदार्थ खाते जाते हैं और व्यायाम करते जाते हैं। व्यायाम के बाद दूध बादाम, खोपड़ा, छुहारा, पिश्ता, चिरोंजी, किशमिश, आखरोट, अंगूर, अनार, सेव, नासपाती, अञ्जीर, कलमी आम, भीगी हुई चनेकी दाल आदि पदार्थो का सेवन हितकर है। कुछ लोगोंका खयाल है, कि व्यायामके बाद यदि कुछ भी न खाया जावे तो श्रम निष्फल होता है। ऐसा मान बैठना भी भूल है। व्यायाम तो सदा उत्तम है। भले ही रूखी सूखी, ज्वार, बाजरी, मकई आदिकी रोटियाँ ही मिले।

(३)व्यायामके समय लोग लङ्गोंट, रूमाली, कछ, जाँघिया आदि पहिनते हैं। कुछ अज्ञ पुरुष लङ्गोटको इस तरह खींचतान कर बाँधते हैं कि उनकी उपस्थेन्द्रिय दिखाई ही नहीं पड़ती, उस समय मालूम होता है मानों ये स्त्री हैं अथवा हीजड़े हैं। जिन्हें आमरण ब्रह्मचारी ही रहना हो, उनके लिये तो ऐसा करना विशेष हानिकारक नहीं है, किन्तु जिन्हें गृहस्थाश्रमकी इच्छा है; उन्हें अपने शिश्नके साथ ऐसा अत्याचार नहीं करना चाहियें। लङ्गोंटको कमरमें कसकर बाँधनेसे बहुत हानि होती है—क्योंकि व्यायाम करनेसे रक्त शीघ्रतापूर्वक शरीरमें सिरसे पैरतक दौड़ने लगता है, यदि कमरमें लङ्गोंट कसकर बाँधा हो तो रक्तकी तेज गतिको वहाँ रुक जाना पड़ेगा। रक्तकी गतिमें बाधा उपस्थित होनेसे स्वास्थ्यमें अन्तर आता है और उम्र कम होती है। इसलिये, लङ्गोट खूब कसकर नहीं बाँ

चाहिये। साथ ही व्यायाम कर चुकनेके बाद तत्काल ही लंगोट नहीं खोल देना चाहिये।

(४) कुछ लोग थक जानेपर भी अपना व्यायाम आरम्भ रखते हैं। इन लोगोंका ख्याल है, कि ऐसा करना ही सच्ची कसरत है, परन्तु यह इनकी गलती है। ऐसा व्यायाम करनेवाले मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नहीं हो सकते। कसरत करते करते जब मुँह सूखने लगे या छाती और बगलोंमें पसीना झलक आवे, उस समय कसरत बन्द कर देनी चाहिये। यदि बन्द मकानमें कसरत की गई हो तो तत्काल ही खुली हवामें नहीं आना चाहिये। अधिक प्यास लग जानेपर तुरन्त ही पानी या शर्बत वगैर नहीं पी लेना चाहिये।

(५) कसरत कर चुकने पर फौरन [illegible], खड़े रह जाना या सो जाना ठीक नहीं है। [illegible] अपनी [illegible]

(७) शराब, गाँजा, भाँग, अफीम, चा, काफी, तम्बाकू आदि मादक द्रव्य मनुष्यके शारीरिक, और मानसिक वलको नष्ट करने वाले हैं। अतएव व्यायाम द्वारा आरोग्यता और दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको किसी भी तरहका नशा स्वप्नमें भी नही करना चाहिये। हमारे देशके कुछ भङ्गेडी पहलवानोंने भङ्गको कसरतके साथ उपयोगी ठहराया हैं, परन्तु यह मूर्खता है। मथुराके चौवे भङ्ग पीपीकर व्यायाम करनेके लिये ससारमें विख्यात हैं। यदि ये लोग भङ्ग न पीकर व्यायामशील वनते तो इनका शारीरिक सुधार होकर पूर्ण आयु पाते और अधिक कीर्त्ति प्राप्त कर सकते थे।

मनुष्यको चाहिये कि पहले अपने अङ्गोंकी परीक्षा कर ले। कौनसा अङ्ग कमजोर है, कौनसा वलवान है। इस वातको अच्छी प्रकार जान लेनेके वाद, जौनसा अङ्ग निर्वल हो, उसे ही सवल वनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। मान लीजिये कि आपकी पाचन क्रिया खराव हो चुकी है और भोजन हजम नहीं होता है तो अन्य अङ्गोंकी कसरतके साथ ही साथ पेटकी कसरत पर विशेष ध्यान देना चाहिये। इस प्रकार एक दिन आपका पेट विना किसी ओषधिके ही ठीक हो जावेगा। व्यायामसे मतलव आरोग्यता और दीर्घायुसे है। जो व्यायाम शील होकर वैद्य, हकीम, और डाक्टरोंके यहाँ जाता है, उसका व्यायाम व्यर्थ है। अर्थात् व्यायाम करने वालेको कोई रोग नहीं होने पाता और यदि हो भी जावे तो उसे व्यायाम द्वारा ही नष्ट कर

चाहिये। प्रत्येक अङ्गके व्यायाम अलग अलग हैं—उन्हें आसन कहते हैं। आसन करने वाले कभी रोगी नहीं होते और अकाल मृत्यु नहीं पाते। यद्यपि आसन एक प्रकारके व्यायाम ही हैं, तथापि हम अब अपने अगले प्रकरणमें ही इस विषय पर कुछ लिखेंगे। यहाँ, इसी प्रकरणमें आसनोंका सम्मिलित कर देनेसे प्रकरण वृद्धिका भय है। अतएव इस विषयको व्यायामसे सम्बन्ध होने पर भी पृथक कर दिया है।



आसन

प्राचीनकालमें आसनोंका आसन व्यायाम पद्धतिमें अत्यन्त ऊँचा था। लोगोंका कहना है, कि चौरासी लाख आसन हैं—जितनी जीव जाति हैं, उतने ही आसन हैं। उनमेंसे —

"चतुरशीत्यासनानि शिवेन कथितानिच।"

चौरासी आसन विख्यात हैं। अष्टाङ्ग योगमें आसनोंका तीसरा अङ्ग है। आसनोंसे शरीरकी नस, नाडियोंकी शुद्धि और सब शरीरमें रुधिरका उत्तम सञ्चार होनेसे शरीर स्वस्थ रहता है। आसन दो प्रकारके हैं (१) स्वास्थ्य-प्रदायक आसन और (२) ध्यान धारणाके साधक आसन। स्वास्थ्य प्रदायक आसन अनेक हैं और ध्यान धारणाके आसन सिर्फ २।४ ही हैं। जिन जिन आसनोंका हमने अनुभव किया हैं, सिर्फ उन्हें ही हम यहाँ सचित्र, विधि सहित लिखेंगे। हमारे पाठक इन आसनों द्वारा नीरोगता और स्वास्थ्य सम्पादन करेंगे, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

जब कि देशका पतन आरम्भ हुआ, उस समय प्रत्येक बातका विपरीत रूप बना लिया गया। वाम मार्गने जहाँ

कर लेना चाहिये। पचास या सौ दण्ड लगानेसे शरीरमें जो बल नहीं आता वह "भस्त्रिका" से आता है। अब हम मस्तकके आसनसे आरम्भ करेंगे और जहाँतक हो सकेगा प्रत्येक अङ्गका व्यायाम लिखनेका प्रयत्न करेंगे।

(१) शीर्षासन—इसे "कपाली आसन" भी कहते हैं। यह ब्रह्मचर्यके लिये बड़ा ही उपयोगी है। वीर्यदोषके रोगियोंको इससे बड़ा ही लाभ होता है। स्वप्नदोष नष्ट हो जाता है और चिरकालके अभ्याससे मनुष्य ऊर्ध्वरेता बन जाता है। मस्तिष्कके रोग सब दूर हो जाते हैं। आँखोंकी कमजोरी, बधिरता, आदि सब दोष मिट जाते हैं। जिन लोगोंके बाल सफेद हो गये हों, उन्हें छ महीने इस शीर्षासनके करनेसे चमत्कार दिखाई देगा—बाल जो सफेद हो गये थे, वे बिना किसी खिजाबके काले हो जावेंगे। यह क्या कुछ कम प्रभाव है? शीर्षासनसे विचित्र लाभ हैं, जिन्हें यहाँ लिखकर बतलाना असम्भव है। यद्यपि यह आसन बड़ा ही कठिन है तथापि सर्वोत्तम है।

सिरके बलपर खड़े रहनेका नाम शीर्षासन है। जब यह आसन करना हो तब जमीनपर बहुत ही नरम आसन रखकर उसपर सिर रखिये। आसन चार छ अगुल मोटे गद्देलेकी तरह नरम हो—नहीं तो मस्तकको प्रारम्भमें अत्यन्त कष्ट होगा। किसी लम्बे कपड़ेकी गेंडुई सी बनाकर उसमें भी सिर रखकर यह आसन लगाया जा सकता। आसन पर सिर रखनेके

पश्चात् सिरको पीछेकी तरफ दोनों हाथोंसे पकड़ लीजिये और पावोंको सीधा करके शरीरको समसूत्रमें दीवारके सहारे खड़ा कर दीजिये। जब तक यह अभ्यास अच्छी तरह न हो, तबतक इसे दीवारके आसरेसे ही करना चाहिये। पूर्ण अभ्यास होनेके बाद दीवारके आश्रयकी आवश्यकता नहीं रहेगी। खूब अभ्यास हो जानेके बाद पावोंको आगे पीछे इच्छानुसार घुमा सकते हैं—पद्मासन तक भी लगा सकते हैं। आरम्भिक अभ्यासमें १।२ सेकेण्डसे अधिक इसे नहीं करना चाहिये। एक दो महीनेके अभ्यासके पश्चात् आप आध घण्टेतक इसे कर सकते हैं। इससे कभी किसी प्रकारके नुकसान की सम्भावना ही नहीं। इसे स्त्री पुरुष दोनों कर सकते हैं। इस चित्रके निरीक्षणसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है, देखो चित्र शीर्षासन न० १ और नं० २।

यद्यपि शीर्षासनसे सिर सम्बन्धी सभी व्यायाम हो जाते हैं तथापि हम अलग अलग अङ्गोंके अलग अलग व्यायाम बतावेंगे। क्योंकि वेद में—

"पश्येम शरदः शतं।"

यह उपदेश १०० वर्ष तक अर्थात् मृत्यु पर्य्यन्त "तेज निगाह रहनी चाहिये" इस बातकी आज्ञा देता है। अतएव नेत्रका व्यायाम भी यहाँ बतला देना ठीक होगा। क्योंकि ये नयन (ले चलनेवाले) हैं। बिना नयनके संसार व्यर्थ सा जान पड़ता है—जीवन बेकार हो जाता है। किसी कविने कहा है—

"पुनर्दारा पुनर्वित्तं नच नेत्र पुनः पुन ।"

अतएव नेत्र रक्षा परमावश्यक है। हमारे बहुतेरे भाई चश्मोंके भरोसे अपने नेत्रोंकी परवाह नहीं करते। यह एक बड़ी भारी गलती है। हम यहाँ ऐसी क्रियाएँ बतावेगे, जिनके अभ्याससे नेत्रोंकी ज्योति आमरण कम नहीं होगी! नेत्रोंका व्यायाम—पद्मासन, अथवा सिद्धासन लगाकर पृष्ठवंशको समरेखामें रखकर, सामने किसी दीवारपर या कागजपर, काले अथवा हरे रङ्गके नीचे लिखे अनुसार चित्र बना रखने चाहिये।

पहिले न० १ पर अपनी दृष्टि जमानेका अभ्यास कीजिये। बिना पलक छुपाये एक टक दृष्टिसे इसे देखते रहिये, जब जब आँखोंमें पानी आ जावे, तब तब कुछ देरके लिये आँखें मूँद लीजिये। ऐसा करनेसे नेत्रोंकी दृष्टि तो बढ़ती ही है। प्रत्येक अभ्यास आरम्भमें बहुत ही थोड़ा करना चाहिये, नहीं तो लाभकी जगह हानि होना सम्भव है। बादमें चित्र नं० २ त्रिकोणका दीवारपर लगभग एक या डेढ़फुटका बनाइये। रेखाओंकी मोटाई एक इञ्च से कम नहीं होनी चाहिये। अब सिद्धासन या पद्मासन बैठकर दाहिनी ओरसे बाईं ओर तथा बाईं ओरसे दाहिनी और इन रेखाओंपर अपनी दृष्टिको चक्कर दीजिये। इसी प्रकार चित्र न० ३ की भी क्रिया करनी चाहिये। जब नेत्र थक जावे तक यह क्रिया बन्द करके आँखें मूँद चाहिये और ४।५ मिनटके बाद खोलनी चाहिये।

पूनमके चाँदको एकटक दृष्टिसे लगभग



नं० १



नं० २



नं० ३

(देखिये—पृष्ठ सख्या १७८)

देखते रहनेसे भी दृष्टिमाद्य रोग नहीं हो सकता। सातवें आठवें दिन या जब कभी नेत्रोंमें खुजली चले, तब अपने हाथोंकी गद्दियोंसे उन्हें धीरे धीरे मसल देना चाहिये। दातुन करनेवाले व्यक्तिकी दृष्टि कभी मन्द नहीं हो सकती, बशर्ते कि दातुन क्रिया पूर्वक किया जाता हो। अपने एक हाथकी हथेली पर दूसरे हाथकी तर्जनी अँगुलीको जल्दी जल्दी जोरसे घिसिये, जब उसमें खूब गर्मी पैदा हो जाय तब उससे अपने नेत्रोंको १०। १२ बार सेक दीजिये ऐसा करनेसे नेत्रमें फुन्सी वगैरः रोग कदापि नहीं होगा।

हठ योग वर्णित छ कर्मों में एक कर्म "नेती" है, उसके करनेवालोंको कभी नेत्र दोष नहीं होता और जिन्हें किसी प्रकारकी नेत्र सम्बन्धी बीमारी होती है, वह भी कुछ महीनोंके अभ्याससे हट जाती है। नेतीकी प्रशंसामें निम्न श्लोक देखिये—

"कपाल शोधिनीचैव दिव्य दृष्टि प्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेति राशु निहन्तिच।"

यदि हमारे बताये हुए चित्रोंके अनुसार आपको नेत्र व्यायाम करनेमें कुछ असुविधा पड़े तो किसी भी वस्तुको अपना लक्ष्य मान कर उसपर दृष्टि जमाइये। इसे योगमें "त्राटक कर्म" कहते हैं। देखिये—

"अश्रु सम्पात पर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकम् स्मृतम्।"

आँखोंमें आँसू न आ जावे तबतक त्राटक करना चाहिये। अब इसका माहात्म्य भी सुन लीजिये—

"मोचनं नेत्र रोगाणा तन्द्रादीना कपाटकम् ॥
यत्नतस्त्राटक गोप्य यथी हाटक पेटकम् ॥"

यह नेत्र रोग तथा आलस्यको दूर करता है। इस त्राटक कर्मको स्वर्णकी सन्दूकके समान गुप्त रखना चाहिये।

कानोंका व्यायाम—वेद कहता है—

"श्रृणुयाम शरद शतम्।"

अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त श्रवणशक्तिमें न्यूनता न आने पावे। इस लिये, कानोंके व्यायामकी भी आवश्यकता है। सबसे प्रथम सिद्धासन या पद्मासन बैठकर अपने मनकी सब शक्तियाँ कानोंमें प्रेरित कीजिये। उस समय सिवाय कानोंके दूसरी किसी भी इन्द्रियमें अपने मनको मत जाने दीजिये। मनको बिलकुल एकाग्र कर दीजिये। अब आप सूक्ष्म शब्द सुननेका प्रयत्न कीजिये। जो शब्द आपके कानोंमें मन्द मन्द आ रहा है, उसे स्पष्ट सुननेके लिये कानोंको उधर लगाइये। यदि आपके पास घड़ी है तो उसे दूरीपर रखकर उसका सूक्ष्म 'शब्द ध्यान पूर्वक सुननेका प्रयत्न कीजिये। प्रतिदिन घड़ीको कुछ दूर हटाते जाइये। ऐसा करनेसे आमरण आप बधिरतासे बचे रहेंगे। कानोंमेंके मलको निकालनेके लिये तिनका, नहरनी, दियासलाई, होल्डर, कील आदि कदापि मत डालिये। उस परमात्माने इसकी रचना ही ऐसे कौशलसे की है। जिसमें कोई मैल अन्दर नहीं रह सकता। आप ही आप बाहिर आ जाता है। खुजाल चले तो तिल्ली, सरसों, या खोपरेका तेल

४।५ बूँद डालकर कुछ देर कानमें तेलको रखनेके लिये लेट जाना चाहिये। अकारण ही अस्पतालमें जाकर अपने कानोंमें पिचकारी लगवाना, धुलवाना, तथा ग्लीसरीन आदि पदार्थ डलवानेसे वधिरता हो जाती है। कानोंसे कभी कर्कश—कर्ण कटु शब्दोंको नहीं सुनना चाहिये। सदा सर्वदा "भद्रं कर्णेभि शृणुयामि।" का अनुयायी होना चाहिये।

नाकका व्यायाम—नासिकाके द्वारा ही प्राण वायु इस शरीरमें पहुँचता है। यह प्राणवायुका मार्ग है, अतएव इस मार्गको अत्यन्त बलवान और शुद्ध रखना चाहिये। श्वासोच्छ्वास की क्रिया नासिकाके द्वारा ही होती है। अतएव यह जीवनका मार्ग है। इसका व्यायाम "नेती क्रिया" है। एक फुट लम्बी सूतकी रस्सी बनाइये, जो न अत्यन्त मोटी और न अत्यन्त पतली हो। न अधिक मुलायम हो, न अत्यन्त करी हो। इस रस्सीका पिछला हिस्सा ८।६ अँगुलतक बिना बल दिया हुआ, खुला ही रखना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर यह नेती मोम लगाकर करी भी की जा सकती है। उत्तम पवित्र जलाशयके किनारे एकान्तमें यह क्रिया करनी चाहिये। बहता हुआ जल बहुत ही उत्तम होता है। घरमें भी विपुलजलसे अथवा नलके निकट यह क्रिया हो सकती है। नेतीके अग्रभागको नाकके छेदमें डालकर मुख मार्गसे निकालना चाहिये, ऐसा दोनों नासिका रन्ध्रोंसे कराना चाहिये। ८।१०

"मोचन नेत्र रोगाणा तन्द्रादीनां कपाटकम् ॥
यत्नतस्त्राटक गोप्यं यथा हाटक पेटकम् ॥"

यह नेत्र रोग तथा आलस्यको दूर करता है। इस त्राटक कर्मको स्वर्णकी सन्दूकके समान गुप्त रखना चाहिये।

कानोंका व्यायाम—वेद कहता है—

"शृणुयाम शरद. शतम्।"

अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त श्रवणशक्तिमें न्यूनता न आने पावे। इस लिये, कानोंके व्यायामकी भी आवश्यकता है। सबसे प्रथम सिद्धासन या पद्मासन बैठकर अपने मनकी सब शक्तियाँ कानोंमें प्रेरित कीजिये। उस समय सिवाय कानोंके दूसरी किसी भी इन्द्रियमें अपने मनको मत जाने दीजिये। मनको बिलकुल एकाग्र कर दीजिये। अब आप सूक्ष्म शब्द सुननेका प्रयत्न कीजिये। जो शब्द आपके कानोंमें मन्द मन्द आ रहा है, उसे स्पष्ट सुननेके लिये कानोंको उधर लगाइये। यदि आपके पास घडी है तो उसे दूरीपर रखकर उसका सूक्ष्म शब्द ध्यान पूर्वक सुननेका प्रयत्न कीजिये। प्रतिदिन घडीको कुछ दूर हटाते जाइये। ऐसा करनेसे आमरण आप बधिरतासे बचे रहेंगे। कानोंमेंके मलको निकालनेके लिये तिनका, नहरनी, दियासलाई, होल्डर, कील आदि कदापि मत डालिये। उस परमात्माने इसकी रचना ही ऐसे कौशलसे की है। जिसमें कोई मैल अन्दर नहीं रह सकता। आप ही आप बाहिर आ जाता है। खुजाल चले तो तिली, सरसों, या खोपरेका तेल

४।५ बूँद डालकर कुछ देर कानमें तेलको रखनेके लिये लेट जाना चाहिये। अकारण ही अस्पतालमें जाकर अपने कानोंमें पिचकारी लगवाना, धुलवाना, तथा ग्लीसरीन आदि पदार्थ डलवानेसे बधिरता हो जाती है। कानोंसे कभी कर्कश—कर्ण कटु शब्दोंको नहीं सुनना चाहिये। सदा सर्वदा "भद्रं कर्णेभि श्रृणुयामि।" का अनुयायी होना चाहिये।

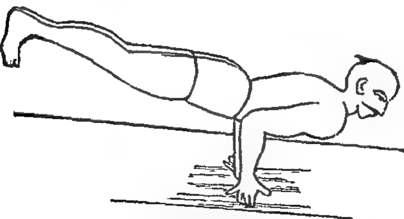
नाकका व्यायाम—नासिकाके द्वारा ही प्राण वायु इस शरीरमें पहुँचता है। यह प्राणवायुका मार्ग है, अतएव इस मार्गको अत्यन्त बलवान और शुद्ध रखना चाहिये। श्वासोच्छ्वास की क्रिया नासिकाके द्वारा ही होती है। अतएव यह जीवनका मार्ग है। इसका व्यायाम "नेती क्रिया" है। एक फुट लम्बी सूतकी रस्सी बनाइये, जो न अत्यन्त मोटी और न अत्यन्त पतली हो। न अधिक मुलायम हो, न अत्यन्त करी हो। इस रस्सीका पिछला हिस्सा ८।६ अँगुलतक बिना बल दिया हुआ, खुला ही रखना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर यह नेती मोम लगाकर कड़ी भी की जा सकती है। उत्तम पवित्र जलाशयके किनारे एकान्तमें यह क्रिया करनी चाहिये। बहता हुआ जल बहुत ही उत्तम होता है। घरमें भी विपुलजलसे अथवा नलके निकट यह क्रिया हो सकती है। नेतीके अग्रभागको नाकके छेदमें डालकर मुख मार्गसे निकालना चाहिये, ऐसा दोनों [illegible] कराना चाहिये। ८।६ दिनके प्रयत्नसे नेती [illegible] निकल आती है।

अभ्यास तब समझना चाहिये कि नासिकामें नेती युक्त नाकसे श्वास खींचा जावे और मुखसे त्यागा जावे। ऐसा करनेसे जब नेती मुखमार्गसे बिना हाथ लगावे बाहिर निकल आवे तब समझना चाहिये कि नेती क्रिया अच्छी प्रकार सिद्ध हो चुकी। नासिका द्वारा पानी पीना भी नाकका उत्तम व्यायाम है।

मुखका व्यायाम—दाँतोंका व्यायाम, वृक्ष शाखाके दातुनसे दाँतोंको खूब रगड कर साफ कर देना चाहिये, जिह्वाको दातुनकी दो फाँक करके, एकको बीचसे तोडकर जबानका मैल, घिसकर निकाल देना चाहिये। जिह्वाके नीचे तर्जनी अँगुलीसे रगड देना चाहिये। कण्ठमें दूरतक तर्जनी और मध्यमाको डालकर साफ कर डालना चाहिये। जिस प्रकार दीर्घायु चाहनेवालेको नाककी शुद्धि और व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार मुखकी शुद्धि और व्यायाम भी अत्यन्त ही जरूरी बात है। डाक्टर लोग केवल दाँतोंको ही शुद्ध करके पेटकी बडीसे बीमारी हटा देते हैं। हमारे मुखमें जबडोंके निकट कपोलोंमें प्रकृतिने लालोत्पादक ग्रन्थियाँ रखी हैं—इनमेंसे रातदिन लार पैदा होकर पेटमें जाती रहती है। यही लार हमारे पेटमें जाकर भोजनको पचाती रहती है। हमें इस बातका रातदिन विचार रखना चाहिये, कि पेटमें सदा शुद्ध निर्दोष लार जावे। अतएव दाँतोंको और मुखको सदैव शुद्ध और दुर्गन्ध रहित रखना चाहिये, जो इस बातका ध्यान रखेगा,



उत्थित पद्मासन ।



मयूरासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८५)

इसी लिये इसे भुजङ्गासन कहते हैं। इससे पेटको भी लाभ होता है।

छातीके इन तीन आसनोंके अतिरिक्त और भी हैं, जिन्हें यहाँ लिखना केवल विषयको बढाना है और न हमें उनका अनुभव ही है। हाँ दण्डासन (दण्ड) भी छातीके लिये बड़ा ही लाभदायक आसन है। इसका वर्णन हम अपने व्यायाम प्रकरणमें कर आये हैं। दीवारके कोनेमें दोनों दीवारों पर हाथ टेक कर खडे खड दण्ड लगानेसे भी छातीका उत्तम व्यायाम होता है।

पेटके आसन।

(६) उत्थितपद्मासन—अच्छी प्रकार पद्मासन लगा कर अपने दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको फैलाकर या बिना फैलाये ही हथेलीको जमीनपर जमाइये। बादमें धीरे धीरे अपने शरीरको भूमिसे उठाकर कोहनियोंके ऊपर तक ले जाइये। स्मरण रहे गर्दन और छाती झुकने न पावें। कुछ समय तक इसी दशामें स्थित रहिये। देखिये चित्र उत्थितपद्मासन—

इस आसनमें दोनों हाथ बाहिर हैं। यदि दोनों हाथ जाँघ और पिंडरियोंके बीचमें रख कर उठा जावे तो कुक्कुटासन हो जाता है। यह पेटके लिये लाभप्रद होगा।

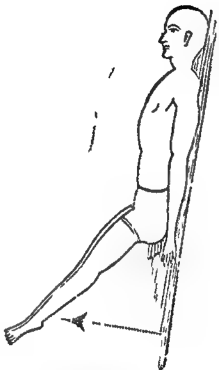
(७) मयूरासन—जिस प्रकार मोर नामक पक्षी चलता फिरता है, उसी प्रकार यह आसन लगानेसे इसका नाम मयूरासन है। पहिले अपनी दोनों हथेलियाँ भूमिपर अच्छी तरह

जमाइये, दोनों कोहनियाँ नाभिके आस-पास दोनों ओर लगाइये। अब अपने शरीरका समस्त भार हाथोंपर तोलिये। ऐसी दशामें कुछ देर ठहरिये। तत्पश्चात् छाती और मुखको थोड़ा आगेकी तरफ झुकाइये। इस समय पाँव आपोआप ऊपरको उठेंगे। उन्हें उठने दीजिये। बादमें पैरोंको नीचे और सिरको ऊँचा कीजिये। चित्र देखनेसे सहज हीमें समझा जा सकेगा।

(८) उत्तानपादासन—मुर्देकी तरह शिथिल गात्र होकर भूमिपर लेट जाइये। हथेलियाँ भूमिपर लगा दीजिये। अब धीरे धीरे पाँवोंको ऊपरको ओर उठाइये। जल्दी पैर ऊँचे कर देना सहज है, किन्तु इससे कोई लाभ न होगा। जब कि पाँव लगभग एक डेढ़ फुट ऊँचे हो जावें तब उन्हें वहीं स्थिर रखिये। जितनी देर रख सकें रखियेगा। जब उतारना हो तो धीरे धीरे ही भूमिपर उतारें। देखिये चित्र।

(९) उत्तान कूर्मासन—पद्मासन लगाकर बैठ जाइये। फिर पूर्व लिखित कुक्कुटासनकी भाँति हाथोंको जाँघों और पिण्डरियोंमेंसे निकालकर अपनी गर्दनको हाथकी कैंची फाँस कर पकड़ लीजिये। इसे कुछ लोग "गर्भासन" भी कहते हैं। देखिये चित्र—

(१०) सर्वाङ्गासन—भूमिपर चित्त सीधे लेट जाइये। दोनों हाथ बराबरमें (बगलोंमें) हथेली फैलाकर भूमिपर जमा देने चाहिये। अब अपनी दोनों टाँगोंको कर्रा करके बिलकुल सूधी रखते हुए, बहुत आहिस्ता आहिस्ता ऊपरको उठाइये और

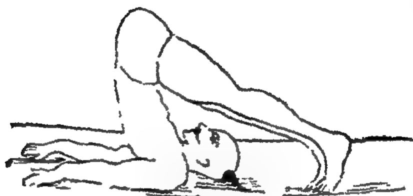


उत्तान पादासन।



उत्तान कूर्मासन।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८६)



सर्वाङ्गासन।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८६)



उन्हें अपने सिरके ऊपरसे ले जाकर भूमिपर टिका दीजिये। देखिये चित्र सर्वाङ्गासन। अब फिर पैरोंको भूमिसे उठाकर आहिस्ता-आहिस्ता वापस ले जाइये। जब जमीन एक हाथ भरके करीब रह जावे तब पाँव एकदम नीचेकी ओर गिरना चाहेंगे, इस समय बल पूर्वक पैरोंको सँभालकर बहुत धीरे धीरे ले जाकर भूमिपर रखना चाहिये। अभ्यास बढ़ जानेपर इसे भी शक्तिके अनुसार बढ़ा देना चाहिये। स्मरण रखिये, क्रिया करते समय हाथ, पीठ और मस्तक न उठने पावें।

इनके अतिरिक्त उदर सम्बन्धी और भी कई क्रियाएँ हैं। हाथोंकी कैंची बनाकर पेटको जोरसे दबाकर खड़े हो जाइये और फिर धीरे धीरे जितना अधिक हो सके झुकिये और पेटको अच्छी तरह दबाये रखिये। यह क्रिया भी पेटके लिये लाभप्रद है। सीधे खड़े रहकर पहिले दाहिना घुटना दाहिने वक्षस्थलको और फिर बायाँ घुटना बायें वक्षस्थलमें लगाइये। जब एक घुटना वक्षस्थलको लगे तब दूसरे पैरके बल भूमिपर खड़े रहना चाहिये। यह क्रिया उदरके लिये उपयोगी है। पद्मासन लगाकर बराबर उड्डियान करना पेटके लिये सबसे उत्तम व्यायाम है। उड्डियान क्रियाका वर्णन हम पीछे प्राणायाम प्रकरणमें कर आये हैं, पाठक वहाँ देख लें। पेटके इन आसनोंसे, जिनके पेट आगे बहुत लटक आये हैं, उनको भी लाभ होता है।

सीधे लेटकर हाथ पैरोंको शिथिल कर दीजिये, मानो उनमें जान ही नहीं है। बादमें कन्धेतक गर्दन उठाइये और दोनों

हाथोंसे पेटको खूब मसलिये, पश्चात् अँगुलियोंसे पेटके भीतर की आँतोंको जल्दी जल्दी पकडिये और इसके बाद मुट्ठी बाँधकर दोनों हाथोंसे पेटपर जल्दी जल्दी मुष्टि-प्रहार कीजिये। मुट्ठियाँ जोरसे नहीं मारनी चाहियें और न अत्यन्त धीरे-धीरे ही मारनी चाहियें। इस क्रियाको करते समय गर्दनको भूमिसे ऊपर अवश्य उठाये रखना चाहिये। चित्त लेटकर भूमिको हाथसे बिना छूए तथा पैरोंको जमीनसे लगाये हुए धीरे धीरे उठिये। अथवा हाथोंकी कैंची बनाकर गर्दनके नीचे लगाइये और बिना पैरो को उठाये उठ बैठिये। ये सब क्रियाएँ पेटको शुद्ध रखती हैं। अग्निमांद्य, नलोंका भरना, जलोदर, बदहजमी, तिल्ली, दस्त, संग्रहणी, अतीसार, वायगोला, यकृतकी सूजन ऐसी सैकडों बीमारियाँ नहीं होतीं और होनेपर इन क्रियाओ से हटाई जा सकती हैं।

पीठके आसन।

(११) जानुशिरासन—अपने बाएँ पाँवकी एडी मूल स्थानमें जोरसे जमाकर बैठ जाइये। दूसरा पैर सीधा करके दोनो हाथो की कैंची बनाकर, उसके पञ्जेको अच्छी तरह पकड लें। दोनो पाँवो को अच्छी तरह जमीनपर लगा देना चाहिये। अब धीरे-धीरे अपने सिरको अपने दाहिने पैरके घुटनेपर रखनेका प्रयत्न कीजिये। पहिले पहिल इस आसनके लगानेमें अत्यन्त कष्ट होता है, बादमें कुछ दिनके अभ्याससे अच्छी प्रकार लगाया

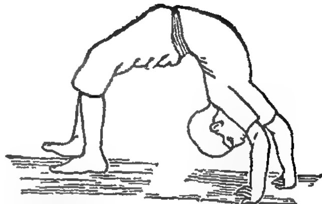


जानुशिरासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८८)



पश्चिमोत्तानासन ।



ऊर्ध्वधनुरासन ।

(देखिये—पृष्ठ सख्या १८६)

जा सकता है। इसका चित्र देखनेसे इसे आप अच्छी तरह समझ सकेंगे। यह जानुशिरासन टेबलपर भी खड़े रहकर लगाया जा सकता है। इसमें अन्तर इतना ही होता है, कि बायाँ पैर भूमिपर सीधा रहता है और दाहिना टेबलपर फैलाकर पीछे लिखे अनुसार क्रिया करनी पड़ती है।

(१२) पश्चिमोत्तानासन—दोनों पावों को बराबर रखते हुए पृथ्वीपर सीधे फैला देने चाहियें। पश्चात् दाहिने हाथसे दाहिने पैरका अँगूठा और बायेंसे बायें पैरका अँगूठा पकड़कर अपने सिरको दोनों घुटनोंपर रख दीजिये। आरम्भमें इस आसनके करनेमें बड़ा ही कष्ट होगा। परन्तु कुछ दिनके अभ्याससे यह अच्छी प्रकार होने लगता है। देखिये पश्चिमोत्तानासन का चित्र।

(१३) ऊर्ध्व धनुरासन—पीठकी तरफ धीरे धीरे झुककर दोनों हाथ जमीनपर जमा दीजिये। केवल हाथों और पैरोंके आसरे सारे शरीरको धनुषकी तरह गोल रखते हुए स्थिर रहिये। इसे ही ऊर्ध्व धनुरासन कहते हैं। देखिये चित्र। कुछ लोग इसे चक्रासन भी कहते हैं। अन्तर इतना ही है, कि चक्रासनमें हाथ और पैर दोनों मिल जाने चाहियें।

(१४) मत्स्यासन—बायें हाथसे दाहिनी भुजाको और दाहिने हाथसे बाईं भुजाको पकड़कर, तथा पद्मासन लगाकर भूमिपर चित्त लेट जाइये और बल पूर्वक जितनी हो सके उतनी कमर (पीठ) को ऊँची उठाये रहिये। देखिये चित्र मत्स्यासन।

इस आसनको विधिवत् पानीपर लगानेवाला व्यक्ति घण्टों जलमें पडा रहनेपर भी नहीं डूबता।

(१५) उष्ट्रासन—पृथ्वीपर औंधे लेटकर दोनों हाथोंको पीठके ऊपरसे ले जाकर दोनों पैरोंके टखनोंको हाथो से पकड कर अपनी ओर खींचिये। आगेसे जितनी हो सके, उतनी छाती उठाइये और पीछेसे जितनी हो सके, उतनी टाँगें उठाइये। इस प्रकार पेटके बलपर बहुत देरतक स्थित रहनेका प्रयत्न कीजिये। उष्ट्रासनका चित्र देखिये।

(१६) चतुष्पादासन—दोनो पावोंको बिलकुल करें करके सीधे खडे हो जाइये। बादमें बिना पैरोंको झुकाये हुए धीरे धीरे झुकते हुए, दोनों हथेलियोंको (पाँवोंके पंजोंके पास ही) भूमिपर रखकर स्थिर रहिये। इस समय दोनों हथेलियोंके बीचमें एक या सवा फुटका अन्तर रहना चाहिये। देखिये, चित्र चतुष्पादासन।

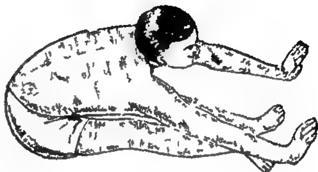
पीठके इन आसनोंसे, कटिशूल, मूत्राशय सम्बन्धी विकार और वीर्याशयके दोष दूर हो जाते हैं। जो कटिशूलसे दुखी हों और औषधो से उकता गये हों, उन्हें उक्त आसनों द्वारा अवश्य अपना दुःख दूर करना चाहिये।

हाथोंके आसन।

(१७) ताड़ासन—ताड वृक्षकी भाँति बिलकुल सीधे खडे हो जाइये। दीवारके साथ लगकर भी यह आसन किया जा सकता है। सिरका पिछला भाग, पीठ, नितम्ब,



उग्रासन।

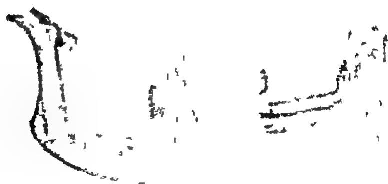


चतुष्पादासन।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १६०)



धनुरासन ।



पाँवकी एडी ये सब दीवारसे सटा दीजिये। अब एक हाथ ऊपरको बिलकुल तना हुआ सीधा कीजिये। यह हाथ पहिले एकके अंकके स्थानपर रखिये। बादमें २ के स्थानपर तत्पश्चात् ३ के स्थानपर और बादमें ४ के स्थानपर लाइये। इसी तरह अब दूसरे हाथका अभ्यास कीजिये। इसके बाद, दोनों हाथों से एक साथ कीजिये। हाथ खूब तने हुए रहने चाहियें और अभ्यास धीरे-धीरे करना चाहिये। यह आसन बहुत ही सरल है, किन्तु हाथों के लिये, बड़ा ही लाभप्रद है। श्वासोच्छ्वास गम्भीरतापूर्वक करना चाहिये, तथा मानसिक शक्तिको हाथों में स्थापित कर देना चाहिये। एक अवस्थामें २४ क्षण रहनेसे कोई लाभ नहीं होगा बल्कि २४ मिनिट तक रहनेसे ही लाभ होता है। इस चित्रको देखनेसे यह आसन शीघ्र ही समझमें आ जावेगा।

(१८) धनुरासन—दाहिने पैरको भूमिपर पर फैलाकर बैठ जाइये और उस पैरके अँगूठेको बाँयें हाथसे पकड़ लीजिये ये हाथ पैर तने रखिये। अब बायें पैरके अँगूठेको दाहिने हाथसे पकड़कर, बायें पैर और दाहिने हाथके नीचेसे निकालकर कान तक खींचिये। जिस प्रकार बल पूर्वक धनुष खींचकर निशाना बाँधा जाता है, उसी तरह बल पूर्वक तथा लक्ष्यपूर्वक यह आसन लगाना चाहिये। इस आसनका चित्र देखनेपर आप सहज हीमें समझ सकेंगे।

(१९) वृश्चिकासन—यह आसन अत्यन्त कठिन है। शीर्षासनकी तरह यह भी बहुत दिनोंमें सिद्ध होता है।

अभ्यासका यही ढग है, कि पहिले दोनों हाथोंको जमीनपर जमाकर उसपर अपने शरीरका वजन तौलनेका प्रयत्न कीजिये। कई दिनोंके अभ्याससे आप अपने हाथोंके बलपर अच्छी तरह खड़े हो सकेंगे। जब यह अभ्यास हो जावे, तब, जिस प्रकार पैरोंसे लोग चलते हैं, उसी प्रकार हाथोंपर चल सकते हैं। इसे साधारण बोलचालमें "मोरपञ्जा" कहते हैं। यह एक प्रकारका शीर्षासन ही कहा जा सकता है—अन्तर इतना ही है कि इसका सारा बोझा हाथोंपर ही होता है। देखिये चित्र। बहुत अभ्यास हो जानेसे पैरोंको अपने सिरपर रखकर इसे करना चाहिये।

(२०) त्रिकोणासन—पहिले पृथ्वीपर पैरोंमें २॥ या ३ फुटका अन्तर रखकर खड़े हो जाइये। अब दाहिने पैरको दाहिनी तरफ घुमाकर, चित्रके मुआफिक रखिये—बायेंको सीधा ही जमा रहने दीजिये। दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अँगूठेको स्पर्श कीजिये—इस समय दाहिना पाँव झुक जावेगा किन्तु ध्यान रखिये कि बायाँ पैर भूमिसे जरा भी न उठने पावे। अब बायें हाथको सिरपरसे ले जाकर बल पूर्वक तान दीजिये। इस समय त्रिकोणके रूपमें शरीर हो जावे। बस, यही बात ध्यानमें रखनेकी है। अब धीरे-धीरे सीधे खड़े हो जाइये और बादमें इसी आसनको दूसरी तरफ भी कीजिये। देखिये चित्र त्रिकोणासन।

इन आसनोंके अभ्याससे कन्धोंका दर्द, हाथोंका सुन्न पड़ना



गरुडासन ।



उत्कटासन ।



हनुमानासन ।

(देखिये—पृष्ट सख्या १६२)



पाठक हनुमानजीके आसनसे इस आसनका अनुमान लगा लें। देखिये चित्र "हनुमानासन"।

(२४) पादागुष्ठासन—बायें पैरकी एड़ी अपने मूल स्थानमें लगाकर पैरके पंजेके सहारे बैठ जाइये और दाहिने पैरको बायें पैरके घुटने पर रखकर बैठ जाइये। बादमें दोनों हाथोंको कटिपर रखकर जब तक हो सके बैठे रहिये। इस आसनके करनेमें पहिले पहिल बडी ही कठिनता होती है। बादमें अभ्यास हो जानेसे यह सरल हो जाता है। इसी तरह फिर दूसरे पैर पर यह आसन लगाना चाहिये। पादागुष्ठासनका चित्र देखकर इसकी क्रिया आपके ध्यानमें अच्छी तरह आ जावेगी।

(२५) वृक्षासन—एक टाँगके बल होकर दूसरी टाँगके तलुएको, जिस टागके बल पर खडे हों, उसके उरु स्थानमें रख कर खडा रहना ही वृक्षासन कहलाता है। देखिये चित्र वृक्षासन। कुछ लोग नीचे सिर ऊपर टाँगे रखकर हाथोंके बल सिर रहनेको भी वृक्षासन कहते हैं।

पैरोंके इन आसनोंके करनेसे पैर सबल रहते हैं, हड़फूटन, तलुओंकी जलन, कम्प, घुटनोंका दर्द, अकड़जाना इत्यादि रोग दूर हट जाते है ।

आसनोंको करते समय एक बात अत्यन्त आवश्यक है जिसे कदापि नहीं भूलना चाहिये ।

"पीठको सदैव सम-रेखामें रखना चाहिये।"

पाठक, शायद आश्चर्य करेंगे कि पीठसे और आसनोंसे

पाठक हनुमानजीके आसनसे इस आसनका अनुमान लगा लें। देखिये चित्र "हनुमानासन"।

(२४) पादागुष्ठासन—बायें पैरकी एडी अपने मूल स्थानमें लगाकर पैरके पंजेके सहारे बैठ जाइये और दाहिने पैरको बायें पैरके घुटने पर रखकर बैठ जाइये। बादमें दोनों हाथोंको कटिपर रखकर जब तक हो सके बैठे रहिये। इस आसनके करनेमें पहिले पहिल बडी ही कठिनता होती है। बादमें अभ्यास हो जानेसे यह सरल हो जाता है। इसी तरह फिर दूसरे पैर पर यह आसन लगाना चाहिये। पादागुष्ठासनका चित्र देखकर इसकी क्रिया आपके ध्यानमें अच्छी तरह आ जावेगी।

(२५) वृक्षासन—एक टाँगके बल होकर दूसरी टाँगके तलुएको, जिस टागके बल पर खडे हों, उसके उरु स्थानमें रख कर खड़ा रहना ही वृक्षासन कहलाता है। देखिये चित्र वृक्षासन। कुछ लोग नीचे सिर ऊपर टाँगे रखकर हाथोंके बल सिर रहनेको भी वृक्षासन कहते हैं।

पैरोंके इन आसनोंके करनेसे पैर सबल रहते हैं, हडफूटन, तलुओंकी जलन, कम्प, घुटनोंका दर्द, अकड़जाना इत्यादि रोग दूर हट जाते हैं।

आसनोंको करते समय एक बात अत्यन्त आवश्यक है जिसे कदापि नहीं भूलना चाहिये।

"पीठको सदैव सम रेखामे रखना चाहिये।"

पाठक, शायद आश्चर्य करेंगे कि पीठसे और आसनोंसे

पाठक हनुमानजीके आसनसे इस आसनका अनुमान लगा लें। देखिये चित्र "हनुमानासन"।

(२४) पादांगुष्ठासन—बायें पैरकी एडी अपने मूल स्थानमें लगाकर पैरके पंजेके सहारे बैठ जाइये और दाहिने पैरको बायें पैरके घुटने पर रखकर बैठ जाइये। बादमें दोनों हाथोंको कटिपर रखकर जब तक हो सके बैठे रहिये। इस आसनके करनेमें पहिले पहिल बड़ी ही कठिनता होती है। बादमें अभ्यास हो जानेसे यह सरल हो जाता है। इसी तरह फिर दूसरे पैर पर यह आसन लगाना चाहिये। पादांगुष्ठासनका चित्र देखकर इसकी क्रिया आपके ध्यानमें अच्छी तरह आ जावेगी।

(२५) वृक्षासन—एक टाँगके बल होकर दूसरी टाँगके तलुएको, जिस टागके बल पर खड़े हों, उसके उरु स्थानमें रखकर खड़ा रहना ही वृक्षासन कहलाता है। देखिये चित्र वृक्षासन। कुछ लोग नीचे सिर ऊपर टाँगें रखकर हाथोंके बल स्थिर रहनेको भी वृक्षासन कहते हैं।

पैरोंके इन आसनोंके करनेसे पैर सबल रहते हैं, हड़फूटन, तलुओंकी जलन, कम्प, घुटनोंका दर्द, अकड़जाना इत्यादि रोग दूर हट जाते हैं।

आसनोंको करते समय एक बात अत्यन्त आवश्यक है जिसे कदापि नहीं भूलना चाहिये।

"पीठको सदैव सम रेखामें रखना चाहिये।"

पाठक, शायद आश्चय करेंगे कि पीठसे और आसनोंसे

दीर्घायु



क्या सम्बन्ध है? इस विषयमें हमें अधिक विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि यह इस पुस्तकके लिये विषयांतर होगा। इतना ही हम कह देना उचित समझते हैं कि पीठकी रीढ़ हड्डी "जीवनका मुख्य स्तंभ है"। योगके प्रत्येक अनुष्ठानका इस मणिस्तभके साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। इस रीढ़की हड्डीसे ही सब ज्ञान तन्तुओंका जाल शरीरमें फैला है। पीठमें टेढ़ापन रखनेवाले मनुष्यके ज्ञानतन्तु हड्डियोंके दबावके कारण क्षीण हो जाते हैं और विविध रोग होकर मनुष्य अल्पायु हो जाता है। योगाभ्यासके समय ही नहीं बल्कि मनुष्यको रात-दिन इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि उसकी पीठ उठते बैठते, चलते फिरते, कभी भी न झुके, यह दीर्घायुका अत्यन्त गूढ़ मन्त्र है। जो लोग पीठ झुकाकर, गर्दन लटकाकर बैठते हैं, वे मानों रोगोंको निमन्त्रण देते हैं और मृत्युकी तरफ बढ़ते हे। योगशास्त्रका नियम है, कि शरीर गला और सिर समसूत्रमें रखना चाहिये! इस सीधे रहनेका मतलब कमरकी हड्डीको सख्त धरके चलनेसे नहीं है, बल्कि सरलता पूर्वक सीधी रखनेका अभ्यास करना चाहिये। दीवारके सहारे खड़े रहकर पीठको समरेखामें रखनेका तथा दो चार पुस्तकोंको मस्तक पर रखकर सिरको सीधा रखनेका अभ्यास कीजिये। ढीली चारपाईमें सोनेसे भी पृष्ठवश टेढ़ा हो जाता है। अतएव सख्त शय्यापर ही सोना चाहिये।

कई लोगोंका ऐसा खयाल है, कि ये आसन केवल योगा-

भ्यासी मनुष्योंके ही करनेके हैं—ऐसा मानना भूल है। बहुतसे भोले भाइयोंका ऐसा अनुमान है, कि योगके अनुष्ठानसे मनुष्य ऐहिक व्यवहारके लिये निकम्मा बन जाता है। यह अनुमान लोगोंको नीचे गिरानेवाला है। वास्तवमें देखा जावे तो योगका अनुष्ठान न करनेसे ही आज मनुष्य जाति निकम्मी हो गई है। योगाभ्याससे मनुष्यकी प्रत्येक शक्ति विकसित होती है। जैसे पुष्पके खिल जानेसे शोभा बढ़ती है, उसी तरह योगसाधनके अनुष्ठानसे मनुष्यकी सब आन्तरिक और बाह्य शक्तियाँ प्रफुल्लित हो जाती हैं और मनुष्यका पूर्ण विकास हो सकता है। शारीरिक, वैयक्तिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, कौटुम्बिक, गृह विषय, नागरिक, जातीय, प्रान्तीय, देशीय राष्ट्रीय, तथा राष्ट्रांतरीय सब प्रकारके व्यवहार उत्तम रीतिसे चलानेके लिये जिस योग्यताकी आवश्यकता होती है, वह निस्सन्देह योगाभ्याससे प्राप्त होती है। परन्तु सर्वसाधारणमें योग विषयक इतनी संकुचित कल्पनाएँ हैं, जिनके कारण मनुष्य दिन प्रतिदिन गिर रहा है और इतना होने पर भी योग साधनसे डरता है। जिन्हें दीर्घायु प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उन्हें योगाभ्यास आरम्भ कर देना चाहिये तथा अपने इष्ट मित्रोंमें भी योगसाधन करनेकी बुद्धि जागृत करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है।



वायु और प्रकाश

हम अपने पिछले प्रकरणमें अनेक वायुओंका जिक्र कर आये हैं। अब यहां हमारा प्राण, अपान, न, उदान और व्यान वायुसे प्रयोजन नहीं है। हमारा इस णमें इस विश्वमें बहनेवाले वायुसे ही सम्बन्ध है। ायोंके लिये तीन खुराकें मुख्य हैं। हवा, पानी और अन्न। तीनों खुराकोंमें यदि कोई अत्यन्त आवश्यक और सबसे ी खुराक है तो "हवा है"। अन्नके बिना (बिना कुछ) मनुष्य अधिकसे अधिक १०० दिन जीवित रह सकता लके बिना भी ऋतुके अनुसार मनुष्य १५ या २० दिन तक ा धारण कर सकता है किन्तु बिना हवाके तो मनुष्यका मिनटमें ही प्राणान्त हो जाता है। यह हवा जितनी आव- क है, उतनी ही वह अधिक है। हम हवाके समुद्रमें रहते जिस प्रकार मछली जलमें रहती है और बिना जलके कुछ टोंमें ही मर जाती है, उसी तरह हम हवाके सागरमें रहते -बिना हवाके हम भी इस लोकमें २।४ मिनिट ही हाथ हिला सकते हैं। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि हवा हमारी वीसे लगभग तीन या चार मील ही ऊँची है—आगे लोग अपनेको अन्नके कीड़े कहा करते हैं, किन्तु

देखा जावे तो हम हवाके कीडे हैं। हम हवाके सहारे ही अपना सब काम करते। एक मनुष्यके सिपुर्द हजारहा मन हवा है— यदि प्राणीके आसपासकी हवा किसी यन्त्र द्वारा एकदम हटाई जा सके तो वह प्राणी तत्काल पृथ्वीपर गिर पडेगा और फिर नहीं उठ सकेगा॥ अब आप हवाके महात्मको अच्छी तरह समझ गये होंगे।

हवा इतनी बहुमूल्य है, कि उसकी कीमत तक भी कूतना असम्भव है। इतनी बहुमूल्य वस्तु उस परम पिता परमात्माने अपने पुत्रोंको मुफतमें विपुलतासे सब जगहोंमें प्रदान की है— ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ पर वह न मिलती हो। परन्तु खेद कि हम इस अमृतका उपयोग करना नहीं जानते। यद्यपि हवा, मुक्ति और सब जगह मिलने वाली चीज है तथापि इस आधुनिक सुधारने हवाको भी महँगी बना दिया। जहाँ और और वस्तुओंने दुगुनी तिगुनी कीमत तक प्राप्त कर ली, वहाँ हवाका मुक्त रहना असम्भव साही था॥! इस जमानेमें हवाके लिये घर छोडकर सैकडों मील बोरिया बिस्तर बाँधकर जाना पडता है और वहाँ रहना पडता है। बम्बई वाले माथेरनमें जाकर, मालाबार हिलपर, रह कर ही, अच्छी हवा प्राप्त कर सकते हैं। इनवर वालोंको जब अच्छी हवाकी आवश्यकता पडे तब बेरियाके लिये बोरिया बिस्तर बाँधने पडते हैं। बडे ...रोंके ऊँचे बडे मकानोंमें बिजलीके पङ्खे चलाकर हवा ... जाती है। इस नवीन रोशनीने प्रकृतिके दिये मुक्त

पदार्थ वायुको भी कीमती बना दिया। तात्पर्य यह कि आज-कल यह कहना झूठ है, कि हवा मुफ्त मिलती है। अस्तु।

मनुष्यको यदि हवा न मिले तो उसके शरीरके रक्तका चलना बन्द हो जावे। रक्त फेफड़ोंमें हवाके द्वारा ही शुद्ध होता है और फिर सारे शरीरमें पहुँचता है। यह क्रिया रात-दिन सोते जागते होती रहती है—जब यह क्रिया बन्द हो जाती है, तभी मृत्यु हो जाती है। साराश यह कि हवा ही जीवन है। यह हमारा शरीर राष्ट्र है। इसका सम्राट् आत्मा है—यह "इन्द्र" है। इसके नौकरोंका नाम "इन्द्रिय" है। इस राष्ट्रमें मुख ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, ऊरू वैश्य है और पाँव शुद्र है। जब ये इन्द्र महाराज इस स्थूल शरीर पर राज्य करते हैं तब इनकी पदवी "राजा" होती है। जब सूक्ष्म शरीर पर आधिपत्य स्थापित करते हैं तब वे ही "महाराज" कहलाते हैं। जब कारण शरीर पर प्रभुत्वस्थापित कर लेते हैं, तब येही यही आत्माराम "सम्राट्" बन जाते हैं। जब महाकारण शरीरमें कार्य करनेमें यह आत्मा कृतकार्य होता है, तब इसीको "स्वराट् अथवा "विराट्" पद प्राप्त होता है। जीवात्माकी यही मुक्तावस्था है—इस समय यह स्वयम् प्रकाश बन जाता है। आँख, नाक, कान, आदि ज्ञानेन्द्रिय और हस्त पाद आदि कर्मेन्द्रिय इसके सेवक हैं, किन्तु ये वेतनिक सेवक हैं। जबतक इन्हें वेतन (अन्न जल आदि) मिलता रहेगा तभी तक ये कार्य करेंगे, जहाँ वेतन बन्द किया कि इन्होंने भी हड़ताल की। इन्हें कितना भी

वेतन महाराजा साहेब चुकाते रहें पर ये कभी तृप्त नहीं होते। जरा इनके विरुद्ध कोई कार्य हुआ कि इन्होंने हडताल आरम्भ की। मलमूत्र द्वारोंके रक्षक भी जरा सी बात पर रुष्ट होकर जब अपना काम छोड देते हैं तब, इन भङ्गियोंकी हडतालसे सारे राष्ट्र पर बडी ही आपत्ति आ जाती है। यदि इन वैतनिक सेवकोंके भरोसे ही यह राष्ट्र होता तो इसका कुछ भी गौरव नहीं होता। ये वेतन लेकर भी आराम बहुत करते हैं। इस राष्ट्रमें दो स्वयम् सेवक हैं, जब वैतनिक सेवक पडे हुए रहते हैं, तब भी ये स्वयम् सेवक अपनी सेवा करते रहते हैं। इनका नाम श्वास उच्छ्वास है। ये थकते नहीं, विश्राम नहीं लेते, और कभी अपना काम बन्द नहीं करते। जिस समय इनका कार्य बन्द होता है, उस समय यह सारा साम्राज्य टूट जाता है। इस आलङ्कारिक वर्णनका सारांश यह है कि "हवा ही इस जीवनके लिये, मुख्य, और अति आवश्यक वस्तु है।" क्योंकि बिना हवाके श्वास और उच्छ्वास नहीं हो सकते।

श्वास अर्थात् शुद्ध वायुको खींचकर शरीरमें ले जाना और उच्छ्वास अर्थात् उस ग्रहणकी हुई हवाके दूषित हो जानेपर उसे निकाल देना। इसी श्वासोच्छ्वासकी क्रियासे रक्त शुद्ध होता है। जो साँस बाहर निकलता है, वह विषयुक्त होता है। बडे बडे मेलोंमें अक्सर बीमारी हो जाती है—इसका यही होता है कि अधिक मनुष्योंके एकत्र हो जानेसे मण्डल दूषित हो जाता है और कोई न कोई भयङ्कर

बीमारी फूट निकलती है। एक कमरेमें आवश्यकतासे अधिक आदमी रहकर कभी दीर्घायु नहीं पा सकते। किसी उत्सव विशेषमें स्त्रियाँ एकत्र होती हैं और एक छोटेसे बन्द तथा तङ्ग कमरेमें बैठकर गीत गाती हैं, वहाँ वे अपने बच्चोंको भी ले जाती हैं। इन कोमल बालकोंपर इस दूषित वायुका शीघ्र ही असर होता है जिससे वे फौरन ही बीमार हो जाते हैं—इसीको हमारी भोली देवियाँ "नजर लगना" कहती हैं। तात्पर्य्य यह कि मनुष्यको यदि दीर्घायुकी इच्छा हो तो खुली और शुद्ध हवामें रहनेका हमेशा ध्यान रखना चाहिये। आपने देखा होगा कि आदमी जब पानीमें डूब जाता है तो थोड़ी देरमें ही वह मर जाता है। इसका कारण यही है, कि वहाँ उसे उसके साँस लेनेके लिये वायु नहीं मिल सकती और जो वायु निकली उसके स्थानमें पानी घुस गया। अगर मनुष्यको पाँच सात मिनट हवा न मिले तो वह मर जाता है।

भारतवर्षके मकानोंकी रचना प्राय ऐसी बेढंगी होती है कि उनके भीतर हवा, प्रकाश आदि घुस नहीं सकते। वास्तवमें मकान बनानेवालोंको वायु प्रकाश आदिके महत्वका पता ही नहीं है। घर क्या होता है, एक प्रकारसे तिजोरी होती है। चोरोंके भयसे अथवा अपनी स्त्रियोंको कोई दूसरा मनुष्य न देख ले, इस भयसे कहीं भी खिडकी, बारी, झरोखा, उजालदान, जङ्गला, गवाक्ष प्रभृति नहीं रखते। यदि किसी कारणसे कहीं खिडकी, उजालदान वगैर, रख भी दिया, तो उसे कपड़े

से यन्द कर देते हैं। हमारे बहुतसे मूर्ख भाई हवाको अप
शत्रु समझते हैं। जरा सी ठण्डी हवा चलनेपर उन्हें स
लग जानेका भय आ घेरता है। मूर्ख मा बाप अपने बच्चों
जरा हवाके शीतल होते ही घरके बाहिर हवामें घूमनेसे रोक
लगते हैं। दो चार गर्म कपड़े उन्हें पहिना देते हैं त
कानोंको रूमाल या गुलूबन्दसे बाँध देते हैं। यह बडी भा
गलती है। देखा गया है, कि मूर्ख मातापिता अपने सुकुम
छोटे बच्चोंको रजाईमें लपेट कर बड़े प्रेमसे अपने पास सु
लेते हैं—बहुधा इस प्रेमसे बच्चा मर जाता है। एक छोटे
कमरेमें कई आदमी घुसकर सो जाते हैं और उसे चारों ओर
बन्द कर लेते हैं। ऐसे मनुष्योंका मुख फीका और कान्तिही
रहता है तथा क्षयकी बीमारी भी उन्हें हो जाती है। जि
दीर्घायुकी इच्छा हो, उसे सदा खुली हवा आनेवाले स्था
जैसे बराडा, छत, चौक, आँगन, मैदान, खिड़की वाले मकानों
सोना चाहिये। सोते समय कपड़ेसे मुहँ और नाक न
ढाँकना चाहिये। कोई भी ऋतु हो खुली हवामें सोने तथ
खुले मुहँ सोनेसे नहीं डरना चाहिये। आवश्यकतानुसा
वस्त्र काममें लाना चाहिये।

हवा हमारी पहिली खुराक है—यह हमें सब जगह बिन
मागे मुफ्त मिलती है। ईश्वरने इसे ऐसा बनाया है, कि अत्य
न्तसे अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रसे भी यह आती जाती रहती है। ज
और अन्नको तलाश करना पड़ता है, परन्तु हवाकी तो ह

खोज करनेकी जरूरत ही नहीं पडती। यह सुलभ और सब जगह मिलनेवाली वस्तु है। हवाके विषयमें हमारी अत्यन्त असावधानी है। हमें इसके शुद्धा शुद्धकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। जल और अन्नकी शुद्धिका ध्यान हमें जितना होता है, उतना हवाका नहीं होता। जलको छानते हैं, अन्नको कचरा कूडा निकालकर साफ करते हैं, किन्तु हवाको साफ करनेका तथा शुद्ध वायुको ही ग्रहण करनेका ध्यान किसीको भी नहीं है। मतलब यह कि हवा आँखोंसे दिखाई नहीं देती, और अन्न जल मूर्त्तिमान वस्तुएँ हैं। हमलोग दूसरेके जूठे अन्नजलको नहीं खाते पीते किन्तु दूसरोंकी व्यय की हुई, हवाको हम बडे ही आनन्दसे ग्रहण करते हैं। एक मनुष्य भोजन करनेके पश्चात् यदि अपने खाये हुएको वापस निकाल दे—कै कर दे तो, लोग उससे घृणा करेंगे। उस कैको देख नहीं सकेंगे—उसे खाना तो दूर रहा!! लेकिन दूसरोंकी कै की हुई, हवाको हम सब लोग बिना किसी घृणाके ग्रहण करते रहते हैं! आरोग्य शास्त्र ऐसी वायुको कै किये हुए अन्न जलके समान ही बताता है—यदि एक मनुष्यके मुखसे निकला हुआ सास किसी तरकीबसे दूसरे मनुष्यके फेफडेमें प्रवेश कर दिया जावे तो दूसरे मनुष्यकी तत्काल ही मृत्यु हो जावेगी। इतना हलाहल होते हुए भी लोग उच्छ्वासको वडे ही निर्भय बनकर ग्रहण करते हैं। यही कारण हमारे अल्पायु होनेका है। जो लोग एक बन्द कोठरीमें या अपनी पत्नीके साथ एक रजाईमें घुसकर सोते हैं,

बात जरा अधिक ध्यानसे पढनी चाहिये। वे मूर्ख मा बाप जो अपने पुत्रोंको उनकी स्त्रियोंके साथ एक बिछौनेमें सोनेके लिये विवश करते हैं, जरा इसको ध्यानसे दुबारा पढें और सोचें कि, हम वास्तवमें इनके माता-पिता हैं, या अपने हाथों इन्हें जहर देकर मारनेवाले नृशंस कसाई हैं? धन्यवाद है, उस परम पिताको, जिसने हवामें ऐसे ऐसे पदार्थ रखे हैं, जो उच्छ्वासके बाहर आते ही दूसरी हवा उसे कुछ थोडा बहुत शुद्ध कर देती है, नहीं तो ये हमारे मा बाप तो अपनी अज्ञानतासे हमें कभीका मृत्युके मुखमें डाल देते !!

अब आप हमारी निर्बलता, अस्वस्थता और अल्पायुका कारण अच्छी प्रकार समझ चुके होंगे। फी सैंकडा ९९ खराब हवा ही बीमारीका कारण होती है। बहुतेरे छूतके रोग, क्षय, बुखार, हैजा, प्लेग आदि खराब हवाके कारण ही होते हैं। चर्मरोग, फोडे फुन्सी, दाद, खाज, कुष्ट, पाँव आदि दूषित वायुके कारण ही होते हैं। रोगोंको हटानेका सबसे प्रथम सहज उपाय यही है, कि शुद्ध वायु प्राप्त करनेका निरन्तर ध्यान रखा जावे। यह उपाय हजार वैद्य डाक्टरोंका एक ही वैद्य डाक्टर है। सब जानते हैं, कि क्षय रोग फेफड़ा सडनेसे ही होता है और फेफडा खराब हवासे सड जाता है। यदि एञ्जिनमें खराब कोयले भर दिये जावें, तो एञ्जिन खराब हो जाता है। वैसे ही यदि शरीरमें दूषित वायु भर दी जावे तो फेफडे बिगड जाते हैं। यही कारण है, कि चिकित्सक क्षयके रोगीको हमेशा खुली और

शुद्ध वायुमें रखता है। पहला उपचार यही होता है, दूसरे उपचार बादमें किये जाते हैं।

नाकके द्वारा ही हवा शरीरमें जाती है। यही नहीं, बल्कि हमारे रोम कूपों द्वारा भी हवा हमारे शरीरमें जाती आती रहती है। त्वचामें जो असख्य सूक्ष्म छिद्र हैं, ये सब हवा लेनेके लिये छिद्र हैं। इन्हें हमेशा साफ रखना चाहिये। क्योंकि यदि ये द्वार मैले हुए तो अत्यन्त शुद्ध हवा लेनेसे कुछ भी लाभ नहीं होगा—जब हवा मैले छिद्रों द्वारा शरीरमें प्रवेश करेगी तब वह फौरन मैली बन जावेगी। जिन्हें उत्तम स्वास्थ्यकी आवश्यकता हो, उन्हें चाहिये कि रोमकूपोंको स्वच्छ रखे और खुले रहने दे। शरीरको चिपकनेवाले और मोटे, अधिक वस्त्र पहिननेवाले मनुष्योंके रोम छिद्रोंसे वायु नहीं प्रवेश करता। इस विषयपर हम "वस्त्र प्रकरणमें अच्छी प्रकार खुलासा लिखेंगे।

हम लोग हवाको शुद्ध न करके उल्टा उसे दूषित करते रहते हैं। हमारे शरीरमें जाते समय वस्तु शुद्ध होती है, किन्तु जब वह निकलती है तब अपवित्र, गन्दी और दुर्गन्धयुक्त होती है। हमलोग, थूक, कफ, पसीना, उच्छ्वास, मलमूत्र आदि गन्दी वस्तु नित्य प्रति हमारे शरीरोंसे निकालकर वायुको दूषित करते रहते हैं। इन मलोंके त्यागनेका हमें कुछ भी ढग नहीं आता! हम देखते हैं, कि ये कुत्ते बिल्ली ही हमसे अच्छे जो मलोत्सर्ग करनेके पूर्व उस जगहको पञ्जोंसे खोदकर पाखाना जाते हैं और फिर उसको धूलसे ढाक देते हैं।

घरोंके पाखानोंको जाकर देखिये तो सौभाग्यसे ही फ़ी सैकडा एक स्वच्छ और शुद्ध मिलेगा! हमारे बहुतेरे भाई अपने घरके गन्देसे गन्दे पाखानेको बडा ही शुद्ध और पवित्र समझा करते हैं, क्योंकि उनके सिरमे उस बदबूने स्थान बना लिया है। यदि शुद्ध वायुका रहनेवाला या जङ्गलमें पाखाने जानेवाला व्यक्ति उनके उस पाखानेमें जिसे वे शुद्ध समझे बैठे हैं, पाखानेके लिये जावे, तो वह निस्सन्देह घबरा उठेगा। मतलब यह कि हमारे पाखाने, हमारे बाढे और हमारे पेशाब घर, हमेशा हवाको खराब करते रहते हैं। ऐसे बहुत ही कम मनुष्य होंगे, जिन्हें अपने घरमेंके पाखानोंकी गन्दगीसे अपनी भयङ्कर हानिका पता हो! आजकल सुधरे हुए ढगके पानीके नलवाले पाखाने भी बन गये हैं, किन्तु बहुत ही कम—कलकत्ता बम्बई जैसे नगरोंमें ही जहाँपर ये नये ढंगेके सुधरे हुए पाखाने हों, वहां तो जरूरत नहीं है लेकिन जहा ऐसे पाखाने न हों, वहा लोगोंको चाहिये कि अपने पाखानोंमें राख या सूखी मिट्टी रखा करें, जब मलोत्सर्ग कर चुकें तब उसपर राख या मिट्टी डालकर उसे ढाक दे। ऐसा करनेसे बदबू नहीं फैलेगी, हवा खराब न होगी। न ऐसे जानवर ही जैसे मक्खी, मच्छर आदि उस मैलेपर बैठकर हमें छू सकेंगे।

क्या आपने कभी इस विषय पर भी विचार किया है, कि बदबू क्या है? इसे हमारे शरीरमें कौन पहुँचाता है? हवा ही खुशबू और बदबूको यहासे वहा और वहाँ से यहाँ ले जाने-

वाली है। थोडी देरके लिये मान लीजिये कि दुर्गन्ध आ रही है तो आप समझ लीजिये कि किसी दुर्गन्धवाले पदार्थके छोटे छोटे परिमाणु हवामें उड रहे हैं। जो हमें दिखाई नहीं पडते। अब आप अपने नाकको कपडा लगाकर उसी हवाको ग्रहण कीजिये तो आप देखे गे कि दुर्गन्ध कुछ कम हो गई है—क्योंकि दुगन्धके बडे बडे परिमाणु, कपडेके कारण, बाहिर ही रह गये हैं और जो अत्यन्त छोटे छोटे थे, वे ही कपडेमेंसे छनकर भीतर घुस सके हैं। अब आप अच्छी तरह समझ गये होंगे कि बदबू क्या है? आप अपनेको इससे भविष्यमें बचाते रहिये। पाखानेकी बदबू यदि आपके नाकमें या मुहँमें जाती है तो समझ लीजिये, कि हम अप्रत्यक्ष रूपसे पाखानेको ही खा रहे हैं। साँस हमेशा नाकसे ही लेनी चाहिये। मुँहसे साँस लेना अत्यन्त ही हानिप्रद है। जो लोग मुहके रास्ते श्वासोछ्वासकी क्रिया करते हैं, वे कदापि बडी उम्र नहीं पा सकते। ईश्वरने साँस लेनेके लिये नाक ही बनाया है। इसमें उसने चलनी बनाई है जो हवाको छानकर शरीरमें आने देती है। अतएव सदा नाकसे ही श्वासोछ्वासकी क्रिया करनी चाहिये। पेशाब करते समय और पाखाना जाते समय बोलना इसी लिये मना है कि कहीं मुखके द्वारा बदबूके परिमाणु शरीरमें न घुस जावे। थूकना भी इसीलिये होता है, कि जो परिमाणु मुखमें घुस गये हों, बाहिर निकल जावे। जो लोग पाखानेमें बैठकर बीडी हुक्का आदि पीते हैं, तम्बाकू, पान वगैर खाते हैं,

इस विषयपर विचार करना चाहिये। हम लोगोंके भोजनमें यदि कोई मैला मिलाकर रख दे, तो हमें देखते ही घृणा उत्पन्न होगी और उलटी हो जावेगी, किन्तु हम मैलेकी बदबूसे भरी हुई हवाको साँसके साथ खाते रहते हैं। हमें हमारे पाखानोंकी मोरियोंको खूब ही शुद्ध रखना चाहिये। दर असलमें बात तो यह है कि इन गन्दे स्थानोंकी शुद्धिका कार्य हमने दूसरे लोगों-पर ही छोड़ रखा है। इसलिये अच्छी सफाई नहीं होने पाती। अगर हम अपने हाथों ही अपने पाखानोंको झाड़ बुहारकर साफ रखा करें तो सब शिकायतें दूर हो सकती हैं। लेकिन हम ऐसा करते हुए शरमाते हैं—घृणा करते हैं। सफाई रखनेके लिये अर्थात् घृणा हटानेके लिये घृणा नहीं करनी चाहिये बल्कि गन्दगीसे घृणा करनी चाहिये। मलको जमीनमें गड्ढा खोदकर एक दो फुट गहरा गड़वा देना चाहिये। जो लोग जङ्गलमें पाखाना जानेके अभ्यासी हैं, उन्हें मकानोंसे बहुत दूर जाना चाहिये। गाँवसे निकलकर चार कदम आगे ही पाखाना फिरना बहुत ही बुरा है। रास्तोंके आस पास ही पाखानेके लिये बैठ जाना लोगोंकी तन्दुरुस्तीके लिये बहुत ही नुकसान करता है—असभ्यता भी है।

जंगलमें भी पाखाना जानेके पहिले एक गड्ढा खोदकर उसमें मल त्यागना चाहिये और बादमें उसपर मिट्टी डालकर ढँक देना चाहिये। इसके कई कारण हैं (१) वायु दूषित न होने पावेगी (२) गौ आदि पवित्र पशु जिनका हम दूध पीते हैं

नहीं जाने पावेगे (३) उत्तम खाद, वैज्ञानिक लोग जिसे सुनहला खाद कहते हैं, तय्यार हो जावेगा (४) पानीमें बहकर नदी, पोखरों और तालाबोंमें नहीं जावेगा इत्यादि। मैलेको अधिक गहरा भी नहीं गडवाना चाहिये, क्योंकि पृथ्वीके भीतर वर्षाऋतुमें झरने बहते हैं। जहाँ जी चाहा वहीं पेशाब कर देना ठीक नहीं है। पेशाब घरोंमें ही पेशाब करना चाहिये, जहाँपर पेशाब घर न हों, वहाँ घरोंसे दूर सूखी जमीन पर पेशाब करना चाहिये और तुरन्त ही उसपर धूल डाल देनी चाहिये। एक जगह बारम्बार पेशाब नहीं करते रहना चाहिये। इन बातोंका ध्यान रखनेसे वायु शुद्ध रह सकता है।

बिना सोचे विचारे हर कहीं थूक देना बहुत ही बुरा है। बहुतसे गन्दे आदमी अच्छेसे अच्छे पवित्र स्थानका ध्यान नहीं रखते और थूक देते हैं। कई लोगोंके आँगन, घरोंके कोने और दीवारे गन्दी होती हैं—वे वहाँ थूकते रहते हैं। किवाडोंके पीछे थूक देते हैं। ऐसे लोगोंके घर नरक और रोगोंका घर समझना चाहिये। ये आदतें बहुत ही हानिकारक है। इस प्रकार थूकनेकी स्वतन्त्रतासे हवा गन्दी होती है। थूकमें रोगोत्पादक कीटाणु होते हैं। रोगीके थूकमें उस रोगके जन्तु अवश्य होते हैं। क्षय रोगवालेके थूकमें क्षयके कीटाणु होते हैं--मान लीजिये कि उसने दो चार जगह आम रास्तेमें थूक दिया। थोडी देर बाद वह सूर्य तापसे सूखकर धूलमें मिल

गया। वह धूल उडकर किसीके साँसमें चली गयी—बस उसे अवश्य क्षय हो जावेगा। इसी प्रकार अन्य रोगियोंके थूकके विषयमें भी समझना चाहिये। थूकनेकी हो आदत हो तो पीकदानी रखना चाहिये। जब आवश्यकता हो, उसमें थूक देना चाहिये और बादमें उस थूकको किसी गड्ढेमें गडवा देना चाहिये। ताकि वह हवाको गन्दी न कर सके। सूखी हुई भूमिपर जहाँ धूल हो, वहाँ पर थूकनेसे उसके द्वारा इतनी हानि होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

इसी प्रकार दूसरी सडी गली वस्तुएं, जैसे, अन्न, फल, शाक भाजी, इत्यादि इधर उधर फेंककर हवाको गन्दी नहीं बनाना चाहिये। थोडा सा कष्ट तो होगा, लेकिन लाभ बहुत होगा। यदि इन्हें एक गड्ढा खोदकर उसमें गाड दिया जावे तो समय पाकर यही उत्तम बढ़िया खाद तय्यार हो जावेगा। थोडासा ध्यान रखनेसे ही हम हवाको शुद्ध रख सकते हैं। बडे बडे शहरोंमें पाखाना जानेकी तथा कूडा कर्कट जलानेकी चिमनियां होती हैं, ये भी हवाको गन्दी करनेवाली हैं। आजकल हिन्दुओंके मुर्दे जलानेका ढङ्ग इतना बिगड गया है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। इस मुर्दे जलानेकी बिगडी हुई पद्धतिसे भी हवा बहुत गन्दी होती है। मुर्दा जलानेमें विपुल घृत और सुगन्धित पदार्थोंको भी प्रेतके साथ ही अग्निमें जलाना चाहिये। प्राचीन समयमें ऐसा ही किया जाता था। यदि वर्तमान निर्धनताका बहाना किया जावे तो वह

झूंठा है। जब कि हम देखते हैं, कि उसी मृतकके नामपर सैकडों और हजारों रुपये नुकते करनेमें और गया श्राद्ध करनेमें खर्च किये जाते हैं तो उसकी मिट्टीके साथ २० या २५ रुपयेके सुगन्धित पदार्थ लानेके लिये निर्धनताका बहाना करना बडा भारी पाप है। जहाँ विवाह शादियोंमें कर्जा देनेके लिये जातीय तथा पञ्चायती फंड खुले हुए हैं, वहाँ ऐसे कार्यों के लिये कर्जा देनेके फण्डोंकी स्थापना पहिले होनी चाहिये। अन्त्येष्टि संस्कारमें सुगन्धित पदार्थ न जलानेवाले तथा एकसेर तीनपाव घी ले जानेवालेको पञ्चायत द्वारा कुछ दण्ड विधान होना चाहिये। कितने खेद और दुःखकी बात है, कि मृत पुरुषके नाम पर नुकतेमें एक एक मनुष्य पक्वान्न मिठाई आदिमें जितना घृत खा जाता है, उतना घृत उसके अन्त्येष्टीमें नही लगाया जाता !! कितनी लज्जा की बात है।

तेल घास लेट (Kerosene oil) मिट्टीके तेलका प्रयोग खूब ही बढ गया है। आजसे दस पाँच वर्ष पूर्व लोग इससे बचते थे; किन्तु आज उन्हीं घरोंमें इसका साम्राज्य है। सम्राट्के गगनचुम्बी ऊँचे ऊँचे प्रासादोंसे लगाकर निर्जन वनमें एक गरीब आदमीकी झोंपडी तकमें भी यह तेल आज जलता हुआ दिखाई पडता है। अधिकांश लोग इसे २। ४ पैसेकी चिमनियोंमें जलाते हैं, जिनका धुआँ हवाको दूषित करता है। जहाँ तक हो इस तेलसे बचना चाहिये और यदि आप इसके आदी हो बन गये हैं तो ऐसे लेम्पोंमें इस तेलको

जलाइये, जिनसे कि धुआँ नहीं निकले। रातको धुआँ निकलने-वाली चिमनियोंको जलाकर, बन्द कमरेमें सोना अत्यन्त हानिकर है। घासलेटका धुआँ नाकमें और आँखोंमें न घुसने पावे। इस बातका ध्यान हमेशा रखना चाहिये। यह बडा ही जहरीला धुआँ होता है।

पत्थरका कोयला भी बडा ही बुरा पदार्थ है। जो लोग इसे जलानेके काममें लाते हैं, वे मानों अपने पैरों आप कुल्हाडी मारते हैं। कभी कभी देखा गया है, कि ठण्डके मौसिममें लोग पत्थरके कोयलेको गर्मीके लिये अपने कमरेमें जलाकर और कमरोंको बन्द करके सो गये—सुबह उसमें सोनेवाले लोग सभी मरे हुए पाये गये! पत्थरके कोयलेका धुआँ हवाको खराब करता है। यह कोयला रेलके एञ्जिनों तथा मिलों आदि कल कारखानोंके चलानेमें प्रयोग किया जाता है। बडे बडे नगरोंमें जहाँ कल कारखाने बहुत हैं, वहाँ सुबहके वक्त इस कोयलेके धुएँके बादल दूर दूर तक फैले हुए दिखाई देते हैं और काले काले धूम्रकण उस नगरपर बरसा करते हैं। यह वायुको दूषित करनेवाले हैं। यही कारण हैं कि नगरोंके रहने वालोंका स्वास्थ्य हमेशा खराब रहता है। आजकल हलवाई लोग मिठाइयाँ बनानेमें और बहुतसे गृहस्थ रोटियाँ पकानेमें इसे प्रयोग करके स्वास्थ्यको बर्बाद कर रहे हैं। दीर्घायु चाहने वालोंको इसकी हवासे बचना चाहिये।

हमारे देशमें तम्बाकूने भी अत्यन्त प्रचार पाया है। लाखों

मन हर महीने खप जाती है। इसका धुआँ भी बड़ा ही जहरीला होता है। नहीं पीनेवाले आदमीको इसकी दुर्गन्धसे ही कै हो जाती है—जी मचलाने लगता है। इसमें "नीकोटिन" नामक विष है। तमाखूके पानीकी ८।१० बूंद एक विषधर सर्पके मुखमें डाल देनेसे वह भी मर जाता है। चुरट, बीड़ी, सिगरेट, चिलम, हुक्का आदि हवाको गन्दी करते रहते हैं। सुल्फा गाँजा, चरस, चण्डू, मदिरा, आदि पदार्थ हमेशा हवाको दूषित कर देते हैं। दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तियोंको इन बुरे पदार्थोंके धुएँसे बचना चाहिये। स्वयम् तमाखू आदि नहीं पीना चाहिये, न ऐसे पदार्थोंके सेवन करने वालोंकी सङ्गतिमें बैठना चाहिये और न लोगोंको अपने घरमें दूसरोंको तमाखू पीकर हवा बिगाड़ने देना चाहिये। इस विषयमें लोगोंकी नाराजीका भय कदापि नहीं करना चाहिये। जरासे भयसे स्वास्थ्यको बड़ा भारी धक्का लगता है।

हवाको शुद्ध रखनेके लिये बहुतसी बातोंको आपही कर सकते हैं और बहुत सी बातोंमें सरकारी सहायताकी जरूरत पड़ेगी। उसके लिये हमें टाउनकमेटी (Town committee) और म्यूनीसिपेल्टी (Municipality) से सहायता लेनी चाहिये।

उसमें हमें ऐसे मेम्बर भेजने चाहिये जो झाड़ू लगवाने और रोशनी करानेके अलावा वायु शुद्धिका ज्ञान भी रखते हों। मोटी तोंदवालोंको, पैसेवालोंको, और खुशामदियोंको

(३) "न आयूषि प्रतारिषत्।" (May he prolong our days of life) वायु हम सबकी आयु दीर्घ बनावे।

(४) हे "वात ! न उत पिताऽसि।" (O vata ! thou art our protector) हे वायु ! तू हमारा रक्षक है।

(५) "उतभ्राता उत न सखा।" (Indeed thou art a brother and a friend) वास्तवमें तू हमारा भाई और मित्र है।

(६) "स न जीवातवे कृधि (So give us strength that we may live long) वह वायु हमें ऐसी शक्ति प्रदान करे कि जिससे हम दीर्घायु प्राप्त कर सकें।

(७) "यत् अद ते गृहे अमृतस्य निधि हित। तत न जीवसे देहि।" (O vata ! the store of immortality is there in thy home, give us there-of that we may live long) हे वायो ! तेरे घरमें ही अमरत्वका कोष है। उसमेंसे थोडा हमको प्रदान करो, जिससे हम दीर्घायु प्राप्त कर सकें।

वायुका महत्व वेदने किस उत्तम रीतिसे वर्णन किया है। इन मन्त्रोंकी भाषा भी अत्यन्त स्पष्ट है—किसी प्रकारका सन्देह ही नहीं। अमृतका समुद्र हमें हमारे पास ही उस परमात्माने प्रदान किया है। किन्तु खेद कि हमलोग अपना आयुष्य न बढ़ाकर दिन प्रति दिन उसे क्षीण कर रहे हैं। परम पिताके दिये अमृतोंको हमने विष बना डाला है। विष तुल्य औषधियोंपर

आपका जितना विश्वास है, उसका दशमांस भी यदि आप इस अमृतके समुद्रपर विश्वास रखे, तो आपको औषधियां तलाश करनेकी जरूरत न पड़ा करे। स्मरण रखिये, शुद्ध वायु ही "अमृत है" इसके उचित सेवनसे हमें दीर्घ आयु और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। अतएव, वायु सेवन द्वारा मनुष्यको अपना आयुष्य बढ़ाना चाहिये।

हम पीछे कह आये हैं, कि पर्वतोंपर वायु सेवन करनेसे भी आयुष्य वृद्धि होती है। इस विषयमें अथर्व वेदका निम्न मन्त्र ध्यानसे देखने योग्य है—

"अग्निर्मा गोप्ता, परिपातु विश्वत उद्यन्त्सुर्यौनुदता मृत्यु-पाशान्। व्युच्छतीरुपस पवता ध्रुवा सहस्त्रं प्राणा मय्या यतताम्।" १७।१।३०

अर्थ—अग्नि सब प्रकारसे मेरी रक्षा करे, उदय होनेवाला सूर्य मृत्युके पाशोंको दूर करे, उप काल और स्थिर पर्वत सहस्रों प्रकारसे मेरे अन्दर प्राणोंकी वृद्धि करे। पहाड़ोंके शुद्ध वायुसे दीर्घायु होता है। यह ध्वनि इस मन्त्रसे निकल रही है। यह बात अनुभवसे भी सिद्ध है, कि पहाडोंपर घूमने फिरनेवाले दीर्घ जीवी होते हैं। जिनको दीर्घायु चाहिये, उन्हें पहाड और पहाडियोंपर वायु सेवनके लिये नित्य प्रति जाना चाहिये।

अब यहाँ एक प्रश्न पैदा होता है कि जिन स्थानोंकी दशा गन्दी हो, वहाँकी हवा किस प्रकार शुद्ध रखी जा सकती है, ऐसे नगर जहाँके गटर, पाखाने, पेशाबघर, गलियाँ

दुर्गन्धि युक्त हैं, वहाँके रहनेवालोंको किस प्रकार हवा शुद्ध रखनी चाहिये ? सबसे पहला उपाय तो यह है, कि प्रयत्न करके उस गन्देपनको दूर करना चाहिये, बादमें सुगन्धित पदार्थ जलाकर हवाको शुद्ध करना चाहिये। वर्त्तमान समयमें गन्धक आदि पदार्थ जलाकर लोगोंने वायुको शुद्ध करना सीख लिया है। फिनायल डालकर पाखानों, मोरियों आदि गन्दे स्थानोंको पवित्र करना सीख गये हैं। किन्तु वास्तवमें यह कृत्रिम शुद्धि है। आजकलकी तरह जिस समय हवा गन्दी नहीं की जाती थी, उस प्राचीनकालमें हमारे पूर्वज नित्य सायं प्रात अग्नि होत्र द्वारा अपने अपने स्थानोंको शुद्ध रखा करते थे। यह इसीका फल था कि—

"प्रहृष्टो मुदितो लोकस्तुष्ट पुष्ट सुधार्मिक ।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभय वर्जित ॥
न चापि क्षुद्भयतत्र न तस्कर भय तथा ।
नगराणिच राष्ट्राणि धनधान्ययुतानिच ॥"

(वाल्मीकि रामायण)

कहींपर भी रोग, शोक, भय, दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, हैजा, प्लेग, इन्फ्ल्युएंजा, आदि रोग नहीं होता था और न कोई अकाल मृत्यु—अल्पायुमें मृत्यु ही पाता था। हवनकी प्रशंसा करना, सूर्यको दीपक दिखाना है। न यह हमारा विषय ही है कि हम उसको करनेकी विधिको यहाँ लिख दें। हाँ, हम इतना कहनेके ही अधिकारी है, कि हवनसे वायु शुद्ध होता है, रोग नहीं होते,

दीर्घायु होती है, बुद्धि बढती है, बल बढता है, धनैश्वर्योंकी वृद्धि होती है। कहाँतक गिनावें हवनमें असख्य गुण हैं। हमारे सैकडों वेदमन्त्र इस कर्मकी प्रशसा और गुणोंका वर्णन कर रहे हैं। हम दीर्घायुकी इच्छा रखनेवालोंसे, दिनमें दो वार नहीं तो एक वार अवश्य ही हवन करनेका अनुरोध करते हैं। कुछ दिनोंमें आपको स्वयम् इस कार्यके चमत्कारोंसे चकित होना पडेगा। जिस घरमें नित्य अग्निहोत्र होता है वहाँ, साँप, विच्छू आदि विषधर जन्तु, नहीं आने पाते। लोग जिन्हें भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, चुडेल, चौकी, ब्रह्मराक्षस, राक्षस, पितर देवता आदि नामोंसे पुकारते हैं, उनकी वाधा नहीं होने पाती। जहाँ आप इन उक्त भूत प्रेतोंका उपद्रव देखें, वहाँ सबसे पहिले शुद्ध वायु और शुद्ध प्रकाश आनेका प्रवन्ध कर देना चाहिये। यह भूत बाधा छू हो जायेगी। लोग अक्सर कहा करते हैं, कि अमुक घरमे भूत प्रेत रहते हैं और जो कोई उसमें आकर रहता है, उसे वह बाधा हो जाती है। यह विष युक्त वायुका ही खेल है—आप जरा बारीक नजरसे देखेंगे तो यह रहस्य आपकी समझमें आ जायेगा। इस पुस्तकके लेखक का स्वयम् अनुभव है, कि ऐसे ऐसे घरोंमें जहाँ रहनेवालेको भूतोंने सताया है, वह रहा है और यज्ञादि क्रिया द्वारा उस घरके दूषित वायुको शुद्ध कर आनन्द पूर्वक उस घरमें वर्षों निवास किया है।

हवाका और सूर्य प्रकाशका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है,

क्योंकि सूर्यका प्रकाश दुर्गन्धको भगानेवाला है। सूर्यके प्रकाशसे हवा शुद्ध रहती है।

"प्राणोवैवात"

यह बात ठीक है। किन्तु सूर्य किरणें भी हवासे कुछ कम महत्त्व नही रखती हैं। देखिये—

"एते वा उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मय ।"

"They the rays of sun are certainly purifying" सूर्यकी किरणे निस्सन्देह शुद्धि करनेवाली होती हैं। और देखिये।

"सूर्योहि नाष्ट्राणा रक्षसामप हन्ता।"

(For the sun is the repeller of the evil spirits the rakshasas) सूर्य ही विनाशक राक्षसोंका नाश करनेवाला है। यहाँ राक्षसोंका मतलब हमारे पुराण वर्णित राक्षसोंसे नहीं है—लम्बे चौडे दीघकाय डरावनी सूरत, भयावनी मूरत सींग पूँछवाले नहीं। यहाँपर विनाशक राक्षसोंसे रोग समूहोंसे मतलब है। सूर्य प्रकाशसे रोगोत्पादक जन्तु मर जाते हैं। देखिये सामवेदमें भी लिखा हुआ है कि—

"वेत्थाहि निर्ऋतीना वज्रहस्त परिवृजम्।
अहरहः शुन्ध्यु परिपदामिव !

हे सूर्य! तू प्रति दिन राक्षसोंके वर्जनको अवश्य जानता है। अर्थात् सूर्य राक्षसोंका विनाशक है। सूर्य दीर्घायु दाता —यह मन्त्र देखिये—

"तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे।
आदित्यास सुमहस कृणोतन।" (सामवेद)

अर्थ—परमात्मन्! सूर्य हमारे पुत्र और पौत्रके लिये जीवनार्थ दीर्घायु करें। यह मन्त्र स्पष्ट बता रहा है, कि सूर्य प्रकाश दीर्घ जीवनका दाता है। बिना सूर्य प्रकाशके मनुष्य दीर्घजीवी नहीं हो सकता। अन्धकार ही नरक है—नरकमें उजेला नहीं है, ऐसा आपने पुराणोंमें पढ़ा या सुना अवश्य होगा। आप किसी अन्धकारयुक्त स्थानमें घुस कर देख लीजिये। आपको वहाँ दुर्गन्ध आवेगी। अँधेरेमें हमें कुछ भी नहीं सूझता, इससे सिद्ध होता है, कि हम अँधेरेमें रहनेके लिये पैदा नहीं हुए हैं। हमें जितने अँधेरेकी आवश्यकता है, उतने ही अँधेरेवाली रात्रि उस परम पिताने आकाशमें तारे चाँद आदि प्रकाश युक्त पदार्थ स्थापितकर हमें प्रदान की है। जो मनुष्य अँधेरेमें अधिकांश रहते हैं, वे तेजोहीन और निर्बल होते हैं। देखिये सूर्य प्रकाश द्वारा कीटाणु मर जाते हैं। इस विषयमें वेदका प्रमाण है—

"उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तुरश्मिभि।
ये अन्त क्रिमयो गवि।" (अथर्व २।३२।१)

अर्थात्—सूर्य किरणोंसे छुपे हुए रोग जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं। अथर्व वेद द्वितीय काण्ड सूक्त बत्तीसवेंके सभी मन्त्र रोग जन्तुओंको नष्ट करनेका उपदेश कर रहे हैं। बहुतसे लोग यहाँ यह पूछेंगे कि क्या वेदमें जीवहिंसा करनेका उपदेश है इसका उत्तर यही है कि वैदिक अहिंसाधर्म अपना दूसरा

रूप रखता है। जैनधर्मकी भाँति श्वासोच्छ्वाससे, मलमूत्रके त्यागनेसे, खाने पीनेसे, बात बातमें जीवहिंसाकी हिंसा वेदमें नहीं है। क्योंकि वेदमें जड़वाद है ही नहीं। हानिकारक पदार्थोंको नष्ट करनेमें वैदिक धर्म हिंसा नहीं मानता। शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये कोई भी धर्म नहीं रोकता। जैनधर्म जो जीव हिंसाका विरोधी है, उसके मन्त्रका प्रथम वाक्य "णमो अरि हन्ताण" है, जिसका अर्थ ही यह है कि "शत्रुके मारनेवालेको नमन।" तात्पर्य यह कि रोगोत्पादक जन्तुओंके संहार करनेमें हिंसाका विचार नहीं करना चाहिये। देखिये, यह अथर्व वेदका मन्त्र यहाँ विचार करने योग्य है।

"ये क्रिमय' पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्त ।
ये अस्माक तन्वमाविविशु सर्वतद्धन्मि
जनिम क्रिमीणाम्॥" अथर्व २, ३१, ५

(ये) जो (क्रिमय) कीड़े (पर्वतेषु) पहाड़ोंमें (वनेषु) वनोंमें (ओषधीषु) औषधियोंमें (पशुषु) पशुओंमें (अप्सु) जलमें (अन्त) भीतर हैं। (ये) जो (अस्माकम्) हमारे (तन्वम्) शरीरमें (अविविशु) प्रविष्ट हो गये हैं (क्रिमीणाम्) कीड़ोंको (तत्) उस (सर्वम्) सब (जनिम) जन्मको (हन्मि) मैं नाश करूं। तात्पर्य यह है, कि मनुष्योंको हानिकारक कृमिकीटोंको जहाँ हो वहाँ नष्ट कर देना चाहिये। इसमें कोई पाप नहीं है। यदि हमारे इतने कथनपर भी आपके मनमें कोई शङ्का हो तो गीताका स्वाध्याय करनेसे हिंसाका सच्चा रूप, आप

प्रयत्न करेंगे, तो समझ सकेंगे। कीड़े दो प्रकारके होते हैं एक दृश्य, दूसरे अदृश्य। देखिये वेद दोनों प्रकारके रोग जन्तुओंको मारनेकी आज्ञा देता है।

"दृष्टमदृष्टमतृहम्।"

कीड़े कई प्रकारके होते हैं, इसका वर्णन भी वेदमें विस्तार पूर्वक है, हम भी यहाँ नमूनेके रूपमें कुछ मन्त्र लिखते हैं—

"अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्ष भवाअधि॥
नीलग्रीवाः शितिकंठा शर्वाअध क्षमाचराः॥३॥
नीलग्रीवा शितिकण्ठा दिवरुद्रा उपश्रिता॥४॥
ये वृक्षेषु सस्पिंजरा, नीलग्रीवा विलोहिता॥५॥
ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतोजनान्॥ ६॥

यजुर्वेद

इन मन्त्रोंकी विस्तृत व्याख्या करनेसे पुस्तकके आकार वृद्धिका भय है। हमने केवल पाठकोंको यहाँ दिग्दर्शनमात्र कराया है। इन सब तरहके कीड़ोंको सूर्यकी किरणें नष्ट कर डालती हैं अतएव प्रकाशका निरन्तर ध्यान करना चाहिये। इधरसे उधर हवा आजादीके साथ आ जा सके। ऐसे मकान बनवानेका ध्यान रखते समय इस बातका ध्यान भी जरुर रखना चाहिये, कि सूर्य किरणें भी अच्छी तरह घरमें घुस सकें। बहुतसे सूर्य किरणोंसे डरते हैं। किन्तु यह उनकी भूल है। सूर्य किरणें आरोग्यता, दीर्घायु और पुष्टिकी देनेवाली हैं। अपने शरीरको सूर्य प्रकाशमें नित्य कुछ समय अवश्य

चाहिये। ओढने बिछानेके वस्त्रोंको धूपमें डालकर उनके अदृश्य
रोग जन्तुओंको नष्ट करते रहना चाहिये। आजकल सूर्य
रश्मियों द्वारा विविध रोगोंका इलाज भी किया जाता है।
मनुष्यके सारे शरीरपर प्रकाश पहुँचाते हैं और सैकडों रोगी
रोगमुक्त हो जाते हैं। बहुतसे लोग यहाँ यह कहेंगे कि हवा
और प्रकाश रहित स्थानोंमें रहनेवाले मनुष्य भी हृष्ट पुष्ट रहते
हैं। यह संभव है किन्तु यदि वे लोग प्रकाश और वायु युक्त
स्थानोंमें रहने लग जावें तो और भी तन्दुरुस्त रह सकते हैं।
सारांश यह कि शुद्धवायु और शुद्ध प्रकाश ही दीर्घायुका देनेवाले
हैं। बिना इनके इस विश्वका एक भी प्राणी जीवित नहीं रह
सकता। जिस दिन ये न होंगे—वह प्रलयकाल होगा। प्रल-
यके समयमें प्रकाशका और वायुका अभाव हो जाता है।
पाठकोंको इस प्रकरणपर बहुत ध्यानसे विचारना चाहिये और
"पञ्चामृत" का पानकर अपनेको अमर बनाना चाहिये।

"शुद्धवायु" और "शुद्ध प्रकाश" इन दो अमृतोंका तो हम
यहाँ वर्णन कर चुके है अब शेष तीन अमृतोंका वर्णन आगे
चलकर करेंगे। आशा है हमारे पाठक नित्य, सर्वदा, इन
पञ्चामृतोंका विधिपूर्वक पान करके अवश्य दीर्घ जीवन प्राप्त
करेंगे। अब हम हमारी दूसरे नम्बरकी खुराक—तृतीय अमृत
"जल" पर विचार करेंगे।



जल.

जल और वायुका जोडा है। क्योंकि स्वास्थ्यरक्षाका अधिक भार इन्हींके ऊपर अवलम्बित है। इसी कारण सबसे पहिले लोग जलवायु अनुकूल है या नहीं, यह देखते हैं। जिस जगहका जलवायु दूषित है, वहाँ विविध पौष्टिक पदार्थोंको खा कर भी मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। जिस तरह वायुका ध्यान रखा जाना जरूरी है, उसी तरह जलकी शुद्धिका ध्यान रखना भी लाजिमी है। "आबोहवा" की पवित्रताका ध्यान मानव जातिही क्या प्राणी मात्रके लिये होना चाहिये। हवाके बाद अगर कोई खुराक है तो वह जल है। जिस प्रकार बिना हवाके मनुष्य कुछ मिनिटोंतक ही प्राण धारण कर सकता है, उसी प्रकार बिना पानीके कुछ दिनों ही देश और कालके अनुसार जीवित रह सकता है। हवाके अशुद्ध होनेसे अनेक बीमारियां हो जाती हैं। अगर पानी अशुद्ध प्रयोग किया तो भी बीमारियाँ हो जाती हैं। हवा तो आप शुद्ध लेते रहें परन्तु पानी गन्दा ही पीते रहें तो आप कदापि आरोग्य नहीं रह सकते, दीर्घायुषी नहीं हो सकते। हमारे देखनेमें आता है, कि लोग जिस तरह हवाकी तरफसे बेपरवाह हैं, उसी तरह जलकी तरफसे भी बेपरवाह बने हुए हैं। जिस तरह हवा

स्थानोंमें मिल सकती हैं, उसी प्रकार पानी भी सब जगह मिल जाता है; अन्तर है तो केवल इतना ही कि पानीके लिये कुछ प्रयत्न करना पड़ता है—हवाके लिये नहीं। पहाड़ी स्थानोंमें, रेतीले मैदानोंमें पानी जरा कठिनतासे प्राप्त होता है। मारवाड़ और अरबके सहारा प्रभृति रेतीले मैदानोंमें पानीका कोसों पता नहीं चलता।

नद नदी, नाले, झरने, पोखर, तालाव, कुप, बावली आदिसे हम लोग पानी प्राप्त करते हैं। जितने भी गीले पदार्थ हैं, उन सबमें थोड़ा बहुत पानीका अंश अवश्य रहता है। जिन स्थानोंमें पानी नहीं होता, वहाँके चूहे आदि क्षुद्र प्राणी वृक्ष शाखाओंका रस चूसकर पानीकी आवश्यकता पूर्ण करते हैं। फलोंमें जलका अंश अधिक होता है। यही कारण है, कि फलाहारी मनुष्यको तृषा बहुत कम लगती है। मनुष्यका शरीर यदि वजनदार है, तो केवल जलके ही कारण। हमारे शरीरमें प्रतिशत ७० भाग जल है। यदि हमारे शरीरका सारा जल निकाल लिया जावे तो कुल ७। ८ सेर वजन ही रह जावेगा। हमारी खुराकमें भी अन्नसे अधिक भाग जलका होता है। तात्पर्य यह कि जल जीवन दाता है-इसके सदुपयोगसे दीर्घायु और दुरुपयोगसे अल्पायु होता है। वेदका यह मन्त्र देखिये—

"इम मग्न आयुषे वचसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन्।
मातेवास्मा आदितेशर्मयच्छ विश्वेदेवा जरदष्टिर्यथासत् ॥

अथर्व २। २८। ५

उत्तम जलके सेवनसे वीर्य बढता है, और दीर्घायुष्य होता है। जलके द्वारा रोग समूह नष्ट होते हैं। यह परमौषधि है। देखिये—

"आप इद्दु वा उ भेषजीरापो अमीवचातनी ।
आपोविश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।"
अथर्व ६ । ६१ । ३

"जल औषधि है, जल पीडा नाशक है, जल भय निवारक है।" और देखिये—

"शनो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शयो रभिस्रवन्तुन ।" ऋ० १० । ६ । ४

"दिव्य जल हमें शान्ति, सहायता, देनेवाला और हमारी रक्षा करने वाला होवे। वह जल हमें शान्ति और रोगनाशक शक्ति प्रदान करे।"

"आपोहिष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जे दधातन
महेरणाय चक्षसे।" यजु० ११ । ५०

"जल अवश्यमेव सुख दाता है, वे हमें रसके लिये और बड़े रमणीय दर्शनके लिये धारण करें।

"योव शिव तमोरसस्तस्य भाजयते हन ।
उशीतीरिव मातर. ।" साम० उत्तरार्चिके

जलोंका जो अत्यन्त सुखदायी रस है, प्रभो! उस रसका हमें सेवन कराओ। जैसे पुत्रकी मङ्गल कामना करनेवाली माताएँ उन्हें दूध पिलाती हैं।"

"तस्माअरंगमाम वो यस्यक्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथाचन । यजु० ११ । ५२

"जल! जिस अशुद्धयादि पापके नाशार्थ तुम्हें हम ग्रहण करते हैं। उस अपवित्रताको नष्ट करो, हमें उत्पन्न करो और सन्तान आदिसे वृद्धि करो।

वेदोंके प्रमाण जलकी प्रशंसामें इतने ही बस हैं। पानी एक अत्यन्त जरूरी पदार्थ है, किन्तु हम लोग उसकी सम्हाल नहीं करते। गन्दे और मैले जलका सेवन तो एक मामूलीसी बात है परन्तु ऐसे ऐसे मनुष्य भी (!!) हैं, जो बिना देखे पानी पी लेते हैं और उसमें बड़े बड़े जीवजन्तु जैसे, कनसला—कान खजूरा, बर्र, ततैया, छिपकली, चींटे, मकोड़े, मक्खी, मच्छर तक अपने पेटमें उतार जाते हैं!! इन्हें मनुष्य कहें या

मनुजीने शुद्ध जलके लिये भी छानकर पीनेका उपदेश दिया है। देखिये—

"दृष्टिपूत न्यसेत्पाद, वस्त्रपूत जलं पिबेत्।
सत्यपूता वदेद्वाच, मन पूत समाचरेत्।" अ० ६,४६,

आजकल तो जलकी शुद्धिका एक नया तरीका काममें लाया जाता है। ऊपर नीचे ४ मिट्टीके घड़े रखे जाते हैं। सबसे ऊपरवालेमें उबला हुआ पानी होता है, उसके नीचेमें की हंडीमें लकड़ीके कोयले, इसीके नीचकी मटकी बालूरेत और सबसे नीचेके घटपर कपड़ा मुँहको बाँध दिया जाता है। नीचेकी मटकीको छोड़कर बाकी ऊपरकी तीनों हाँडियोंमें

एक छोटा सा छेद कर दिया जाता है, जिनमेंसे एक एक बूंद पानी टपक कर नीचेको मटकीमें भर जाता है। इस प्रकार शुद्ध किये जलको पीते हैं—प्राय अंग्रेज लोग ऐसा ही जल पीते हैं। हमारे विचारसे जलको शुद्ध करनेके लिये सबसे पहिले पानीको उबालकर ठण्डा कर लेना चाहिये। बादमें दूसरे पात्रमें निथारकर, तीसरे बरतनमें कपड़ेसे छान कर भर देना चाहिये। इस प्रकार शोधित जलके सेवनसे स्वास्थ्य कभी खराब नहीं होता। जब कि मनुष्य बीमार हो तब तो इस प्रकार शुद्धि किया हुआ जल अवश्य ही पीनेके लिये देना चाहिये,—रोग शीघ्र ही हट जावेगा। जलको उबालनेसे उसमेंके समस्त रोग जन्तु नष्ट हो जाते हैं। उसमेंका कूडा कचरा नीचे बैठ जाता है। पानी हलका और शुद्ध हो जाता है।

हम लोग प्रायः कुओंका पानी पीते हैं लेकिन हम लोग उनकी सफाईका उतना ध्यान नहीं रखते। बहुतसे कूए पक्के नहीं बँधे होते—केवल गहरे गड्ढेसे होते हैं। पक्के बधे हुए कुओंमें अक्सर कबूतर आदि पक्षियोंके रहनेके लिये सूराख बनवा कर अपनी धर्म शूरताका परिचय दिया जाता है। वास्तवमें देखा जावे तो यह पाप है। पक्षियोंके पङ्ख उनकी, बीठ उनके अण्डे, बच्चे, घोंसला बनानेके लिये लाये हुए तिनके घासफूस उस कूएमें गिरकर उसे गन्दा करते रहते हैं। ऐसे कुओंका पानी नहीं पीना चाहिये। कबरस्तानके पासके कुए, अथवा जिन

कूओंमे गन्दा मैला पानी आता हो, उनका पानी स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त हानिकारक है। जिस कूएके पानीमे पत्ते आदि पड जानेसे या कीचड आदिको सफाई न होनेसे बदबू आने लग जावे, जिसमें कीडे पड गये हो—कोई प्राणी उसमें मर गया हो, ऐसे कूओंका पानी नहीं पीना चाहिये। पीनेके लिये पानी जिन कूओंमे लिया जाना हो, उनमें मिट्टी या राखसे लिपटे हुए पात्र, अथवा गन्दे पात्र नहीं डालने देना चाहिये। उनमें स्नान करते समय मैले छीटें न जाने पावें। इस बातका भी ध्यान रखना आवश्यक है। जिन कूओंसे पीनेके लिये पानी लिया जावे, उनके पनघटको भाड बुहारकर अत्यन्त शुद्ध रखना चाहिये। वहाँ मिट्टी या राख डाल देना, थूकना तथा और किसी प्रकारका कचरा वगैर फैलाना बुरी बात है। जिन कूओ में पत्ते आदि कचरा कुडा गिरता हो और जिसके जलको सूर्य प्रकाश नहीं लगता हो, ऐसे कूओंका जल अच्छा नही होता। जिस जलमें दाल प्रभृति अन्न न गले। बेस्वाद चिकनाई युक्त, खारे और बदरङ्ग जलको कदापि नहीं पीना चाहिये। जो जल हलका और स्वादुमें मिष्ट हो, सुगन्धियुक्त और शीतल हो, उसे ही पीना चाहिये। कई दिनका बासी पानी और वर्षाका पानी नही पीना चाहिये।

पानीका दूसरा साधन बावली है। बहुतसे लोग बावली का पानी पीते हैं। जो कुछ भी बातें कूएँके विषयमें लिखी गई है, वे ही बावलीके विषयमें हैं। बावलियो में लोग नहाते

हैं, और अपने वस्त्र धोते हैं—इससे जल रोगोत्पादक हो जाता है। जब कि आदमी बावलीमें पानी पीने या भरनेके लिये उतरते हैं, तब उसमें हाथ मुँह नाक वगैर भी धोते हैं, इससे जल खराब हो जाता है। जिन बावलियों से पीनेके लिये पानी लिया जावे, उनमें हाथ पैर नहीं धोने चाहियें। अंधेरेमें यदि आप देखेंगे तो पानीके अन्दरका कचरा कूडा आपको दिखाई नहीं पडेगा। परन्तु यदि आप सूर्य प्रकाशमें—धूपमें, जलको ध्यानसे देखेंगे तो उसके अन्दरका कचरा कूडा साफ मालूम पड जावेगा। इसलिये पानीको पीनेके पहिले प्रकाशमें अवश्य देख लेना चाहिये।

ग्रामीण लोग, यदि उनके गाँवके पास ही तालाब हो तो कूपको छोडकर उसीका पानी पीनेके काममें लाते हैं। तालाबका पानी पीनेके लिये शायद ही कहीं उत्तम मिले। खास करके जो तालाब गाँवके निकट हैं, उनका पानी कदापि अच्छा नहीं कहा जा सकता। जिन्हें गन्दे और स्वच्छपानीकी पहिचान ही नहीं है, उनके लिये तो गन्दा पानी भी अच्छा ही दीख पडता है। हमने देखा है कि हरे रङ्गके पानीमें लोग स्नान करते हैं और उसे ही पीनेके काममें भी लाते हैं। एक स्वच्छ पानीको काममें लाने वाला मनुष्य उस हरे रङ्गके गन्दे पानीको देखकर घबरा उठता है किन्तु सैकडों लोग उसीको पीनेतकके काममें लाते देखे गये हैं। लोग तालाबोंमें अपने ढोरोंको स्नान कराते हैं। भैंस जैसे पानी पसन्द जानवर उसमें पडे रहते हैं।

उसीमें मलमूत्र त्यागते हैं। घोड़ोंको लोग जब तालाबमें स्नान कराते हैं, तो वे उसीमें पेशाब और लीद भी कर देते हैं। धोबी लोग तालाबोंमें कपड़े धोते हैं। कई गँवार मनुष्य जब उनमें स्नान करनेके लिये उतरते हैं, तब पानीमें ही मूत देते हैं। साराश यह, कि तालाबका पानी पीनेके लिये कदापि अच्छा नहीं हो सकता। हाँ, इसे उबालकर हमारी लिखी हुई क्रियाके अनुसार शुद्ध कर लिया जावे तो पीनेके योग्य बन सकता है। जो तालाब निर्जन स्थानोंमें हो और यदि उनका जल अत्यन्त निर्मल पारदर्शी हो, तो पीलेनेमें कोई हानि नहीं हो सकती। पोखरों और तलैयोंका पानी भी प्राय. अच्छा नहीं होता। जिस प्रकार मनुष्यको पीनेके लिये पानीका ध्यान रखना चाहिये, उसी प्रकार स्नानके लिये भी शुद्ध जलका ही प्रयोग करना चाहिये। शुद्ध जल पीकर और गन्दे पानीमें नहाकर मनुष्य कदापि स्वस्थ नहीं रह सकता।

तालाबोंके बाद नदियोंका और नालोंका नम्बर है। इनके विषयमें भी थोड़ा बहुत यहाँ विचार करना जरूरी है। नदियाँ बहती रहती हैं इसलिये अधिकतर उनका जल निर्म्मल होता है। परमात्माने गङ्गा, यमुना, सिन्धु, आदि बड़ी बड़ी नदियाँ हम भारतवासियोंको प्रदान करनेकी कृपा है। गङ्गा जैसी पवित्र सलिला नदी इस भूतल पर दूसरी कोई है ही नहीं। यह हिमालय जैसे भूतल पर्वतराजसे निकली है—यही कारण इसकी उत्तमताका है। यहाँ अथर्व वेदका निम्न मन्त्र देखिये—

"हिमवत प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह सङ्गम ।
आपोह मह्यं तद् दे वीर्ददन् हृदद्योत भेषजम् ॥" अथर्व ६।२४।१

"(आप) जलधाराएँ (हिमवन्त) बर्फोंले पहाड़से (प्रस्रवन्ति) बहती हैं (सिंधौ) समुद्रमें (सङ्गम) उनका सङ्गम है। (देवो) शुद्ध जलधाराएँ (ह) निश्चयपूर्वक (मह्यं) मुझे (तत्) वह (हृदद्योतभेषजम्) दिलके भय जीतनेवाला औषध (ददन्) देवे।"

तात्पर्य यह कि जो नदियाँ बरफके पहाड़ोंसे निकलती हैं, वे उत्तम जलवाली हैं और उनका जल ओषधिके समान होता है। ऐसा जल पान करनेवालोंका मनोबल भी बढ़ता है। हमारे पाठक पूर्वकालीन ऋषि मुनियोंका गङ्गा यमुना आदि नदियोंके किनारे रहकर जीवन बितानेका कारण इस वेद मन्त्रके अर्थसे अच्छी तरह समझ गये होंगे। उनकी दीर्घायुका एक कारण यह भी था, कि वे भागीरथीका जल प्रयोग करते थे। इस बर्फके वर्णनसे हमें भय है कि हमारे पाठक कहीं बाजारू बर्फ खरीद कर आरोग्य न बढ़ाने लग जावें। स्मरण रखिये बाजारू बर्फ स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है।

गङ्गा आदि नदियोंका जैसा महात्म्य हम ऊपर लिख आये हैं और पुराणादि ग्रन्थोंमें भी उसे स्वर्गदायिनी वर्णन किया है—अब वह गङ्गा नहीं रही है। वह गन्दी बना दी गई है—उसका अमृत तुल्य जल अब विष बना दिया गया है। कानपुर, आगरा, प्रयाग, काशी, गया आदि नगरोंका मलमूत्र इन ..

यमुना आदि पवित्र नदियोंमें, बड़े बड़े नलो द्वारा लाय
डाला गया है। इन गटर-पितामहोंके श्रोनको इन नदियों
गिरते देखकर चित्तको जितना दुःख होता है, उसका वर्ण
करना यहाँ असम्भव है। इनको देखनेसे यह मालूम होता
मानों कोई सहायक नदी या नाला गङ्गा यमुनामें आक
मिल रहा है। कितने खेद की बात है कि ३३ कोटि भारतवास
अपनी इन नदियोंको, सरकारसे प्रार्थना द्वारा, गन्दा होने
नहीं बचा सकते !! सरकार यदि चाहे तो इन गटरोंको जमी
पर छुड़वा सकती है—इससे एक बड़ा भारी लाभ यह होग
कि उत्तम खाद तय्यार हो सकेगा, जो खेतीके काममें आवेगा
ऐसा करनेसे हमारी नदियाँ पवित्र हो जावेंगी और हम फि
पहिले की भाँति शुद्ध जल प्राप्त करके उत्तम स्वास्थ्य औ
दीर्घायु पा सकेंगे। जिन नदियोंका जल देखनेमें पारदर्शी ह
बहता हुआ हो, कचरा कूड़ा न हो, जिसमें मलमूत्रकी मोरिय
आकर न गिरती हों, ऐसी नदीका जल पीनेमें कोई हानि नहीं
इनके अलावा एक बात और भी ध्यानमें रखने की है। भू
जिसपर नदी बहती हो, उसके गुणोंका और अवगुणोंका ज्ञा
भी होना चाहिये। रेतीले मैदानोंमें बहनेवाली नदियोंका ज
निस्सन्देह पवित्र, स्वास्थ्यप्रद होता है। ऐसे मैदानोंमें बह
वाली नदियोंका जल पीने वाले लोग पुष्ट और बलवान हो
हैं। गङ्गा यमुना तटवासी लोग इसी कारण मोटे ताजे औ

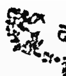
रेतमें मिलनेवाले पानीकी बहुत ही तारीफ की है। कई नदियोंका जल रोगोत्पादक भी होता है। नालोंके विषयमें भी नदियोंके अनुसार ही ध्यान रखना चाहिये। नदियोंमें स्नान करनेसे आयुष्यकी वृद्धि होती है।

नदियोंके बाद समुद्रके जलका नम्बर है। समुद्रका जल खारी होता है। इसे कोई पी भी नहीं सकता—क्योंकि यह इतना खारी होता है, कि स्वादमें कड़ुवा भी होता है। एक घूँट भी कण्ठके नीचे उतार जाना मुश्किल होता है। इसे कोई नहीं पीता। लोग इस पानीमें नहाते है किन्तु यह स्वास्थ्य-को हानि पहुंचाता है। नदियोंके किनारे कुछ लोग रेतीमें गड्ढे बनाकर पीनेके लिये पानी प्राप्त करते हैं—यह पानी स्वास्थ्यके लिये हितकर होता है। अब एक हमारा पानीका जरिया और है—यह आधुनिक सभ्यताका ढङ्ग है। वह नल है, उसमें पानी तो इनमें कुओं, नदियों और तालाबोंसे ही आता है किन्तु बीचमें टङ्की होती है अतएव थोड़ासा टङ्कीके विषयमें भी विचार होना चाहिये।

जलको शुद्ध रखनेके लिये सबसे पहले उस पात्रको शुद्ध रखनेका ध्यान भी होना चाहिये जिसमें, कि पानी रखा जाता हो। टङ्की भी एक प्रकारका विस्तृत पात्र ही है। उसके शुद्ध रखनेका बहुत ही ध्यान भी होना चाहिये जिसमें कि पानी रखा जाता हो। परन्तु देखा जाता है, कि इस विषयमें अत्यन्त ही बेपरवाही रखी जाती है। नलोंका पानी

लिये उतना उत्तम नहीं होता, जितना कि कूपका। टङ्कीसे जो नल जाते हैं, वे फिट (Fit) किये जानेके बाद कभी साफ नही किये जाते। इसके अतिरिक्त दो नलोंको मिलाकर कसते समय बीचमें चमडेका प्रयोग किया जाता है जो पानीको दूषित करता है। नल जंग लग जानेसे गल जाते हैं तब उनमें जमीनके भीतरसे गन्दा पानी भी थोडा बहुत मिल जाने लग जाता है। क्योंकि नल जमीनमें अधिक गहरे नही होते हैं और अक्सर गन्दे स्थानोंसे बचाकर उन्हें नहीं रखा जाता है—गटर, पाखानों, पेशाबघरों, और गन्दी मोरियोंमें होकर भी पानी पीनेके नल जाते हुए देखे गये हैं। गर्मीके मौसिममें कभी कभी नलसे इतना गर्म पानी आता है कि उसे हाथ लगाना तक कठिन हो जाता है—इस तरहके पानीसे स्वास्थ्य खराब हो जाता है। गर्मीके मौसिममें ऐसे गर्म पानी पीलेनेसे हैजा हो जाता है। ठण्डके मौसिममें नलोंसे इतना ठण्डा पानी मिलता है कि उसे हलकके नीचे उतारना कठिन हो जाता है। सबसे बडा भारी दोष तो यह है, कि यदि टङ्कीमें किसी रोगके उत्पादक जन्तु उत्पन्न हो जावें तो वह रोग एकदम सारे नगरमें फैल जावेगा। इसलिये टङ्कीके विषयमें बडी सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। इससे दूसरी बात यह भी सिद्ध होती है, कि हमें अपने जल भरनेके पात्रोंको अच्छी प्रकार धो मांजकर शुद्ध रखना चाहिये।

अधिकाश पानी दो कामोंमें हमारे काम आता है (१)



पीनेके और (२) शुद्धिके लिये—अर्थात् स्नानमें, ध
गन्दे पदार्थों की सफाई इत्यादिमें। हम पीने पानी
कैसे पानीकी आवश्यकता है यह लिख आये हैं, अब
विचारना है, कि शुद्धिके लिये उतने ही शुद्ध जलको ज
या कुछ कम शुद्ध हो तो भी काम चल सकता है?
अपने पाठकोंको जोर देकर कहेंगे कि शुद्धिके लिये भ
योग्य उत्तम जल ही काममें लाना चाहिये। बहुतेरे लोग
पानीमें नहाते हैं—इससे तन्दुरुस्ती तो बिगड़ ही जाती है,
ही आयुष्य भी क्षीण हो जाती है। जलको छानकर ही स्
करना चाहिये। अशुद्ध पानीमें वस्त्र, बर्तन आदि भी
धोने चाहियें। नहानेके लिये नदी, तालाब, बावली, कुव
क्रमश अच्छे हैं। बहुतेरे लोग घरमें गरम जलसे स्नान करते
हैं। यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त अहितकर है। जिन्हें दीर्घायुष्यकी
इच्छा हो उन्हें प्रत्येक ऋतुमें शीतल जलसे ही स्नान करना
चाहिये। स्नान किस समय और कितनी बार करना चाहिये
यह भी यहाँ बतलाना जरूरी है। स्नानका सबसे उत्तम समय
ात काल सूर्योदयके पूर्वका है—इससे बढकर दीर्घायु देनेवाला
रा कोई भी स्नानका उत्तम समय नहीं है। सूर्योदयके
ात् भी जितनी जल्दी स्नान कर लिया जावे उतना ही
न है। नित्य दोबार प्रात साय स्नान करना चाहिये।
ालको सूर्यास्तके पहिले स्नान कर लेना चाहिये।
दोबार स्नान करना असम्भ

वार मनुष्यको अवश्य ही स्नान कर लेना चाहिये। जो नित्य स्नान नहीं करते, वे पशु तुल्य माने जाने योग्य है। स्नानसे हमारा मतलब बदनको पानी चुपड लेनेसे नहीं है बल्कि शरीरकी मलशुद्धिमे है। स्पाजसे अथा मोटे किसी वस्त्रसे शरीरको खूब रगड कर धोना चाहिये—ऐसा स्नान ही दीर्घायुका देने वाला है। इस प्रकारके स्नानसे किसी प्रकारका चर्म रोग नहीं होता, शरीर कान्तिवान और पुष्ट हो जाता है। यह एक प्रकारकी जल चिकित्सा है।

पाखानेके बाद गुदा और लिंग दोनोंका शुद्ध जलसे तथा विपुल जलसे अच्छी तरह धोकर शुद्ध करना चाहिये। गन्दे पानीसे तथा थोडे पानीसे शुद्ध करने वालोंको बवासीर आदि विविध गुद रोग हो जाते हैं। हमारे शास्त्रकारोंने तो इन मल-द्वारोंको मिट्टी लगाकर धोनेका विधान किया है किन्तु खेद कि हम लोग अत्यन्त उपयोगी नियमोंको व्यर्थ ही मान बैठे हैं। देखिये मनु भगवान आज्ञा देते हैं—

एका लिंग गुदेतिस्त्रस्तथैकत्र करे दश।
उभयो सप्त दातव्या मृद्ु शुद्धिमभीप्सित॥" अ० ५। १३५

लिंगको एकबार, गुदाको ३ बार, बायें हाथमे १० बार और दोनो हाथोंमें ७ बार मिट्टी लगाकर जलसे शुद्धि करनी चाहिये। हमेशा उत्तम जलसे ही मिट्टी लगाकर मलद्वारोंको धोकर शुद्ध रखना चाहिये।

जल कैसा काममें लाना चाहिये। यह बात हम पीछे लिख

आये हैं। अब यह बतलाना आवश्यक है, कि जल किस प्रकार कर और कितना पीना चाहिये? सबसे पहिली बात तो यह है कि पानीके पीनेकी जरुरत ही नहीं है और न होनी ही चाहिये। हमारे शरीरमें ७० प्रतिशत भाग पानीका है। इसी तरह हमारी खुराकमें भी पानीका भाग अधिक परिणाममें होता है। ऐसा कोइ अन्न ही नहीं, जिसमें पानीका अंश न हो—इसके अलावा राँधनेमें बहुतसा पानी काममें लाते हैं। फिर भी पानी पीनेकी जरूरत क्यों होनी चाहिये? इसका उत्तर यही है कि हमलोग भोजनको ऐसा जान बूझकर तैयार कर लेते हैं कि पानीकी बारम्बार आवश्यकता पड़े। मिर्च, तेल, मसाले, नमक, खटाई आदि पदार्थ प्यासको बढ़ाते हैं—जो लोग केवल फल या मेवा इत्यादि खाते हैं, उन्हें अधिक प्यास सताती ही नहीं। अकारण ही मनुष्यको प्यास लगे तो समझ लेना चाहिये, कि वह रोगी है। पानी कब पीना चाहिये? इसका उत्तर यही है कि जब अच्छी प्यास लगे तभी पीना चाहिये? कितना पीना चाहिये? इसका भी सीधा उत्तर यही है कि प्यास बुझे इतना पीना चाहिये। भोजनके समय पानी पीनेके विषयमें बड़ा ही मतभेद है। कुछ लोगोंका कहना है कि भोजनके बीचमें जल पीना चाहिये। कुछ लोगोंका कहना है कि थोड़ा थोड़ा करके बीच बीचमें दो चार वक्त पीना चाहिये। कुछ कहते हैं कि अन्तमें पीना चाहिये और बहुतेरोंका मत है, कि बिलकुल पानी नहीं पीना चाहिये। देखिये चाणक्य कहते हैं

"अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णेवारियलप्रदम्।
भोजनेचामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम्॥"

अपचके लिये जल औषधि है, पचनेके पश्चात् जल बल दाता है, भोजनके समय जल अमृत है और भोजनके अन्तमें जल विषके समान है। हमारे विचारसे तो भोजन करते समय जलकी आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि हम उस समय भोजनके लिये बैठे हैं, न कि पानी पीनेके लिये। जब कि हम पानी पीनेके समय भोजन नहीं करते तो भोजनके समय पानी पीना भी व्यर्थ ही है। खुराकको गलेके नीचे उतारनेके लिये जल पीना, अपने स्वास्थ्यको नष्ट करना है। यदि आप खुराकको अच्छी तरह चबा लेंगे तो वह बिना पानीके आप ही आप गलेके नीचे उतर जायगी। वास्तवमें देखा जावे तो हम शरीरके लिये जल नहीं पीते हैं बल्कि अपनी खुराकके लिये पीते रहते हैं। कभी कभी हमारे भोजनमें हम ऐसी ऐसी वस्तुएँ भी खा जाते हैं कि जिनके लिये हम पानी पीते पीते पेटमें दुःख पैदा कर लेते हैं। हमें भोजन हमेशा ऐसा करना चाहिये जो सात्विक हो और तृषाको उत्पन्न न करे। पानी पीकर दौड़ना नहीं चाहिये और न दौड़कर आनेके बाद तुरन्त ही पानी पीलेना चाहिये। खड़े होकर या लेटकर जल नहीं पीना चाहिये पेशाब करनेके पूर्व जल पी लेना चाहिये—पेशाब करनेके पश्चात् जल पीना हानिकारक है। पसीनेमें जल नहीं पीना चाहिये। सोते समय जल पी लेना चाहिये। सूर्योदयसे दो घड़ी पूर्व

इच्छानुसार जल पीने वालेको कभी कोई रोग नहीं होने पाता। इस जलपानको "उप पान" कहते हैं। इसके असंख्य लाभ हैं—पाठक अनुभव द्वारा देख सकते हैं। नासिका द्वारा भी जलपान अत्यन्त हितकर और आरोग्य दाता है। प्रात काल ही नासिका द्वारा पानी पीनेसे दीर्घायु प्राप्त होता है।

बाजारु पेय कदापि नहीं पीने चाहियें—सोडा लेमन आदि पदार्थों को पानीकी जगह कदापि नहीं सेवन करना चाहिये। हलका सुस्वादु और निर्म्मल जल ही उपयोगी है। हलके पानीमें साबुनको मसलनेसे झाग पैदा होती हैं, और भारी पानीमें झाग नहीं उठती। यह हल्के और भारी पानी पहिचाननेकी सुगम रीति है। वर्षाका पानी अच्छा होता है, हल्का होता है। लेकिन (The First rain is poison) "आरम्भिक वर्षाका जल विष है" यह स्मरण रखना चाहिये। वर्षाका पानी यद्यपि शुद्ध होता है, तथापि उसमें गिरते गिरते कई पदार्थ मिल जानेके कारण वह कुछ दूषित हो जाता है। बहुतसे लोग ऐसे हैं, जिन्हें बुरा भला पानी पीनेसे कुछ भी नहीं होता! हमारे कई भाई इन्हें आदर्श मानकर पानीकी तरफसे बेपरवाही रखते हैं, उनसे यही प्रार्थना है, कि उक्त प्रकारके लोग यदि शुद्ध जलका प्रयोग करने लगें तो विशेष स्वस्थ और दीर्घायु हो सकते हैं। सारांश यह कि दीर्घायु चाहने वाले मनुष्यको उचित रीतिसे शुद्ध जलको ही काममें लाना चाहिये।

खुराक

पानीके बाद हमारी तीसरी खुराक अन्न है। जितने भी खेल इस विश्वमें हम देखते हैं, वह सब इस अन्नके लिये ही हो रहे हैं। पाप पुण्य, अच्छे बुरे काम सब इसीके लिये हो रहे हैं। इस पेट पापीको भरनेके लिये यह सारा खेल मानव-जाति खेल रही है। हवा और पानी भी खुराक है। इसे बहुत कम लोग जानते हैं, परन्तु सर्वसाधारण अन्नको ही अपनी खुराक समझते हैं। गेहूं, जौ, चना, बाजरी, मकई, ज्वारी, मूँग, उडद आदि अन्न कहलाते हैं। इनके खानेवाले अन्नाहारी कहलाते हैं। यह तीसरे दर्जेकी खुराक है। संसारके कई भागोंमे ऐसे लोग भी बसते हैं, जो केवल मास खाकर ही अन्नकी गरज पूरी करते हैं। बहुतसे लोग विष्ठा खाते हैं, उनका अन्न विष्ठा ही है। कुछ लोग दूध पीकर ही अपना निर्वाह करते हैं। उनका दूध ही अन्न है। कई फलाहारी हैं—ऐसे लोगोंका अनाज फल है। इस खुराक प्रकरणमें हमारा अन्न शब्दसे मतलब खाद्य पदार्थों से है।

हम खाद्य पदार्थोंपर कुछ लिखें, इसके पहिले हमें खाद्य विषयपर थोडा सा विवेचन कर लेना चाहिये। हमारा शरीर जिन पदार्थो से बना है और जिनसे शक्ति उत्पन्न होती है, वे समस्त पदार्थ भोजनमें मौजूद होते हैं। जो वस्तुएं हम खाते हैं,

अर्थात् जिनसे भोजन बनता है, उन्हें खाद्य पदार्थ कहते हैं। भोजनसे शरीरके लिये वृद्धि और जीवन प्राप्त होता है। खाद्यके मूल अवयव ५ हैं। ये समस्त वस्तुएँ शरीरमें पाई जाती हैं—

१—प्रोटीन

२—वसा (चिकनाई)

३—कर्बोज (Corbohydiates)

४—लवण

५—जल

खाद्य पदार्थोंमें उक्त अवयव एक ही परिमाणमें नहीं होते। किसीमें कोई कम और किसीमें कोई ज्याद होते हैं। साधारण मानसिक और शारीरिक श्रम करनेवालोंको, जिनका भार लग भग डेढ़ मनके हो, उन्हें मूल अवयव निम्नलिखित परिमाणमें खाने चाहियें।

प्रोटीन ७० से ८० माशे तक।

वसा—(चिकनाई) ८५ माशे।

कर्बोज—२२० से २५० माशे तक।

लवण और जल इनके परिमाणकी आवश्यकता नहीं है। प्रोटीन, वसा, और कर्बोज—इन तीनों अवयवोंमेंसे प्रोटीन अत्यन्त आवश्यक अवयव है। मांस प्रोटीनसे बनता है। अर्थात् जिस भोजनमें प्रोटीन कम होता है, उसे खानेवाले कदापि बल-वान नहीं हो सकते। जिस प्रकार प्रोटीन नामक अवयवकी शरीर वृद्धिके लिये आवश्यकता है, उसी तरह वसा और

जकी भी शरीरमें शक्ति उत्पन्न करनेके लिये अत्यन्त आवश्यकता है। यद्यपि प्रोटीन भी शरीरमें शक्ति उत्पन्न करता है तथापि वसा और कर्बोजके सदृश नहीं कर सकता। शीतऋतुमें शारीरिक गर्मी स्थिर रखनेके लिये, गर्मी पैदा करनेवाले पदार्थोंकी ग्रीष्मऋतुकी अपेक्षा अधिक आवश्यकता होती है।

वसा और कर्बोज एक दूसरेकी गरज पूरी कर सकते हैं। अर्थात् यदि भोजनमें वसा कम हो और कर्बोज अधिक हो तो भी काम चल सकता है—शरीरको कुछ हानि नहीं होगी और स्वास्थ्य भी नहीं बिगड़ेगा। इसी प्रकार कर्बोज कम हो और वसा अधिक हो तो भी काम चल जायगा। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये, कि वसा कर्बोजकी अपेक्षा देरमें पचनेवाला अवयव है। वसा उतनी नहीं खाई जा सकती, जितनी कि कर्बोज। गरीब मनुष्य जो घृत तैल आदि वसा नहीं खा सकते, उन्हें कर्बोज मिल जावे तो भी काम चल जावेगा। प्रोटीनका भोजनमें होना अत्यन्त आवश्यक है, विशेषत मनुष्यकी २५ वर्षकी उम्रतक। यदि मनुष्यको २५ वर्षकी अवस्था तक प्रोटीन कम मिले तो शरीरकी वृद्धि अच्छी नहीं हो सकती। जवान मनुष्यके भोजनमें ४०।४५ माशेसे कम प्रोटीन नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार वसा और कर्बोज एक दूसरेकी आवश्यकता पूरी कर सकते हैं, उसी तरह प्रोटीनकी गरज वसा और कर्बोज नहीं पूर्ण कर सकते।

इन तीन मुख्य अवयवोंके अतिरिक्त हमें जल और लवणकी

भी आवश्यकता है। अस्थियाँ बिना लवणके मजबूत नहीं बनतीं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि आवश्यकतानुसार प्रकृतिने प्रत्येक पदार्थमें लवण अवयव मिला रखा है। बाजारमें जो पदार्थ लवणके नामसे बिकते हैं, केवल उन्हें ही लवण नहीं मान बैठना चाहिये। ये शक्ति और जल शक्ति उत्पन्न करनेके काममें नहीं आते। अब यहाँ पर ऐसे कुछ कोष्ठक लिखते हैं, जिनसे कि सहजहीमें यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि किस पदार्थमें कितने परिणाममें कौन कौनसे मुख्य अवयव हैं —

साबूदाना —इसमें ८६'७ सैकडे कर्बोज होता है। प्रोटीन अंश मात्र होती है। शेष भाग जलका होता है।

अरारूट —इसमें ८२'०५ सैकडे कर्बोज होता है, शेष भाग जलका होता है। प्रोटीन और लवण नाम मात्रको होता है।

मक्खन —में प्रोटीन २ ०० वसा ८५ ०० लवण १ ०० और जल १२ ६५ होता है।

घृत —में वसा लगभग १ ०० सैकडे होता है।

दही —में प्रोटीन २० ०६ सैकड़े वसा २ ५ लवण १।१ और शेष भाग जल होता है।

मलाई—में प्रोटीन और खटिक सयोजित थोड़ी सी वसा होती है।

मसाले —मसालोंमें प्राय उड़नेवाले तेलका भाग अधिक होता है। इन्हीं कारणोंसे उनमें गन्ध आया करती है। तेलोंके अतिरिक्त इनमें विशेष अवयव भी होते है, जिनके कारण ये विशेष प्रकारका गुण और स्वाद रखते हैं।

अन्न।

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज	खनिज पदार्थ	जल
गेहूँ	११ ४७	२ ०४	७० ९०	३ १४	११ ८
जौ	८ ९२	१ ९०	७६ १०	२·३	१२ ३
मकई—मक्को	९ ५२	४ ४४	६८ २	३·७५	११ ५०
चावल	६ ६२	० ५०	८१·७	१·०४	११ ५
बाजरी	८·७२	४ ७६	७३·४०	१ ५-२ ०	११ १
ज्वारी,–जुआर	७ ६७	२ ७१	६७ २६	×	×
गेहूंका आटा					
छना हुआ	१० ७	१ १	७१ ४	० ६	
फूल मैदा	७ ९	१ ४	७६ ४	० ५	
चोकर (गेहूंकी)	१६ ४	३ ५	४३ ६	६ ०	१२ ५

दाल

नाम	प्रोटीन	वसा	कर्बोज
मूँग	२३ ६२	२ ६९	५३ ४५
मसूर	२५ ४०	३ ००	५५ ०३
चना	१९ ९१	४ ३७	५४ ०२
मटर	२२ ०१	१ ९६	५३ ०७
अरहर	२१ ७०	२ ५०	५४ ६
उडद	२२ ३३	१ ९५	५५ २२

इनमें १०—११ /. जल और ३—४ / कर्बोज होता है।

शाक, भाजी (तरकारी)

नाम	प्रोटीन	वसा	कर्बोज	खनिज	जल
बन्दगोभी (करम कल्ला)	१ ८	० ४	५'८	१'३	८९ ६
फूलगोभी	२ ०	० ४	४ ७	० ८	९० ७
टोमाटो	१ ३	० २	६ ०	० ७	९१ ९
खीरा (ककड़ी)	० ८	० २	२ ०	०'४	९५'९
आलू	२ ०	० २	१५ ९ २० ६	१ ०	७६ ८०
शलगम	१ २	० २	८ २	१ ०	८९'४
गाजर	० ५ १ १	० ५	१० १	०'९	८६'५
हरी मटर	४ ४	० ६	१६ १	० ९	७८ १
प्याज	१ ४	० ३	१० १	० ६	८७ ६
मूली	१ ३	० ०	१४ ५	१ ०	८२ ५
केला	१ ३	० ६	२०'०	० ८	७५ ३
बैंगन (भाटा)	० ८९	० ९४	३ ४८	० २६	९३'९८
भिण्डी	१ ९६	१ [illegible]	६ ७२	० ८	९० ४
मीठा कद्दू	० ९०	१ ०	३ ९६	० ७	९३ ४०

सूखे हुए फल—

नाम	प्रोटीन	वसा	कार्बोज	खनिज	जल
चेस्टनट ताजे	६६	८˙०	४५˙२	१˙७	३८˙५
चेस्टनट सूखे	१०१	१००	७१˙४	२७	५˙८
अखरोट	१५६	६२६	७४	१˙०	४˙३
बादाम मीठा	२४०	५४˙०	१००	३˙०	६˙०
पिश्ता	२१७	५१०	१४०	३३	७˙४
नारियल (गूदा)	५˙०	३५˙६	८˙४	×	४६˙६
गोल (सूखा)	६˙०	५७˙४	३१८	×	३.५
नारियलका दूध	०˙५	×	६०	×	१०३
मूँगफली	३१˙	५६	×	४०	१२˙०

फल वगैरहः ।

नाम	प्रोटीन	वसा	कर्बोज	लवण अम्ल	जल
सेव	० ४	० ५	१२ ५	१ ४	८२ ५
नाशपाती	० ४	०.६	११ ५	१ ४	८३ ६
आड़ू	० ५	० २	५ ८	१ ३	८८ ८
बेर	१ ०	×	१४ ८	१ ५	७८ ४
स्ट्राबेरी	१ ०	० ५	६.३	१.७	८६ १
रेस्पबेरी	१ ०	×	५.२	२ ०	८४ ४
शहतूत	० ३	×	११ ४	२.४	८४ ७
अंगूर	१ ०	१ ०	१५ ५	१ ०	७६ ०
खरबूजा (गूदा)	० ७	० ३	७ ६	० ३	८६ ८
तरबूज (गूदा)	० ३	०.१	६ ५	० २	९२ ६
नारंगी	० ६	० ६	८ ३	०.५	८६ ३
अनन्नास	० ४	० ३	६ ७	० ३	८६.३
अनार	१ ५	१ ६	१६.८	० ६	७६.८
अंजीर (ताजा)	१ ५	×	१८ १	० ६	७६ १
मुनक्का	१ ?	३ ०	६४ ४	२ २	२७ ६
किशमिश	२ ५	४ ७	७५.०	×	१४.०

दूध ।

प्राणी	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जल
यूरोपियन स्त्री	१·५	३ ५	७ ०	० २	८७·८०
बङ्गाली स्त्री	१ २	२ ८०	५·६०	० २४	८६·८६
गऊ	३ ५	४ ०	३ ५	०·७५	८७ २५
घोडो	२ ०	१·२०	५·६५	०·३६	९०·७९
गधी	२·२५	१ ६५	६ ००	०·५०	८६·६०
बकरी	४·३	४·७८	४·४६	० ७५	८५·७१
भैंस	६·११	७ ४५	४·१७	०·८७	८१·४०

बहुतसे लोग मास भोजी हैं, इसलिये हमें यहाँ विविध पशुओंके मासोंके मुख्य अवयवके विषयमें तथा अण्डोंके विषयमें भी लिखना आवश्यकीय था, किन्तु हम इस बातके अत्यन्त विरोधी हैं। हमारी धारणासे "मास मनुष्यका खाद्य पदार्थ नहीं है।" जब कि हम इसे मनुष्यका खाद्य ही नहीं मानते तो फिर इस विषयपर कोष्टक द्वारा समझाना व्यर्थ ही है, अतएव हम मास विषयक विवेचना न करके उसके विरोधमें यहाँ कुछ लिखेंगे और यह साबित करेंगे कि पशु पक्षियोंका मास खाना, मनुष्यका अत्यन्त निन्दनीय, घृणित और प्रकृति विरुद्ध कार्य है।

अधिकाश लोग आजकल मासको अपनी खुराक बना बैठे

हैं। मांस भोजियोंका कहना है कि "मांससे बढ़कर बलदायक दूसरा पदार्थ कदापि नहीं हो सकता।" यह बात सम्भवत किसी अंशमें ठीक हो तथापि मांस भोजनमें बुराइयाँ बहुत हैं, जिन्हें इसके खानेवाले बखूबी जानते हैं। हमारे महर्षियोंने कहा है कि —

"मांस भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांस मिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्व प्रवदन्ति मनीषिण।"

अर्थात्—यहाँ मैं जिसके मांसको खाता हूँ, वह परलोकमें मुझे भी खायगा। यही "मांस" शब्दका अर्थ मुनियोंने कहा है। देखिये वेद कहता है—

"अक्ष्यौ3 नि विध्य हृदय निविध्य जिह्वा निवृन्द्धि
प्रदितो मृणीहि। पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने
यविष्ठ प्रति त शृणीहि।" अथर्व ५।२९।४

(अक्ष्यौ) दोनों आँखे (निविध्य) छेद डाल (हृदयम्) हृदय (निवध्य) छेदडाल (जिह्वाम्) जीभ (निवृन्द्धि) काट डाल और (दत) दाँतोंको (प्रमृणीहि) तोडदे। (यतम) जिस किसी (पिशाच) मांसभोजी पिशाचने (अस्य) इसका (जघास) भक्षण किया है (यविष्ठ) हे महा बलवान् (अग्ने) विद्वान पुरुष (तम्) उसको (प्रति) प्रत्यक्ष (शृणीहि) टुकडे टुकडे करदे और देखिये —

"नकि देवा इनीमसि न क्यायोपयामसि।
मन्त्र श्रुत्य चरामसि।" सामवेद छ० अ० २ द० ७ म २

(देवा) हम उपासक लोग (नकि हनीमसि) हिंसा न करें (आ) सब ओरसे (नकि योपयामसि) किसीको अज्ञान युक्त न करे और (मन्त्रश्रुत्यम्) वेदोक्त कर्मोंको (चरामसि) अनुष्ठान करें। इत्यादि वेदमें बहुतसे मांस-भक्षण निषेधक मन्त्र हैं। अब हमें प्राकृतिक नियमों द्वारा भी इस विषयपर विचार करना चाहिये।

उस परमात्माने खुराक चबाने—खानेके लिये दाँत दिये हैं। आपने देखे होंगे कि मांस खाने और अन्न फलमूल घास आदि खानेके दाँतोंको उसने अलग अलग ढङ्गकी रचना की है। दाँतोंकी ही नहीं बल्कि प्राणियोंके मुखकी आकृति भी उसने पृथक पृथक ढङ्गकी रखी है। अगर आपने इस विषयपर आज-तक कोई विचार नहीं किया है तो अब विचारना जरूरी है। प्रकृतिने कुत्ते, बिल्ली, शेर, चीते, भेडिये, रीछ, आदि मांस भोजियोंके दाँत आगेके ऐसे नुकीले बनाये हैं, जिनसे कि वे अपना शिकार पकड सकते हैं और मांस चर्म अस्थि आदिको चीर फाड कर चबा सकते हैं। अब शाकाहारी प्राणियोंपर दृष्टि डालिये बन्दर, गौ, बैल, भैंस, घोडा, ऊँट, बकरी, मृग आदि पशुओंके दाँतोंकी रचना ठीक मनुष्यके दाँतोंके समान ही है। शाक भोजियों और मांस भोजियोंके दाँतोंकी रचना अलग अलग ढङ्गकी है। शाक भोजियोंके गाल जबड़े तक चिरे हुए नहीं होते, वे होंठसे चूसकर जल पीते हैं लेकिन मांस भोजियोंके गाल दूर तक चिरे हुए होते हैं—वे होंठसे चूसकर

पानी नहीं पी सकते। उन्हें जबानसे चाटकर पानी पीना पड़ता है। प्राकृतिक नियमोंके देखनेसे यह स्पष्ट हो गया कि मनुष्यकी खुराक मास कदापि नहीं है। ईश्वरने मनुष्यकी जठराग्निको मास पचाने योग्य नहीं बनाया है। जो लोग मास खाते हैं, उन्हें इस बातका अनुभव है कि मास बड़ी ही कठिनतासे हजम होता है। बालक कभी मास खाना पसन्द नहीं करेगा—उसे जबरदस्ती मास खाना सिखाया जाता है। जो भाई मास खाते हैं, उन्हें इस विषयपर अधिक ध्यान देना चाहिये।

मास मनुष्यकी खुराक नहीं है। इसे हम भारतवासी आर्य ही क्या बल्कि सभी समझदार व्यक्ति स्वीकार करते हैं। वैज्ञानिक लोग मास भोजन अत्यन्त बुरा तथा हानिकारक सिद्ध कर रहे हैं। सारा योरोप जो मास भोजी है, वह अब मासको बुरा बताने लगा है। अनेक लोगोंने मास न खानेकी प्रतिज्ञा कर ली है—शाक-भोजी बन गये हैं। हम यहाँ मास विषयक विद्वानोंके विचार पाठकोंके अवलोकनार्थ लिखते हैं।

1 India

Five persons suddenly died in Bombay after eating Beef—Bombay Chronicle, June 5, 1919

"The alarming increase of cases of sprue (at Igatpuri) is quite probably due to the abominable quality of our meat"—Times of India, July 11, 1921

2. England.

"The amount of human suffering which is caused by eating poisoned or diseased meat is positively distressing Almost every day one reads in the papers of sickness and death resulting from this unhealthy habit"

"When will the public apprehend the significance of the fact that it is the practice, **all over this country**, to send animals that are **afflicted with disease**, to the butcher to save them from dying of their maladies ?"—Herald of the Golden Age, London, December, 1903

3. America

"There were in the United States last year about 1,300 cases of acute ptomaine poisoning Nearly all were due to the **use of meats** Fully 3,000 of these died within 24 hours after the ingestion of the poison But while one dies of acute ptomaine poisoning, a thousand die of chronic ptomaine poisoning

Another reason why it is wise to dispense with meat as an article of food is because of the

prevaling **diseases among animals** It is safe to say **one half of the meat** that is sold in our markets is derived from animals that are more or less affected with some disese

"The meat eater is much more apt to **die of germ diseases** than the abstainer from meats" **Dr D. H Kress, M D** (Signs of the Times, October, 1918 journal of the International Tract Society, Lucknow)

4 Diseases from Flesh-eating

"There is clear evidence in medical practice of the part played by meat in causing **Dyspepsia, Enteritis** and **Appendicitis**, in favouring the outbreak of **Typhoid** and **Dysentery**, in forming the ground for the girms of **Tuberculosis** and **Cancer**"—Some popular Foodstuffs Exposed by **Dr, Paul Carton**

5, What to do ?

If butchers were to kill healthy animals only, they would have to suffer the loss of many thousands of pounds, they would be ruined and **their families wauld have to starve. So they will**

always kill as many diseased animals as possible for human food. The only remedy against the evil is that instead of expecting either the Butchers or the Meat Inspectors to become Angels, prudent and life loving flesh-eaters should resolve to become Vegetarians, thereby saving themselves and their dear ones from the risk of some day suddenly falling victims to some deadly disease such as cholera or consumption

6 Greatest Curse for Mankind

It has become a fashion in the world to prohibit Drink by law. But a study of the subject will convince any body that Flesh eating is the greatest curse for mankind

7, A Prayer.

I pray that the World's Rulers may kindly close Slaughter Houses (Hell Upon Earth) in their countries, and thereby earn the very great blessing of saving many human beings from Sudden Death, and many more from Consumption, Cholera, Cancer and other Deadly Diseases.

8, "Beef is stiff and hard of digestion, thickens

blood and generates matters which lead to melancholia, breeds cancer, leprosy, ring worm, itching, gout, pain in the thigh, interruption of menstruation, headache, bald head, hazy sight, sore in the month, swelling in the jaws, dullness, constipation etc, etc,"—Makhzan-ul-Adhia (Yunani Medical Book,)

9 "It (veal) is not, however, a food which should be regarded otherwise than as a luxury and the use of it should be much more limited than fashion now dictates."—Edward Smith M. D, L L. B. F. R. S

10 Medicinal virtues of the milk of the cow

"Milk is easily digestible, it generates sperma-genetale, builds up tissues and muscles, gives tone to the system, produces vigour in the mind and body, invigorates the brain, destroys the tendency to forgetfulness, garrulity, doubt and destruction of mind, cures constipation and sores in the lungs etc."—Makhzan-ul-Adhia

11 England

The connection between flesh eating and

prevalence of cancer is explained and demonstrated in 'The Blood guiltiness of Christendom' by Sir W. E Cooper, C. I E. to be had at the order of the Golden Age, 153, 154 Broughton Road, London S. W. B.

12. Literature

Vegetarian literature may be had from the Secretaries of (1) The Bombay Humanitarian League, 30J, Shroff Bazar, Bombay (2) The Vegetarian Society, Manchester, England (3) The Cow Preservation League, 171 A, Harrison Road, Calcutta (4) The All India Cow Conference Association, 10 Old Post Office Street, Calcutta (5) Cow Protection Society, 43 Banstolla Street, Calcutta

13 Dr Renner states that cancer occurs in Cierra Leone among the creols or descendants of liberated Africans, who have adopted the European manner of living and consume a large quantity of butcher's meat.

14 "Fourteen meat-eaters and eight vegtarians started for a 70 miles "walking match" All the

vegetarians reached the goal in splendid condition, the first covering the distance in fourteen and a quarter hours All hour after the last vegetarian came the first meateater and he was completely exhaustive He was also last meat eater, for all the rest had dropped off after 35 miles of endeavour" (Daily News, june 29, 1898, quoted by Prof Haig)

15 Dr Robert Bell M D writes—"I will go so far that of all systems, that of the vegetarian is the most rational and I can affirm that if it were universally adopted, there would be greater happiness and longer life than at present exists + + There is not the slightest doubt that upon a vegetarian diet the human frame can thrive most satisfactorily, and combat disease better than on animal diet"

जिस तरह मास मनुष्यकी खुराक नहीं है, उसी प्रकार वर्त्तमान अन्न खानेका ढङ्ग भी मनुष्यके लिये लाभप्रद नहीं है, ऐसा वहुतसे वैज्ञानिकोंका मत है। सम्भवत ऐसा लिखनेपर हमारे वहुतसे भाई हमारे इस कथनकी दिल्लगी उडावे गे या हमें मूर्ख ठहरावेंगे, क्योंकि अन्न खानेके लिये

आज हम सैंकडों पाप करते हैं और दुःख भोगते हैं। हमारे इस लिखनेका मतलब यह नहीं है कि मनुष्यकी खुराक अन्न नही है—बल्कि अन्न खानेका ढङ्ग बुरा है। आप इस बात पर यदि ध्यान देंगे तो आपको मालूम होगा कि ९९ फ़ी सैकडा मनुष्य केवल जिव्हाके स्वादके लिये अन्न खाते हैं। आप देखेंगे कि कम भूखमें भी लोग सुस्वादु पदार्थों पर भूखेकी तरह जम जाते हैं। सुस्वादु पदार्थोंको भूखसे भी अधिक ठूस जाते हैं! सुस्वादु पदार्थोंको खूब खानेके लिये पहिलेसे ही भाँग गाँजा आदि नशा खूब पी लेते हैं। मान लो कि कहींसे जीमनेका न्योता आ गया तो अधिक खानेके लिये एक बारका भोजन घरमें भी नहीं करते। खूब खानेके लिये जुलाब लेते हैं—पाचक चूर्णोंकी फाँकियाँ लेते हैं। फ्रूट साल्ट पीकर वमन कर देते हैं। पेट भर खाकर फिर एक दो दिनतक भोजन नहीं करते। सुस्वादु पदार्थोंको कभी कभी लोग इतने अधिक परिमाणमें खाते देखे गये हैं कि चौबीस घण्टेमें ही इस लोकसे विदा भी हो गये हैं!!! कितने दुःखका विषय है। एक अंग्रेज लेखकका कथन है कि—

"Don't live to eat but eat to live"

अर्थात्—खानेके लिये यह जीवन मत समझो, बल्कि जीवनके लिये खुराक खाओ। यह मनुष्य जीवन खानेके लिये नहीं है बल्कि अपने बनाने वालेको पहिचाननेके लिये है। यह पहिचान बिना शरीरके रहे नहीं हो सकती, और शरीर बिना

खुराकके नहीं रह सकता। अतएव मनुष्यको खुराककी जरूरत है। पशुपक्षियोंको देखिये, वे प्रकृतिकी आज्ञाको उलङ्घन करते दृष्टि नहीं आते। उन्हें जो कुछ भी मिलता है, उसे वैसा ही खा लेते हैं, पीसते, कूटते, छानते, पकाते नहीं हैं। यहाँ यदि कह दिया जावे कि वे अज्ञानी हैं और हाथ पाँव आदि साधन उनके पास नहीं हैं तो यह उत्तर किसी अशमें ठीक है। लेकिन तन्दुरुस्ती की दृष्टिसे उनका भोजन ठीक है। वे ठूँस ठूसकर नहीं खाते, जब भूख लगती है तभी खाते हैं और भूख मिट जावे उतना ही खाते हैं। वे स्वादके लिये प्रकृतिके नियमको नहीं तोडते। शायद आप यहाँ यह प्रश्न करेंगे कि उनको सुस्वादु खुराक ही नहीं मिलती! खावेंगे क्या? ऐसा कहना भूल है क्योंकि बादाम, पिस्ता, किशमिश, सेब, अँगूर, अनार, नासपाती, अखरोट, अञ्जीर, आम, अमरूद, आदि अति स्वादिष्ट पदार्थ जिनके लिये हमलोग तरसा करते हैं, उन्हें प्रकृतिने मुफ्तमें ही प्रदान किये हैं। वे अपनी खुराक नहीं राँधतें, बल्कि प्रकृति ही उनके लिये पका देती है। यह तो केवल मनुष्य जाति ही है, जो अपनी खुराकको प्रकृतिके पका चुकनेपर भी उसे पकाकर खाती है, और इस प्रकृतिके नियमको तोडनेके दण्ड रूपमें बीमारियाँ प्राप्त करती है। जिस प्रकार मनुष्योंमें अमीर तो दिनमें ४।५ बार भोजन करते हैं और गरीबोंको दिनमें एक बार भी रूखी सूखी रोटियाँ मुयस्सर नहीं होतीं, यह बात पशुपक्षियोंमें नहीं है। इस तरहका भेद मनुष्य

ही पाया जाता है। इतना होनेपर भी मनुष्य अपनेको पशु-पक्षियोंसे उत्तम और बुद्धिमान समझते हैं, यह कैसे आश्चर्य की बात है ॥

हमारी खुराकको हम स्वादुयुक्त बनाये बिना गलेके नीचे नहीं उतार सकते। आज ही अगर दालमें थोडासा भी नमक कम हो, या चटपटापन न हो, तो हम कम खावेंगे और यदि अन्य दिवसोंकी अपेक्षा कहीं अधिक स्वादु भोजन मिल गया तो अधिक खा जावेंगे। तात्पर्य्य यह है कि हम शरीर रक्षाके लिये अपनी खुराक नहीं खाते हैं बल्कि शरीरको नाश करनेके लिये खाते हैं। यदि आज ही हम अपनी खुराकको एकदम नमक मिर्च और मसाले रहित करदें तो एक दो ग्रास ही बडी कठिनतासे कण्ठके नीचे उतार सकेंगे। सारांश यह कि हम अपना भोजन स्वयम् ऐसा तय्यार कर लेते हैं जो कि जरूरतसे अधिक पेटमें पहुँच जावे और परिणाममें हमें रोगी बना दे। हमारी इस स्वादेन्द्रियकी स्वतन्त्रताके कारण ही हम असत्य भाषण, व्यभिचार, चोरी, ठगी, हिंसा आदि अनेक पाप करनेमें जरा भी नहीं सकुचाते! यदि हम अपनी स्वादेन्द्रियको अपने वशमें करलें तो हम अपनी शेष इन्द्रियोंको शीघ्र ही वशमें कर सकते हैं। यदि हम कोई बडा भारी पाप करते हैं तो वह सबसे पहिला यही है कि हम अपना भोजन सुस्वादु बनाकर खाते हैं—यही सब पापोंकी जड है। बहुतेरे नासमझ भाई जो इसके महत्वको नहीं समझते हमारे लिखने पर शायद हमें

गालियाँ भी दे, किन्तु यह मनन करने योग्य बात है, यह उन्हें नहीं भुला देनी चाहिये। हम चोर, व्यभिचारी, हिंसक, ठग, झूठे आदिको हो पापी समझते हैं और सुस्वादु पदार्थोंके खाने वालेको बडा ही अच्छा समझते हैं, जो सब पापोंकी जड है—यह कैसे आश्चर्य्यका विषय है? चोरी, व्यभिचार, झूठ, हिंसा आदिके विरोधमें कई ग्रन्थ लिखे गये हैं किन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया जो स्वादेन्द्रियके कारण होने वाले दोषोंका दिग्दर्शन कराने वाला हो। न जाने हमारे महापुरुषोंने केवल "मनुष्यको मिताहारी होना चाहिये।" इतना ही लिखकर इस विषयमें चुप्पी क्यों साध ली?

हमारे विचार कितने उलटे हैं? हमारी कैसी औंधी समझ है? कि हमने अपने कई दोषोंको भी अपना बडप्पन गुण मान लिया है? जिसके घरमें अच्छे सुस्वादु भोजन बनते हैं, वही बडा घर समझा जाता है—सुस्वादु भोजन करनेवाले ही बडे आदमी हैं। साराश यह कि आजकल बडप्पन और छुटपन हमारी थालीके साथ है। व्यभिचारी, दूसरे व्यभिचारीको क्या कहे? स्वादेन्द्रियका गुलाम, दूसरे स्वादेन्द्रियके गुलामको क्या कह सकता है? किसीको इस विषयमें कुछ कहना तो दूर रहा बल्कि हम सुस्वादु भोजनोंको पाकर ही सच्चा आनन्द मानते हैं। यदि कोई हमारे घरपर अतिथि, मेहमान आवे तो हम उसे अपने यहाँका दैनिक भोजन खिलाना पाप समझ कर विशेष प्रकारका सुस्वादु भोजन कराते हैं। विवाहके समयमें,

तथा अन्य उत्सवोंमें स्वादके लिये अच्छे अच्छे पदार्थ बनाकर खाते हैं। यहाँ तक कि घरमेंका यदि कोई बडा बूढा मर जावे तो उसके नाम पर नुकतेमें भी हम अपनी जबानको वशमें नहीं रख सकते। बारहों महिने त्योंहार बने ही रहते हैं, बिना मिठाइयोंके त्योहार कैसा ? अडोसी, पडोसी, सगे सम्बन्धी, और इष्ट मित्रोंको न खिलावे तो शानमें बट्टा आजावे। उन्हें ठूंस ठूंस कर न पिलावें तो कजूसोंमें गिने जावें ! रविवारको अथवा अन्य पर्व दिनोंकी छुट्टियोंके दिन खानेसे अजीर्ण हो जानेमें कोई हानि नहीं। सारांश यह कि ऐसी ऐसी बुरी बातें भी आज हमारे समाजमें अच्छी मानी जा रही हैं !!!

खुराकके सम्बन्धमें हम यहाँ तीन भाग कर सकते हैं (१) जो केवल वनस्पति या उससे उत्पन्न वस्तुपर निर्वाह करते हैं। (२) जो वनस्पति भी और मांस भी खाते हैं और (३) जो केवल मांस पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। मनुष्य इन तीनों प्रकारकी खुराकसे अपनी जीवन-यात्रा चला सकता है। लेकिन यहाँ यदि विचारने योग्य बात है तो वह यही है कि "अच्छी से अच्छी, जो स्वास्थ्यके लिये हितकर हों, वह कौनसी खुराक है ?" इसी कारणमें हम पीछे मांसके विषयमें लिख आये हैं जिससे यह प्रमाणित हो चुका है कि "मांस मनुष्यकी खुराक नहीं है।" रसायन शास्त्रके विद्वानोंका कथन है कि फलोंमें वे सभी तत्व मौजूद हैं, जिनकी कि मनुष्यके जीवन निर्वाहके लिये आवश्यकता है। हमें रसोई बनानेकी

आवश्यकता ही नहीं है—उस परम पिताने हमारे लिये विविध पदार्थ सूर्यतापसे पकाकर प्रदान किये हैं। केवल सूर्यतापसे पके हुए पदार्थ ही हमें स्वस्थ्य रख सकते हैं। रसायनज्ञोंका कहना है कि राँधने और पकानेसे वनस्पतिका सत्व नष्ट हो जाता है और उसकी पोषक शक्ति निर्बल हो जाती है। वनस्पतिका मुख्य गुण चैतन्य देना होता है, किन्तु यह गुण उसे राँधनेसे सर्वथा नष्ट हो जाता है। इन लोगोंका तो यहाँ तक कहना है, कि जो वनस्पति राँधी गई है, वह हमारी खुराक ही नहीं है। यदि रसायन शास्त्रके पण्डितोंका उक्त कथन सत्य है, तो मनुष्य जाति बहुत कुछ झगड़ेसे छुट्टी पा जाती है। रसोई तय्यार करनेमें विविध दुःख, अपव्यय और वक्त खर्च होता है। वह सब बच सकता है। इस बातपर लोगोंको आश्चर्य होगा और वे कहेंगे कि यह बात स्वप्नमें भी सम्भव नहीं। यह सम्भव है या नहीं, इस विषयको लिखना हमारा उद्देश्य नहीं है। बल्कि यहाँ यह दिखाना है, कि अच्छी खुराक कौनसी है?

सबसे उत्तम खुराक फल है। फलाहारसे बढ़कर दूसरी कोई खुराक नहीं है। कोई फलाहारको अच्छा माने या न माने, इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है। अधिकांश लोग फलाहार नहीं करते, अन्न या मांस खाते हैं। इससे फलाहार की उत्तमतापर सन्देह नहीं किया जा सकता। सबसे पहिली और उत्तम खुराक फल ही है। प्रकृतिने हमें फलाहारी ही बनाया है। सूखे और गीले फलोंको ही अपनी खुराक समझना च।

उन्हें राँधकर या उबाल कर खानेसे उनका सत्व नष्ट हो जाता है। केले, नारङ्गी, अनन्नास, खजूर, अँगूर, सेव, नासपाती, आम, अमरूद, बादाम अखरोट, मूंगफली, खोपरा आदि फलोंमें जीवन निर्वाह करने योग्य सभी गुण हैं। योरोपमें फलाहार पर बहुतसे ग्रन्थ लिखे गये हैं। जुस्ट नामक एक जर्मन देशके रहनेवाले लेखकने फलाहार पर एक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें उसने बहुतसे उदाहरणों और दलीलोंसे सिद्ध किया है, कि सबसे श्रेष्ठ खुराक मनुष्यके लिये फल है। उसने बहुतसे बीमारोंके रोग फलाहार कराके हटाये हैं। इस पुस्तकके लेखकने स्वयं १०५ दिनतक केवल फलाहार पर रहकर इसका अनुभव किया है। फलाहारसे बढकर दूसरी खुराक मनुष्यके लिये हो ही नहीं सकती—यह लेखकका अनुभव भी है। यद्यपि १०५ दिन इस विषयका ज्ञान सम्पादन करनेके लिये बहुत ही थोडे दिन हैं तथापि बहुत कुछ अनुभव मुझे हुआ। फलाहारके दिनोंमें मुझे किसी प्रकारका रोग नहीं हुआ, पहिलेकी अपेक्षा मेरा स्वास्थ्य उत्तम हो गया। शरीर फुर्तीला, हलका और आलस्य शून्य हो गया। मुखपर तेज और कान्ति झलकने लगी। फलाहारके दिनोंमें मैंने अपनी बुद्धिको भी उन्नत दशामें पाया। दिमागी कार्य करनेकी शक्ति इतनी बढ गई थी, कि मुझे स्वयम् आश्चर्य होता था। इन्हीं दिनों एक साप्ताहिक पत्रका सम्पादन करते हुए "स्वप्नदोष" पर एक उपयोगी पुस्तक लिख डाली। फलाहारकी दशामें मेरे इन मस्तिष्क सम्बन्धी कार्यों को

देखकर मित्रवर्ग मुझे आश्चर्यभरी दृष्टिसे देखा करते थे। इतने पर भी तारीफ तो यह थी, कि थकान किसे कहते हैं, यह मैं बिलकुल नहीं जानता था। अब मैं अन्न खाकर उससे चतुर्थांश कार्य करने पर बहुत थक जाता हूँ। फलाहारके दिनोंमें बिना निद्रा लिये लगातार ४ दिनतक कार्य करके भी मुझे थकान नहीं मालूम होती थी। रात्रिके समय ४ या ५ घण्टेसे अधिक निद्रा नहीं आती थी। इस पुस्तकके आरम्भमें आप लेखकका चित्र देखिये। यह १०५ दिन केवल फलाहार पर रहनेके बाद का है।

साराश, यह कि फलाहार मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट खुराक है। बहुतसे लोग इसे बड़ा ही कष्टप्रद समझते होंगे परन्तु वैसा नहीं है। हाँ, ५ या ६ दिन तक शरीरको कुछ दुख होता है बादमें उससे इतना आनन्द होता है, कि मनुष्य अन्नको भूल जाता है और अन्नके बने विविध मिष्टान्नोंको देखकर भी अन्न खानेकी इच्छा नहीं होती, यह लेखकका अनुभव है। दूसरोंके और अपने निजी अनुभवसे अभीतक यही निश्चय हुआ है, कि मनुष्यकी सबसे प्रथम खुराक फल हैं। जो अन्नको त्यागकर फलाहार करना चाहें, उन्हें चाहिये कि अन्नको धीरे धीरे घटा-कर उस जगह फल खाने लगें। एकदम अन्न छोड़कर फला-हार नहीं करना चाहिये।

दूसरे दर्जेकी खुराक मनुष्यके लिये वनस्पति है। इसमें शाकभाजी अन्न, द्विदल अन्न आदि समझने चाहिये। वन स्पतिमें भी फलोंकी तरह सभी पोषक तत्व होते हैं। परन्तु जब

हम वनस्पतिको आँचपर पकाते हैं, तब उसके वे तत्व नष्ट हो जाते हैं। इतना होनेपर भी हमारी ऐसी आदतें पड गई हैं, वंशपरंपरासे ऐसे संस्कार पड गये हैं, कि हम वनस्पतिको बिना पकाये नहीं खा सकते। अन्नोंमे सबसे उत्तम अन्न गेहूं है। केवल गेहुओंपर ही मनुष्य अपना निर्वाह कर सकता है क्योंकि उसमें पोषक पदार्थ ठीक परिमाणमें हैं। गेहूँ शीघ्र ही पचनेवाला अन्न है, बशर्तेकी उसका छिलका नहीं हटाया गया हो। गेहूँकी तरह ही ज्वारी, मक्का, जौ बाजरी आदि अन्न भी हैं, किन्तु ये गेहूँकी बराबरी नही कर सकते। गेहूकी अपेक्षा इन अन्नोंमें पोषक तत्वोंकी कमी है। ये अन्न भी जल्दी ही हजम हो जाते हैं, क्योंकि इनमें चिकनाईका भाग कुछ कम है। गेहूँका आटा जिसे "मिलफ्लावर" के नामसे सब जानते हैं, बिलकुल सारहीन है। डाक्टर एलिन्सने अपने एक कुत्तेको इस सफेद आटे पर ही रखा था—वह मर गया। दूसरा कुत्ता जिसे दूसरे आटेकी रोटी दी जाती थी, जिन्दा रहा। हम लोगोंको यह याद रखना चाहिये कि गेहूँके छिलकेमें ही स्वाद और शक्ति है, आटेको अत्यन्त महीन चलनीसे छानकर उसका चूर, नहीं निकाल देना चाहिये। मशीनोंसे पिसा हुआ आटा कदापि स्वास्थ्य प्रद नहीं हो सकता। अपने घरोंमें गेहुओंके कचरे कूडेको साफ करके पत्थरकी चक्कियोंसे पीसा हुआ आटा ही अच्छा होता है। आटेको पीसकर बिना छाने ही उसकी रोटियाँ बनाकर खानी चाहियें। ऐसी रोटियाँ बडी ही

स्वादिष्ट और बलदायिनी होती हैं। बाजारू रोटियाँ अथवा पूरियाँ प्राय सफेद आटेकी होती हैं। ढाबोंमें और भठियारोंके यहाँ की रोटियाँ स्वास्थ्यको नष्ट कर डालती है। रोटियोंमें घृतकी जगह चरबी काममें लाते हैं। ऐसी रोटियाँ हिन्दू और मुसलमानोंके कामकी नहीं होतीं। बाजारू रोटियाँ खानेवाले कदापि दीर्घायु नहीं प्राप्त कर सकते।

अन्न खानेका सबसे उत्तम ढङ्ग तो यह है कि उसे बिलकुल नहीं पकाया जावे और कच्चा ही खा लिया जावे। कच्चे अन्नको खानेवाला व्यक्ति कदापि अस्वस्थ्य, अशक्त, और अल्पायु नहीं हो सकता। लोग हमारे इस कथनकी शायद दिल्लगी उड़ावें, परन्तु यह पढ़ सुनकर ही विचार करनेका विषय नहीं है बल्कि अनुभव करनेका विषय है। गेहूँ आदि अन्नोंको जलमें उबालकर खाना उन लोगोंके लिये अच्छा है जो कच्चा अन्न नहीं खा सकते। गेहूँको मोटा मोटा दलकर थूली बनाकर खाना भी अच्छा है। अन्नको भुनाकर खाना भी अत्यन्त हितकर है। इसके बाद रोटियाँ बनाकर खाना भी ठीक है, किन्तु जो लोग पूरी आदि बनाकर खाते हैं उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। सारांश यह है, कि अन्नकी जितनी अधिक क्रियाएँ की जावेगी, वह उतना ही गुरुपाक होता जावेगा और स्वास्थ्यका नाशकारी होगा। अतएव अन्न खानेवाले यदि बिना राँधे ही अन्न खावें तो स्वस्थ्य, बलवान, और दीर्घजीवी अवश्य हो जावेगे।

बहुतसे लोग अधिकतर चावल खाते हैं। जबतक चावल नहीं खा लेते तबतक उनका पेट ही नहीं भरता। यह अन्न सत्व हीन है। यदि चावलोंके साथ दाल, घी, शक्कर, दूध आदि पदार्थ नहीं खाये जावें तो मनुष्यका जीवन-निर्वाह इनपर नहीं हो सकता। हमारे यहाँ बाजारोंमें छिलके निकले हुए चावल बिकते हैं हम लोग उन्हें खरीदकर खाते हैं। उन्हें पकानेके पहिले अच्छी तरह धो डालते हैं। उबालकर उसका पानी—माँड निकाल देते हैं। ऐसा करनेसे उनमेंका सत्व बिलकुल निकल जाता है—इस प्रकारके चावल खानेसे कुछ भी लाभ नहीं है। जापानवाले चावलको पकानेके पहिले ही कूटते हैं और बिना धोये ही उसे उबालकर खाते हैं। चावल खानेका यह ढंग किसी प्रकार अच्छा कहा जा सकता है।

चना, उडद, तुवर, मौठ, मटर, मसूर, मूँग आदि अन्न देरमें पचनेवाले हैं। इनका पचाना गद्दीपर पडे रहनेवाले महाशयोंका काम नहीं है। इन्हें तो श्रम करनेवाले मजदूर ही पचा सकते हैं। इनके पचानेके लिये पेटकी अग्नि तेज होनी चाहिये। हम देखते हैं, कि अधिकांश गृहस्थोंके यहाँ नित्य ही दाल बनाई जाती है। बहुतेरे घरोंमें तो दोनों वक्त दाल पकती है। यह दाल स्वास्थ्यके लिये बहुत ही हानिकारक है। इंग्लैण्डके डाक्टर हेगने लिखा है कि "दाल बहुत ही बुरी वस्तु है। यह हमारे शरीरमें एक प्रकारका एसिड (विष) पैदा करती है, जिससे हमें विविध रोग हो जाते हैं। दाल खानेके कारण

जल्दी ही बुढ़ापा आता है।" इत्यादि। इस पुस्तकके लेखकका अनुभव है, कि दाल वास्तवमें देरसे हज्म होती है। वर्षमें २।४ वक्त जब कभी दाल खानेका मौका आता है, उसी दिन भोजन ठीक तरहसे नहीं पचता, खट्टी खट्टी डकारे आती हैं। शरीर भारी हो जाता है। साराश यह है, कि दाल खाना स्वास्थ्यके लिये ठीक नहीं है। जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा हो, उन्हें दाल खाना छोड देना चाहिये। बहुतसे लोगोंका कहना है, कि मूंग और मसूरकी दाल शीघ्र ही पचती है—यह हम भी मानते हैं कि अन्य दालोंकी अपेक्षा ये जल्दी पच जाती हैं परन्तु ये भी देरसे पचनेवाली जरूर है। कितने ही पाकशालियोंका कहना है, कि अमुक दालमें अमुक पदार्थ डालनेसे जल्दी हज्म हो जाती है, लेकिन यह केवल वाक्याडम्बर ही है, लोगोंको इस भुलावेमें नहीं पडना चाहिये। जो लोग दालके आदी हैं, वे यदि एकदम दाल खाना छोड नहीं सकते तो उन्हें खाते समय जरा विचार कर खाना चाहिये।

अब हमें यह देखना है, कि हमारी खुराकमें ऐसी क्या क्या वस्तुएं हैं, जो स्वास्थ्यको नुकसान पहुंचाती हैं। सबसे पहिले हमारी खुराकमें नमक एक ऐसी वस्तु है, जो स्वास्थ्यको हानि पहुंचानेवाली है। सभी लोग नमक खाते हैं--सांभरके नमकको अपवित्र समझकर छोड रखा होगा तो समुद्री या सेंधा नमक खाते होंगे। साराश यह कि सब लोग नमक खाते हैं। प्रति सहस्र भी शायद ही कोई एकाध नमक नहीं खाने वाला

करोड़ों मन नमक खपता है, सरकार भी नमक टैक्सको बढ़ा रही है। इस सर्वव्यापक पदार्थके विषयमें हम यहाँ कुछ लिखने बैठे हैं—हमें बहुत ही कम आशा है, कि लोग हमारे इस लेखपर विश्वास करें या अमलमें लावें। नमक बडी बुरी वस्तु है। पेटको—जठराग्निको नमककी अवश्यकता नहीं है हम लोग जबर्दस्ती उसे पेटमें डाल देते हैं। प्रकृति हमारी जबर्दस्ती नहीं चलने देती। वह पसीने, मूत्र, आँसू, कफ, आदि मलोंमें उस नमकको निकाल फेंकती है। नमकसे रक्त बिगड़ता है-स्वास्थ्यमें अन्तर आता है और आयु क्षीण होता है। विलायतमें नमकके विरोधमें एक संस्था कायम हैं, उसने नमकको बहुत ही खराब चीज बनाया है। हमारे कई भाइयोंका ही क्या बल्कि हमारे वैद्यक ग्रन्थोंका भी दावा है कि नमकसे जठराग्नि प्रदीप्त होती है और भोजन शीघ्र ही पचता है। इससे यह तो कदापि सिद्ध हो ही नहीं सकता कि नमक रोज मर्रा खाना चाहिये। जठराग्निको बिना नमकके ही प्रदीप्त रखना चाहिये और नमक डालकर भोजन पचानेकी आवश्यकता ही नहीं हो, ऐसा भोजन और परिणाममें भी उतना ही जितना पच जावे खाना चाहिये। खूब ठूसकर और नमक आदि मसालोंसे भोजनको पचानेकी जरूरत ही क्यों हो ? नमकको आयुर्वेदने पाचक अवश्य बताया है लेकिन वह तभी, जब कि अन्न पेटमें किसी कारणसे नहीं पचा हो। नित्य प्रति नमक खानेकी आज्ञा कोई भी वैद्यक ग्रन्थ नहीं दे रहा है।

नमक खानेसे ही विविध रोग उत्पन्न होते हैं। पेटकी बहुत सी बीमारियाँ नमकके कारण ही होती हैं। फोड़े फुन्सी, दाद, खाज, आदि चर्मरोग और रक्त-विकार शरीरमें नमकके कारण ही होते हैं। खाँसी, साँस, बवासीर, रक्तप्रवाह, सूजाक, उपदंश, प्रमेह, स्वप्न-दोष आदि बीमारियोंमें नमक छोड़ दिया जावे तो शीघ्र ही लाभ मालूम होने लगता है। एक अंग्रेज सज्जनने, जिन्होंने वर्षों से नमक छोड़ रखा है, एक समाचार पत्रमें नमक पर एक बड़ा ही उत्तम लेख लिखा था। उन्होंने लिखा था, कि नमक छोड़ देनेसे मेरा स्वास्थ्य बड़ा ही उत्तम रहता है, बुद्धि भी पूर्वापेक्षा प्रखर हो गई है, निद्रा कम आती है और नमक त्यागनेके पश्चात् मैंने कई नये नये यन्त्रोंका आविष्कार किया है। तात्पर्य्य यह, कि नमक छोड़नेसे किसीको किसी भी तरहका दुःख नहीं हुआ। जिन्होंने छोड़ा है, उन्हें बड़े बड़े लाभ हुए हैं। इस पुस्तकके लेखकका भी अनुभव है, कि नमक त्यागने योग्य वस्तु है, और इसके त्यागनेसे मनुष्य पर कुछ भी बुरा असर नहीं होता। नमक त्यागनेके एक हफ्ते तक तो नमक खानेके लिये जी चाहता है। बादमें इच्छा ही नहीं होती। जो लोग बिलकुल नमक नहीं खाते, उन्हें विष हानि नहीं पहुँचा सकता। जिसने बचपनसे नमक नहीं खाया हो और स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य नियमोंका भी अच्छी तरह पालन किया हो, उसे साँपके काटेका कुछ भी असर नहीं होता। जो मनुष्य नमक नहीं खाता, उसके रक्तमें विषको नष्ट कर

देनेकी शक्ति होती है। विच्छू, वर्र, ततैया आदि विषधर प्राणी भी नमक न खानेवाले व्यक्तिका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। प्लेग, हैजा, कोढ़, खाज, चेचक, आदि छूतकी बीमारियाँ भी कुछ असर नहीं डाल सकती। नमक छोड देने पर प्यास कम लगती है, आलस्य नहीं होता। नमक छोडनेवालेको दाल और शाकभाजी छोडनी होती है। नमक अभ्यासियोंके लिये यह बात बहुत ही कठिन जान पडेगी, परन्तु बिना शाक भाजी छोडे नमक छूट नहीं सकता। क्योंकि शाकभाजी, दाल इत्यादि गुरु पाक पदार्थ हैं। दालके विषयमें हम पीछे लिख आये हैं—शाक भाजी एक प्रकारकी घास है। परमात्माने हमारी आँतें घास पचाने योग्य नहीं बनाई हैं। घास पचाने वाली आतोंकी रचना अलग ही ढङ्गकी है। गाय बैल आदि घास भोजी पशु ही उसे सहजमें पचा सकते हैं, मनुष्यकी आतोंको शाक भाजी पचानेमें मेहनत पडती है। पत्तेवाले हरे शाक मनुष्य कदापि जल्दी हजम नहीं कर सकता। इसलिये नमक त्यागनेके साथ ही दाल, शाक भाजी भी त्यागनी पडेगी। जिस प्रकार नशेवाजको नशा छोडनेमें पहिले पहल अनेक कष्ट जान पडते हैं, उसी तरह नमक छोड़नेमें भी आरम्भमें थोडे दिनोंतक शरीर निर्बल सा हो जाता है। परन्तु इससे घबराकर नमक नहीं खा लेना चाहिये, बल्कि धैर्य पूर्वक अपनी प्रतिज्ञापर दृढ रहना चाहिये—इससे आगे चलकर बडा ही आनन्द प्राप्त होता है।

नमकके बाद मिर्च, जीरा, धनिया, गरम मसाला आदि त्यागने योग्य पदार्थ हैं। ये पदार्थ हमारी खुराक नहीं हैं, तो भी हम इन्हें खाते हैं॥ इन्हें क्यों खाते हैं? इसका उत्तर भी नमककी भाँति ही दिया जाता है कि "भोजन अधिक खाने और शीघ्र पचनेके लिये ही मिर्च मसाले खाते हैं।" मिर्च, धनिया, जीरा इत्यादिमें अग्नि उत्पन्न करनेका गुण है, इनके खानेसे विशेष भूख लगीसी मालूम पडने लगती है। वास्तवमे इन पदार्थोंसे पाचन शक्ति बढती नहीं है, बल्कि बढती सी जान पडती है और अन्तमें बडा भारी नुकसान होता है! इन पदार्थोंके खानेसे यदि भूख लग आवे तो यह नहीं समझना चाहिये कि हमें वास्तवमें भूख लगी है—या पहला अन्न पचकर उत्तम रक्त बन गया है। जो लोग मिर्च मसाले बहुत खाते हैं, उनका पेट खराब हो जाता है। अधिक मिर्च (लाल) खानेवालोंको आँखें खराब हो जाती हैं और अन्धे भी हो जाते हैं। इन चटपटे मसालोंसे संग्रहणी, अतिसार, अर्श, आदि रोग हो जाते हैं। मसाले वीर्यको उत्तेजना देकर उसे खराब कर डालते हैं। तेज मसाले खानेवालेको वीर्य सम्बन्धी बीमारी अवश्य होती है। बहुतसे लोगोंका कहना है, कि मिर्चके साथ घी खानेसे उसके अवगुण नष्ट हो जाते हैं। ऐसे लोगोंकी इन अज्ञानयुक्त बातोंपर हँसी आती है—हम यह पूछते हैं कि मिर्चें खाई जावे और फिर घी खाकर उसके दोषोंको नष्ट किया जावे, इसकी जरूरत ही क्या है? विष खाकर उसे निकालनेकी कोशिश

करना बुद्धिमानीका काम नहीं कहा जा सकता! वास्तवमें देखा जावे तो अधिक अन्न खानेके लिये मिर्च मसाले डालकर उसे स्वाद बनाते हैं और आवश्यकतासे अधिक खा जाते हैं। ऐसे लोग ईश्वरके चोर हैं—अपना भाग न खाकर दूसरोंका हिस्सा भी जबरदस्ती नमक मिर्चसे चटपटा बनाकर चट कर जाते हैं। यही कारण है कि हमारे देशमें अन्न महँगा होता जा रहा है और लाखों गरीब प्रतिवर्ष अन्न न मिलनेके कारण मृत्यु पा रहे हैं। इन दीन दुखियोंकी मृत्युका उत्तरदायित्व हम चटपटे स्वादयुक्त भोजन करनेवालोंके सिर पर है—यह बात इस कानसे सुनकर उस कान निकाल देनेकी नहीं है। हम अकेले ही अपने भोजनको स्वाद बनाकर इतना अपने पेटमें ठूंस लेते हैं, जितना कि तीन आदमियोंके पेटको भर सकता था! बड़े आदमियोंके रसोई घर हमारे इस कथनके अधिक जिम्मेवर हैं! परमात्मा प्राणियोंके लिये उनके पेट भरने योग्य सामग्रियाँ देता है, कभी कम या ज्यादा नहीं देता। कुदरतकी सरकारमें किसी प्रकारकी गड़बड़ नहीं है। हमें इच्छासे अथवा अनिच्छासे उसके नियमोंको पालना ही पड़ता है। हम यदि उसके नियमोंको समझ कर चलें, तो एक दिन भी हमारे घरमें भूख अपना डेरा नहीं जमा सकती। जब कि खाद्य पदार्थ प्राणियोंके लिये प्रकृतिने अन्दाजसे ही उत्पन्न किये हैं तब उसमेंसे अगर कोई अधिक खाजावे, या न खानेकी चीज भी खा जावे, तो औरोंको लिये अवश्य ही कमी

पड़ेगी और परिणाममें कोई न कोई भूखा मरकर अकाल मृत्यु पावेगा ही। यह बात अटल है। अब यदि हम अपने पदार्थोंको स्वाद बनाकर प्रकृतिके दिये हुए हमारे भागसे अधिक खा जाते हैं तो हम प्रकृतिके नियमको तोडकर अपने दूसरे भाईका प्राण हरण करते हैं। भूलिये मत, जितना अन्न हम स्वादके लिये खाते हैं, वह कचा पारा है, किसी न किसी रूपमें वह फूट निकलेगा। हमारा स्वास्थ्य खराब हो जावेगा और हम दुखी हो जावेंगे। हमारे इतने लिखनेका तात्पर्य यह है कि मिर्च मसाले हमारी खुराक नहीं हैं—केवल अन्नको सुस्वाद बनाकर उसे अधिक परिणाममें खाने और पचानेके लिये हम मसाले खाते हैं। हम भारतवासी जितना मिर्च मसाला खाते हैं, उतना किसी भी दूसरे देशके निवासी नहीं खाते॥ हमारा मसाला, अगर हम अफ्रीकाके हबशियोंको खानेके लिये दें तो शायद ही खा सकें॥ कितने आश्चर्यकी बात है, कि हम भारत जैसे सभ्य देशके रहनेवाले मिर्च मसालोंके स्वादमें फँस कर बर्बाद हो रहे हैं। स्वास्थ्य खो रहे हैं और अल्पायु हो रहे हैं॥!

शक्कर भी हम लोगोंकी खुराकमें है। हमारे बहुतसे भाई तो मिठाई इतनी ज्यादः खाते हैं कि उसके सामने दूसरी खुराक नाम मात्रको ही कही जा सकती है। भारतवर्षमें मिठाई एक बड़ा ही उत्तम खुराक समझी जाती है। विवाह शादी, उत्सव त्योहार, नुक्ते, आतिथ्य सत्कार बिना मिठाईके हो नहीं सकते। देवताओंके प्रसाद बाँटनेमें और

भावतामें मिठाई जरूर होनी चाहिये। वह भले ही गुड़ क्यों न हो? अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करनेके लिये प्रेम प्रदर्शनार्थ हम बच्चोंके हाथमें मिठाई देते हैं। अतएव जिसका ऐसा प्रचार हो, और जिसके बिना भोजन ही उत्तम नहीं समझा जावे, उस मिठाई पर भी थोडा बहुत यहाँ विवेचन होना जरूरी जान पडता है। शक्कर, गुड, और शहद ये तीन चीजें मुख्य हैं—इनसे ही मिठाइयाँ बनती है। देशमें आजकल शक्करके दो भेद हैं, एक विदेशी और दूसरी बनारस या स्वदेशी। इनमेंसे पहिली शक्कर स्वास्थ्यको बिगाडने तथा विविध रोगोंको उत्पन्न करने वाली है। विदेशी समझकर हमने इसके विषयमें ऐसा लिख दिया है, ऐसा समझना भूल है। वास्तवमें यह विघातक और भयङ्कर रोगोंकी जननी है।* जो लोग स्वदेशी शक्कर खाते हैं, वे स्वास्थ्यरक्षा कर सकते हैं। इस विषयमें भी सावधानी की जरूरत है, क्योंकि बहुतसे धूर्त्त व्यापारी, विदेशी शक्करमें गुड प्रभृति मिलाकर उसका रङ्ग बदल देते हैं और बनारस शक्करकी जगह लोगोंको बेचते हैं। ऐसे नीचोंसे हमें सावधान रहना चाहिये।

मिठाई खानेवाले व्यक्ति कदापि स्वस्थ नहीं रह सकते।

---

* विषयान्तर हो जानेके भयसे हम शक्कर पर अधिक नहीं लिख सकते। जिन्हें पूर्णज्ञान प्राप्त करना हो, वे मेरी लिखी हुई 'भारतमें दुर्भिक्ष' नाम्नी पुस्तकका विदेशी खांड प्रकरण पढ़ लें। उक्त पुस्तक किसी भी अच्छे पुस्तक विक्रेताके यहाँ से २।) रु० में प्राप्त हो सकती है। लेखक—

मिठाई स्वास्थ्यका शत्रु है। जहाँ कहीं हमारे भोजनमें मिठाई रखी जाती है, वहाँ हम सबसे पहिले मिठाई भर पेट खाते हैं। जब उससे पेट ठसाठस भर जाता है और एक रत्ती भर भी मिठाई खानेकी इच्छा नहीं रहती, तब हम नमकीन पदार्थोंको खाते हैं। इस तरह हम इतना खा जाते हैं, कि हाजमेकी गोली खाने तककी जगह पेटमें नहीं रहने पाती। जो लोग बाजारू मिठाइयाँ खाते हैं—हलवाइयोंके दोने चाटते हैं, वे कदापि दीर्घायुषी नहीं हो सकते। जिन्हें हमारे कहनेमें विश्वास न हो, वे एक दिन भर किसी हलवाईकी दूकानपर बैठकर देख लें। मिठाई बनानेमें वे ऐसी शक्करका मैल भी उबाल डालते हैं जिसमें सैकडों मक्खियाँ, मकोडे, चींटियाँ, बर्रे, ततैये आदि पडे होते हैं। जिस घृतमें वे मिठाइयाँ बनाते हैं, वह बदबूदार, सम्भवत चर्बी मिला हुआ होता है। ऐसी मिठाइयाँ खाकर कौन तन्दुरुस्त रह सकता है? अधिक मिठाई खानेसे कोठा खराब हो जाता है। शरीर दुर्बल हो जाता है, दाँत कमजोर पड जाते हैं और वीर्य सम्बन्धी कोई भयङ्कर रोग हो जाता है। मिठाईके चटोरे प्राय चोर, ज्वारी, व्यभिचारी, झूठ बोलनेवाले और दुराचारी हो जाते हैं। हमारे देशमें बहुतसे बच्चोंकी मृत्यु इस मिठाईके कारण ही होती है—अज्ञानी मा बाप प्रेमके कारण मिठाई खिला खिलाकर उन्हें मृत्युके मुखमें डाल देते हैं। तात्पर्य यह है, कि मिठाई सब तरहसे हमारा नाश करने वाली है। अतएव, यह त्याज्य वस्तु है।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि मिठाई खानी चाहिये या नहीं? इसका उत्तर यही है कि रक्त शोधनार्थ अधिकसे अधिक ५ तोला शक्कर एक मनुष्यके लिये एक दिन भरमें काफ़ी हैं। फल भोजियोंको शक्कर अथवा नमककी आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रकृतिने फलोंमें लवण, शर्करा, आदि सभी मनुष्य-जीवनके योग्य तत्व रख दिये हैं। इसी तरह वनस्पतिमें भी नमक, शर्करा आदि तत्व उचित प्रमाणमें प्रकृतिने रखे हैं, इतने पर भी यदि मनुष्य मीठा खाये बिना नहीं रह सकता तो एक तन्दुरुस्त व्यक्तिको अपनी तन्दुरुस्ती ठीक रखनेके लिये एक छटाँकसे अधिक शक्कर नहीं खानी चाहिये। कोरी शक्कर कदापि लाभदायक नहीं है। इसलिये किसी वस्तुके साथ ही खानी चाहिये। पानीमें घोलकर शर्बत बनाकर पीनेवालोंकी जठराग्नि मन्द हो जाती है—आँव हो जाती है। यदि कहीं मिठाई खानेका मौका आ जावे तो बहुत सोच समझकर खानी चाहिये। जिस प्रकार मिर्च मसाले वगैर खानेमें भारतवर्ष अन्य देशोंकी अपेक्षा बढ़ा है, उसी तरह मिठाई खानेमें भी यह पृथ्वीपरके समस्त देशोंमें अव्वल नम्बर है। अन्य देशोंमें भी लोग मिठाई खाते हैं, किन्तु कम मीठा और बहुत कम परिमाणमें खाते हैं। भारतवर्षकी तरह शक्करमें लतपत और ठूस ठूसकर नहीं खाते। हमे हमारे मिठाई सेवनमें शीघ्र ही सावधान होकर अपने स्वास्थ्यको सुधार लेना चाहिये।

गुड़ भी रक्त शोधक और उष्ण प्रकृति पदार्थ है। भारतमें

गरीव प्रजा प्राय गुडसे ही अपनी मिठाईकी गरज पूरी करती हैं। गुड खानेवाले लोग, बाजारू मिठाई खाने वालोंसे सेकडों गुण अच्छे हैं। गुडमें क्षार भाग अधिक रहता है। इसलिये यह पेटमें विकार पैदा करता है। गुड भी शक्कर की भाँति बहुत ही कम खाना चाहिये। मिठाई खानेका भी यही मतलब है कि किसी तरह अन्न पेटमें अधिक पहुंच जावे। "हमारा रक्त शुद्ध होगा।" इस दृष्टिसे मिठाई खाने वाले लोग हमारे देशमें बहुत ही कम निकलेंगे।

हम पीछे शहदको भी मिठाईमें गिन आये हैं। शक्कर और गुडसे यह अति उत्तम वस्तु है। आजकल बाजारोंमें नकली मधु भी बिकता है, अतएव बहुत जाँच पडतालके बाद ही शहद लेना चाहिये। बसन्त ऋतुका मधु अत्यन्त गुण दायक और स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। शहद महँगी वस्तु भी नहीं है, बगरियों, भीलों और जङ्गली लोगोंसे पवित्र, शुद्ध, और सस्ता शहद प्राप्त किया जा सकता है। जैनी लोग मधुको अपवित्र समझते हैं, लेकिन हमारे विचारसे यह शक्करसे अपवित्र नहीं है— आप स्वयम् विचार देखिये। जो लोग शक्कर नहीं खाते और शहदसे ही अपनी मिठाईकी गरज पूरी करते हैं, वे सदैव स्वस्थ, मोटे, ताजा, बलवान और दीर्घजीवी होते हैं। गुजराती भाषामें "मधु अनेतेनो उपयोग" नामको एक छोटी सी पुस्तक है, उसमें शहद विषयक बहुत सी बातें लिखी हैं। जो लोग अपने बच्चोंको मोटे ताजा, और दीर्घजीवी बनाना चाहें उन्हें चाहिये

या उसमें बनी हुई मिठाई तथा गुड न खिलाकर शहद खिलाया करें। शहद खानेवाले बच्चे मोटे, ताजे, बुद्धिमान, और दीर्घजीवी होते हैं। जिनके बालक नहीं जीते हों, उन्हें चाहिये कि अपने बच्चोंको मधु सेवन करा देवें। हमारे दीर्घायु चाहने वाले पाठकोंको एकदम मिठाई छोड़कर उसके स्थानमें यथावश्यक शहद प्रयोग आरम्भ कर देना चाहिये।

दूध यद्यपि पेय पदार्थ है, तो भी हम इसे खुराकमें ही लेंगे, क्योंकि केवल दूधपर ही मनुष्य वर्षों जीवित रह सकता है। इसमें शरीरके पोषक तत्व अच्छे परिमाणमें हैं। दूधके बराबर उत्तम पदार्थ इस भूलोकमें दूसरा नहीं है। इसके महात्म्यमें हमारे ग्रन्थोंके असख्य पृष्ठ रँगे हुए हैं। दुग्ध, मृत्यु लोकका अमृत है और इसीके लिये गऊको माता कहते हैं। यद्यपि यह बात बिलकुल सही है, कि दुग्ध अमृत है तथापि इस वर्तमान समयमें बात उलटी हो गई है। अमृत विष हो गया है। आज हमारे देशके दुधारू पशु केवल दूध पीनेके लिये रखे जाते हैं, उनके स्वास्थ्य तथा आहार विहारकी बिलकुल परवाह नहीं की जाती। देशकी करोड़ों गौएँ वधिकोंके हाथ मर चुकी हैं, अब जो कुछ बची खुची हैं, वे बिना सार सँभारके मरती जा रही हैं। कलकत्तेमें ग्वालोंका गोपालन देखकर निर्दयता भी रो देगी। इसी प्रकार देशमें घूम फिरकर देखनेसे पता लगता है, कि लोग दुधारू पशुओंका और खास करके गौओंका पालन अच्छी तरहसे नहीं करते। बैलोंको आप मोटे-ताजे देखेंगे

उनकी सार सँभाल होती पावेंगे, लेकिन बैलोंको उत्पन्न करने वाली गौएँ कृष, रोगी और हीन दशामें दृष्टि आवे गी। प्राचीन कालमें गौओंका आदर था, वे उन्नत दशामें थीं, तभी उनका दूध अमृत भी था। महाभारत ग्रन्थमें एक कथा है, कि एक राजा एक ऋषिको अपना समस्त राज्य अर्पण करने लगा। लेकिन उसने राज्य लेकर राजाको क्षमा नहीं किया बल्कि उससे एक गऊ लेकर उसे क्षमा कर दिया। जिस समय गऊका ऐसा मान था, उसी समय दुग्ध भी अमृत था। आज कलका गोपालन गायोंका वश नाश कर रहा है। यही कारण है कि एक डाक्टरने तो यहाँतक लिख दिया है कि "दूध से कालज्वर उत्पन्न होता है।"

इस बातको सभी जानते हैं कि माताके स्वास्थ्यका, उसके खानपानका असर उसके दूध पीनेवाले बालक पर तत्काल ही होता है। बच्चेके लिये जो ओषधि देनी होती है, वह उसे न देकर उसकी दूध पिलानेवाली माताको दी जाती है। हमारे इस लिखनेका आशय पाठक समझ हो गये होंगे। हमारी गौओंको भरपेट चारातक भी नसीब नहीं है। गोचर भूमि कोई नहीं छोड़ता, टेक्स और करोंके मारे नाकमें दम है। अपने खानेके लिये ही अन्न नहीं प्राप्त होता, भला गौओंके लिये दाना कहाँसे आवे। धनी लोग बाजारसे दूध लाकर पा सकते है, उन्हें गऊ पालनेकी जरूरत ही नहीं। कुत्ते पालना, चिड़ियाँ पालना, हमारे बड़े आदमियोंको अच्छा लगता है। ग्वाले निर्धन होते

हैं, वे गायोंको दाना नहीं दे सकते, अतएव गायें विष्ठा, लीद आदि मैले पदार्थों को खाती हैं। नमक नहीं मिलनेके कारण पेशाब पीती हैं। सड़ी गली घास खाती हैं, गन्देसे गन्दा पानी पीती हैं। अब कहिये, ऐसी गौओं और भैंसोंका दूध आप अमृत कहेंगे या विष? पशु-चिकित्साका ज्ञान न होनेके कारण गोपालक उनके रोगोंको नहीं जान सकते और उन रोगी पशुओंका दूध निकालकर काममें लाते हैं। प्रतिशत ६६ गौएँ हमारे उक्त कथनानुसार मिलेंगी। ऐसी गौओंका दूध पीकर कौन स्वस्थ रह सकता है। वर्षा आरम्भ होते ही साल-भर अच्छा खुराक न मिलनेके कारण हजारों गौएँ उठान आकर अकाल मृत्यु पा जाती हैं। ऐसी गौओंका ही हम दूध चूसते रहते हैं।

जब तक दुधारू पशुओंके स्वास्थ्यकी रक्षा न हो, तब तक उनका दूध पीना व्यर्थ है। लाभ होनेके बजाय उससे उलटे हानि होती हैं। जो बीमारियाँ पशुको होती हैं, वे उनका दूध पीनेवालेको अवश्य होंगी। क्षय रोगसे पीडित गऊका दूध पीकर मनुष्य क्षयसे कदापि नहीं बच सकता! बिलकुल तन्दुरुस्त गायका मिलना कठिन है। जिन दिनों श्रीमान् पञ्चम जार्ज महोदय विलायतसे यहाँ दिल्ली दरबारके लिये तशरीफ लाये थे, उन दिनों उनके लिये स्थान स्थानपर अच्छी जातिकी गौएँ तीन महीने पहिलेसे ही अच्छे, अच्छे पौष्टिक पदार्थ खिलाकर, दूध पिलानेके लिये रखी गई थीं। उन्हें उत्तम घास और

पूय दाना दिया जाता था। खुली हवा और शुद्ध प्रकाशमें रखा जाता था। हफ्तेमें एक बार उन्हें स्नान कराया जाता था, इत्यादि अनेक तरहकी सेवा सुश्रूषा द्वारा रखी हुई गौओंका दुग्ध श्रीमान् पञ्चम जार्जको पीनेके लिये दिया जाता था। यहाँ कोई कहे कि उनकी बराबरी नहीं हो सकती, वे तो राजाधिराज हैं इ०।" किन्तु स्वास्थ्यरक्षाके लिये न तो कोई राजा है और न कोई गरीब है—इस विषयमें सब समान हैं। जितनी राजाको स्वास्थ्यरक्षाकी जरूरत है, उतनी ही एक गरीबको भी है। प्रकृतिकी सरकारमें राजा और रङ्कका भेदभाव नहीं है। यहाँ सब समान हैं। तात्पर्य यह कि स्वस्थ्य पशुका दुग्ध पीकर ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। जिस दूधके पीनेसे स्वास्थ्य नष्ट हो, ऐसा दूध पीना मूर्खता है। हमें यदि अमृत समान दूध पीनेकी इच्छा है, तो पहिले हमें हमारे दुधारू पशुओंके दूधको दोष रहित बनाना चाहिये। उत्तम पशुओंका उत्तम दूध पीनेसे ही स्वास्थ्य उत्तम रह सकता है। आजकलका दूध हमें बलवान, पुष्ट और दीर्घायु नहीं बना सकता। पाखाना और लीद खानेवाली, मूत पीनेवाली, गन्दा और सड़ा पानी पीकर गली सड़ी घासपर जीवन व्यतीत करनेवाली, एक दुर्बल कमजोर गऊका दूध पीकर हम पुष्ट नहीं हो सकते। हमें दूध पीकर पुष्ट होना है तो अपने घरमें गौएँ पालकर ही उनका दुग्ध सेवन करना चाहिये या जिन गौओंका अच्छे ढङ्गसे लालन पालन होता हो उनका दूध पीना चाहिये।

हम लोग दूध जैसे उत्तम पदार्थको अपनी लापरवाहीसे दिनोंदिन नष्ट कर रहे हैं और गोपालनको भार समझ कर गोवंशके नष्ट होनेमें सहायक बन रहे हैं। इधर हम भारत-वासियोंकी, जहाँ पर कि गौएँ माता गिनी जाती हैं, और जिन्हें स्वर्गदायिनी माना है, यह हालत है तो उधर विलायत वाले गोपालन इस ढङ्गसे कर रहे हैं कि हमें बड़े ही आश्चर्य सागरमें डूबना पडता है। देखिये कोलमना (कनाडा) में एक गऊ है, उसके विषयमें "प्रताप" कानपुर अपने १६ जोलाई १९२३ के अङ्कमें लिखता है—

"यह गऊ एक सालमें १६८० पौण्ड (२१ मन) घी और ३०८८६ पौण्ड (३८६ मन) दूध देती है। एक दिनमें ३०० आदमियोंने उसका दूध पिया है। इसका मूल्य ३००००) रु० (एक लाख डालर) है। यह गऊ इतनी सीधी है कि एक दस वर्षीया बालिका उसे रेशमके डोरेसे अन्दर लाती ले जाती है।"

हमारी कामधेनुकी कथाओंको सुनकर जो लोग उन्हें कोरी गप्प समझा करते हैं, उन्हें यह सम्वाद ध्यानसे पढ़ना चाहिये। विदेशोंमें ऐसी बहुतसी गौएँ हैं जो बहुत दूध देनेवाली हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने हम भारतवासियोंको मुरली बजा बजाकर गोदोहन सिखाया था, परन्तु हम तो "जै गोपाल" और "जै बंसी वालेकी" में ही रह गये और अमेरिका निवासी गोदोहनके समय अपनी गायोंको बंसीकी मीठी तान सुनाकर

उनका दूध दूहकर पीने लग गये। वशीकी ध्वनिसे गौएँ बड़ी ही खुश होती हैं और दूध उत्तम और बहुत देती हैं। साराश यह कि हमारी खुराक दूध है अवश्य किन्तु वर्तमान दूध जो बाजारोंमें मिलता है, सर्वथा त्याज्य है। यह दूध रोगोंका घर है और मनुष्यको अल्पायु बनाने वाला है। जब तक हमारे दुधारू पशुओंका उत्तम रीतिसे पालन न हो तबतक हमें दूध पीना छोड़ देना चाहिये।

अब यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है, कि यदि दूध छोड़ दिया जावे तो उसकी जगह किस वस्तुके सेवनसे उतना ही लाभ हो सकता है। शक्ति देनेका जो गुण दूधमें है, वह बहुत सी चीजोंमें है। बादामकी मींगोको जलमें भिगोकर उनका छिलका निकाल दो—बादमें उन्हें पीसकर पानीमें एक रस कर लो। इसमें दूधके सारे गुण होते हैं और दूधमें पैदा होने वाली खराबियाँ नहीं होतीं। दूधमें तुरन्त ही हवाके जन्तु गिर जाते हैं और उसमें बढ़कर स्वास्थ्यके लिये बहुत ही हानि पहुँचाते हैं।

बहुतसे लोग कहते हैं कि दूध मनुष्यकी खुराक नहीं है। उनका कहना है कि "प्रकृतिने जबतक हमें दाँत नहीं दिये थे, तब तक हम दूधके अधिकारी थे किन्तु उसने दाँत देकर हमें इस बातकी सूचना दी है कि, अब से तेरी खुराक दूध नहीं है। बछड़ोंको देखिये दाँत आनेपर जब घास चरने लग जाते हैं तब दूध फिर उम्र भर नहीं पीते। प्रकृतिने पशुओंके

दूध हमारे लिये नहीं बनाया है बल्कि उसके बच्चेके लिये उत्पन्न किया है। यह हमारी अनधिकार चेष्टा है कि हम उसके बच्चेका भाग खुद पी जावें और उसे भूखा मरने दें, या घास चारे से लगादें। कुछ लोगोंका कहना है कि दुधारू पशु गाय और भैंसके चार स्तन इस बातको सूचित करते हैं कि दो स्तन उसके बच्चेके लिये हैं और दो उसके पालनेवालेके लिये हैं। यह प्राकृतिक नियम नहीं है—बकरीको देखिये दो बच्चे देती है और थन भी दो होते हैं—चार नहीं होते। सुअरी १२ बच्चे देती है, उसके २४ थन नहीं होते इत्यादि। ऐसी बातें तो केवल दूध पीनेके लिये बहाना मात्र है।"

जो कुछ भी दूधके विषयमें हम जानते थे वह पाठकोंके आगे ला रक्खा था। दूध पीना चाहिये या नहीं? इसका उत्तर हमारे पाठक इसको पढ़कर स्वयम् सोच लें। हम अपनी तरफसे कुछ भी नहीं लिखना चाहते। जो कुछ भी लिखना था, पीछे लिख आये हैं। बहुतसे मादक पदार्थ भी हम लोगोंकी खुराक बन गये हैं अतएव इनके विषयमें भी हमे यहाँ विचार करना पडेगा।

हमारे भारतीय बन्धु अधिकाश मादक द्रव्योंका सेवन करते हैं। यह उनकी खुराक है—ऐसे लोगोंको अन्न आदिकी उतनी परवाह नहीं होती जितनी कि इस मादक पदार्थके व्यसनकी होती है। मादक पदार्थोंमें मुख्यत शराब, अफीम भाँग, गाँजा, चण्डू, चरस, कोको, चाय, काफी, तम्बाकू आदि

वस्तुएँ लोग खाते पीते हैं। नशा करनेकी हरेक धर्ममें मनाही होते हुए भी लोग खाते पीते हैं। इसके लिये शायद ही कोई आज्ञा दे। शराबसे कुटुम्बके कुटुम्ब नष्ट हो गये, हजारों घर बरबाद हो गये। शराबीको नशेमें अपनी माता और पत्नीका कुछ भी ध्यान नहीं रहता! मोरियोंमें—गटरोंमें पड़े हुए अपनी इज्जतको बरबाद कर देते हैं। उनके मुखपर कुत्ते मूतते हैं। इस प्रकार शराबी पृथ्वीपर भाररूप हो, अपना जीवन व्यतीत करता है। शराबी हमेशा सुस्त और निर्बल रहता है—अनेक रोग उसे आ घेरते हैं और अकाल मृत्यु पाता है। बहुतसे लोगोंका कहना है कि शराब दवाके रूपमें ली जा सकती है परन्तु इसकी आवश्यकता ही क्या है? पहिले बहुत सी बीमारियोंमें शराब दवाके रूपमें दी जाती थी लेकिन अब वह बिलकुल बन्द हो गई है। शराबी लोग अपना दोष छुपानेके लिये ही दवाका बहाना ढूँढते हैं। परन्तु जरा सोचना चाहिये कि संखिया दवामें काम आती है किन्तु उसे कोई दैनिक खुराक नहीं बना लेता! कदाचित शराब किसी बीमारीमें लाभदायक हुई हो परन्तु जितना इससे नुकसान होता है, उसके सामने लाभका होना न होनेके बराबर है। भले ही शराब किसी दृष्टिमें लाभदायक वस्तु हो लेकिन यह अत्यन्त बुरी और त्याज्य खुराक है। स्वास्थ्य और दीर्घायु इसकी बदबूसे ही नष्ट हो जाते हैं।

अफीमका नशा शराबसे भिन्न प्रकारका है, किन्तु इससे

होनेवाले दोष शराबसे किसी प्रकार कम नहीं है। जो लोग अफीम खाते हैं, उनकी दशापर ध्यान देनेसे उसके दोष अच्छी तरहसे मालूम हो जाते हैं। अफीम खानेवालेका मुहँ काला, स्याह हो जाता है! मुखकी कांति नष्ट हो जाती है। आँखें पीली और भीतर घुस जाती हैं। जिन्हें अफीमखानेकी आदत पड जाती है, उनसे बिना अफीम खाये कुछ भी काम नहीं होता। अफीमसे अग्निमांद्य हो जाता है—दस्त साफ नहीं होता। हमारे देशमें प्राय बूढे मनुष्य इसे खाने लगते हैं, जिससे उनका शरीर बिलकुल निकम्मा हो जाता है। इसकी आदत पड जानेपर इसको छोडना कठिन हो जाता है। हमारी मूर्ख माताएँ अपने नन्हें नन्हे बच्चोंको उनके रोनेसे घबराकर अफीम खिलाती हैं, बच्चे उसके नशेमें सुस्त होकर पडे रहते हैं। यह बहुत ही बुरी बात है। इससे कई बच्चोंकी मृत्यु हो जाती है। जिन बच्चोंको बचपनमें अफीम खिलाई जाती है, उनके ज्ञान-तन्तु नष्ट हो जाते हैं और बुद्धिका विकास बन्द हो जाता है। अफीम शराबसे किसी बातमें कम नहीं है। अफीमकी वशवर्त्तिनी चीनी प्रजा स्वतन्त्र होते हुए भी सुस्त और निर्बल हैं। इस अफीम और पोस्तके कटोरेमें हमारे कई बडे बडे जागीरदार आज भिखमंगे बन गये हैं। जिन्हें दीर्घ जीवन तथा उत्तम स्वास्थ्य की इच्छा हो, उन्हें अफीम खानेवालेकी सङ्गतिमें भी नहीं बैठना चाहिये।

भाँग भी बडा बुरा नशा है। इसे बडे बडे सभ्य कहाने

वाले लोग भी बूटी, ठण्डाई नामसे खाते पीते हैं। भाँग कहते उन्हें भी लज्जा आती है। इसको पढ़े लिखे और समझ-दार कहलाने वाले लोग भी पीते हैं। अतएव भय है, कि हमारे लिखने पर सम्भवत उन्हें बुरा लगे। परन्तु किसीके भयसे सत्य बातको छुपाना भी विश्वासघात है। इस भङ्गने भारतकी बुद्धिको भङ्ग कर दिया। महात्मा गान्धीजीने अपनी "आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान" नामी पुस्तकमें भाँगको शराबके साथ साथ लिखा है। भाँग पीनेवालेकी बुरी दशा होती है, बोलने चालने-की सुधि जाती रहती है। अपने जीवनका बहुत सा समय सोनेमें खो देता है। मुँह तेजोहीन होकर शरीर सुस्त और कम-जोर हो जाता है। भाँगका नशा दूर होते ही शरीर मिट्टी जान पड़ता है। जठराग्नि कम हो जाती है और वीर्यदोष हो जाता है। बहुतसे अज्ञानियोंने "इसे शङ्कर सेवन करते हैं।" कहकर अपने देवताके नामको कलङ्कित कर रखा है। यद्यपि लोग इस बातको किसी भी शास्त्रसे प्रमाणित नहीं कर सकते कि "शङ्कर इसे सेवन करते थे या करते हैं।" तो भी अपनी भङ्गकी तरङ्गमें अपनी ही बातको सिद्ध करनेकी मूर्खता करते रहते हैं। कुछ भी हो, हमें इन बातोंसे कुछ प्रयोजन नहीं। हमें केवल यहाँ यही लिखना है, कि भाँग हमारी खुराक नहीं है, इसे स्वप्नमें भी नहीं सेवन करना चाहिये। इससे आयु और स्वास्थ्य धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं। लोग यदि कहें, कि इससे क्षुधा प्रदीप्त होकर शरीरमें नवीन रक्त उत्पन्न होता है,

तो आप कदापि उनकी इस मीठी बातमें न फँसें। क्योंकि भाँग पीने वालोंकी अग्निप्रदीप्त और शरीरमें बल सा मालूम होता है, किन्तु वास्तवमें भङ्गसे अग्निमान्द्य और उदर सम्बन्धी कई रोग हो जाते हैं।

गाँजा भी भाँगका भाई बन्धु ही है। इसके पीनेवालेका कोठा जल जाता है। फेफड़े खराब हो जाते हैं। मुखसे अत्यन्त बदबू आती है। भाँग, गाँजा पीनेवाले पागल तक हो जाते हैं। व्यभिचारी, चोर, झूठे, निन्दक, परछिद्रान्वेषी भाँग गाँजाके सेवन करनेवाले प्राय देखनेमें आते हैं। सज्जनोंका तथा अच्छी बातोंका विरोध करना, ये लोग अपना मुख्य धर्म मानते हैं। गाँजा पीनेवाले भी इसे शङ्करके नामपर दूषण लगाते हुए सेवन करते हैं। इस भँगेड़ी समुदायने अपनी प्रशंसाके कई श्लोक और छन्द आदि बना रखे हैं। उन्हें सुन कर लोगोंको उनका दोष रहित होना नहीं मान लेना चाहिये। ऐसे लोग अपना पेट छुपानेके लिये ही अच्छी अच्छी कविताएँ बना लेते हैं और शास्त्रों तकमें उन्हें घुसेड़कर अपने पक्षका मण्डन करते हैं। पाठकोंको इन नाशकारी नशोंसे बचकर स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त करना चाहिये।

चण्डू-मदक और चरस, ये दोनों अफीम और गाँजे के ही रूपान्तर हैं। इनके लिये इतना ही लिखना बस है, कि ये अफीम और गाँजेसे भी बुरे हैं। तम्बाकू एक बहुत ही बुरी वस्तु है, किन्तु इसका साम्राज्य इतना बढ़ गया है, कि उसे

हटानेमें बड़े ही परिश्रम और समयकी आवश्यकता है। राव, रङ्क, छोटे बड़े, मूर्ख विद्वान, सभी इसके चक्करमें आ गये हैं। आजकल इसने इतना आदर पाया है, कि आगन्तुक मेहमानोंके आतिथ्य सत्कारमें भी यह काम आने लगी। इसके प्रचारमें कमी नहीं होकर नित्यप्रति वृद्धि ही हो रही है। मामूली बुद्धिके लोग या यों कहिये कि अधिकांश लोग जानते भी नहीं हैं कि बीडी, सिगरेट बनानेवाले व्यापारी उसकी बनावटमें सैकड़ों युक्तियाँ करते हैं, जिससे कि लोग तम्बाकूके व्यसनमें फँसते ही रहें और उनका माल धड़ाधड़ खपता रहे। बीडी सिगरेटवाले जर्देमें अनेक प्रकारके सुगन्धित तेजाब छिड़कते हैं, संखिया और अफीमका पानी डालते हैं। इस प्रकारसे तय्यार किये हुए जर्देकी बनी चुरुट, बीडी, सिगरेट, हमपर अपना अधिक प्रभाव जमाते हैं। कई कम्पनियोंके सिगरेटोंमें पारा मिलाया हुआ पाया गया है और कितनोंहीमें और भी कई दूसरे पदार्थ। तात्पर्य यह, कि तम्बाकू सेवन करने योग्य वस्तु नहीं है।

हिन्दुओंके पुराणोंमें तो इसकी उत्पत्ति ही गोरक्तसे मानी है। इतने पर भी अफसोस और शर्मकी बात है कि सनातन-धर्म नामधारी, और शिखाधारी हिन्दू इसको ग्रहण करके अपनेको पवित्र ही समझते हैं॥ विदेशोंमें इसको रोकका प्रबन्ध हो रहा है परन्तु भारतमें अभी तक लोगोंका ध्यान इस ओर आकर्षित ही नहीं हुआ है। यदि कोई तम्बाकूका

करनेके लिये उठता है तो बदमाशोका एक बडा भारी दल उसका सामना करनेके लिये तैयार होता है। ऐसा मौका इस पुस्तकके लेखकके साथ कई बार आया है। धर्मके लिहाजसे ही नहीं, बल्कि धनके लिहाजसे भी, इस व्यसनने देशका इतना धन फूँक दिया कि जिसका आँकडा बाँधा जाना भी असम्भव है। तम्बाकूके सेवक दुराचारी भी हो जाते हैं—बच्चे अपने घरसे या किसी दूसरेके पैसे चुराकर तम्बाकू पीते हैं। कैदी लोग जेलमें बडी जोखम उठाकर भी चुराई हुई बीडीको छुपा रखते हैं। किसी व्यक्तिसे पीनेके लिये बीडी माँगनेमें किसी प्रकारकी लज्जा नहीं होती—इसके लिये भीख माँगनी पड़ती है। तम्बाकू पीनेवाले इतने ज्ञान शून्य हो जाते हैं कि हर कहीं, दूसरोंके घरोंमें, देवालयोंमें, पवित्र स्थानोंमें भी बिना इजाजतके ही चुरुट जलाने लगते हैं और दिलमें जरा भी नहीं शर्माते। नाटक घरोंमें, सभा भवनोंमें, बडे बडे कारखानोंमें, बीडी सिगरेट पीनेकी मनाही होती है लेकिन लोग उनके नियमोंकी कुछ भी पर्वाह नहीं करते। हम उदाहरणार्थ यहाँ यह दिखलाते हैं कि रेलमें तम्बाकू पीना जुर्म है। देखिये—

"Any person smoking without the consent of his fellow-passengers, in a compartment or in a carriage not specially provided for the purpose is liable to a fine which may extend to Twenty

Rupees Any person who persists in so smoking after being warned to desist may be removed by any Railway servant from any such carriage and from the premises of the Railway (Sec 110 of Railway Act)

यद्यपि रेलके डिब्बेमें बिना साथियोंकी आज्ञाके तम्बाकू पीनेवाले पर २०) रु० जुर्मानेका विधान रेलवे एक्टमें है, तथापि हम देखते हैं कि यह एक्ट पुस्तकमें ही है, कोई भी इसको पर्वाह नहीं करता। तात्पर्य यह कि इसके पीनेवाले ज्ञान शून्य हो जाते हैं, उन्हें इसकी धुनमें भला बुरा कुछ भी नहीं सूझता!! बीड़ी चुरुट पीनेवालेको यदि कुछ समयके लिये बीडी तम्बाकू न मिले तो वे किसी कामके नहीं रहते। स्वर्गीय टाल्सटायने लिखा है कि—

"एक मनुष्यने अपनी स्त्री का खून करनेका इरादा किया। उसने छुरी निकाल ली, मारनेको तय्यार हुआ, अन्तमें पछताकर पीछे हट गया। फिर चुरुट पीने बैठ गया, उसके विषसे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और उसने उठकर अपनी स्त्रीको छुरी मारकर मार डाला।"

उक्त महाशय तो यहाँ तक लिखते हैं कि "तम्बाकू एक ऐसा सूक्ष्म नशा है कि वह कितने ही अंशमें शराबसे भी बुरा माना जाना चाहिये।" डाक्टर आर० टी० ट्राल एम० डी० लिखते हैं—"मेरी सम्मतिमें वह मनुष्य जो तम्बाकू सेवन

करता है कदापि पति या पिता बननेके योग्य नहीं है। अपनी स्त्रीके सामने इस प्रकार बेहया और निर्लज्ज होनेका उसे कुछ भी अधिकार नहीं है, और अपने बच्चोंको निर्बल, तथा चिर-रोगी बनानेका भी उसे कोई हक नहीं है। शराबसे भी अधिक भयानक और नवयुवकोंमें अधिक प्रचलित तम्बाकू सेवनकी आदत है। तम्बाकू सेवनसे जो चुस्ती मालूम होती है, अन्तमें वह उसके सेवन करनेवालेको मिट्टीमें मिला देती है।"

डाक्टर अलनस साहबका कहना है कि—"तम्बाकू सेवन करनेवालोंको पाण्डुरोग हो जाय और उनका रुधिर सूख जावे तो कोई आश्चर्य नहीं। तम्बाकूसे अजीर्ण होता है—रक्त सूख जाता है और शरीर काँटासा हो जाता है। रुधिर ही जीवनका कारण है, जिसके कम होनेसे निर्बलता होकर यदि क्षय बन बैठे तो आश्चर्य ही क्या ?"

डाक्टर एडवर्ड साहब लिखते हैं—"तम्बाकूसे मृगी, स्वर-भङ्ग, जीर्णज्वर, छाती और सिरमें दर्द, कम्पवात, शिरोविभ्रम, अजीर्ण, नाड़ीव्रण, उन्माद आदि कई रोग हो जाते हैं।"

डाक्टर ब्राउन साहब कहते हैं—"तम्बाकू पीने या सूँघनेसे मन्द दृष्टि, शिर शूल, मूर्छा, अफरा, निर्बलता, गलापड़ना, कम्पवायु, भूतोन्माद, तथा कई ऐसे ही रोग होनेका भय है।"

डाक्टर कार्न एम० डी० लिखते हैं कि—"तम्बाकूके साथ शराबका ऐसा सम्बन्ध है, जैसा कि दिनके साथ रातका।"

डाक्टर फाविन साहिब लिखते हैं—"रोगोंको पैदा करनेवाली बहुत सी आदतोंमेंसे शराब और तम्बाकूकी टेव मुख्य हैं। जो शराब और तम्बाकू पीते हैं, उनसे कदापि विवाह मत करो यह मेरा, मेरी बहिनोंको उपदेश है। सुस्ती, रोगोंका होना, बुरी हालत रहना, शोक, अचानक मृत्यु, जिगर और फेफड़ोंके रोग, तम्बाकू और शराब पीनेवालोंके साथ छायाकी तरह रहते हैं। बहिनो! यदि आमरण अविवाहित रहनेका मौका आवे तो सहर्ष रहो, लेकिन तम्बाकू और शराब पीनेवालेके साथ कदापि अपना विवाह सम्बन्ध मत होने दो।"

न्यूयार्क (अमेरीका) की तम्बाकू विरोधिनी सभाने प्रकाशित किया है कि—"तम्बाकू खाने पीनेसे थूककी वे थैलियाँ सूख जाती हैं जिनमें कि थूक बनकर तय्यार होता है। इस कारण तम्बाकू सेवनके बाद अन्य किसी मादक द्रव्यके पान करनेकी इच्छा होती है।"

डाक्टर अलसनने लिखा है कि—"तम्बाकू मुखके थूकको सुखा देती है और जब प्यास लगती है तब किसी नशेदार पेयको पीकर तृष्णा शान्त करनेकी इच्छा होती है।"

आयुर्वेद महामहोपाध्याय श्री० शङ्करदासजी शास्त्रीने अपनी "आर्यभिषक" पुस्तकमें लिखा है कि—"तम्बाकू सेवनसे मनुष्यको बहुत हानि होती है लेकिन वह समझमें नहीं आती। तम्बाकू खानेसे मुखमें बदबू उत्पन्न हो जाती है और दाँतोंको हानि पहुँचती है। बलगम उत्पन्न होता है, आँखोंको हानि

होती है और पित्त भडकता है। छातीमें कफ पैदा होता है और कलेजा जल जाता है।"

धार्मिक दृष्टिसे मादक पदार्थोंका सेवन प्रत्येक धर्ममें मना है। पुराणोंमें इसे गोरक्तसे उत्पन्न बताकर पौराणिकोंके लिये निषेध है। जैनियोंके धर्म ग्रन्थोंमें तमाकू सेवन पाप है। आठवें पोप आवर्त और नवें पोप अनफेण्टने तम्याकूके विरुद्ध कठोर नियम बनाये हैं अतएव ईसाई धर्ममें तम्याकू सेवन धर्म नहीं है। तुर्किस्तान और बर्लिनमें तमाकू सेवन एक बडा भारी पाप है। पारसी धर्ममें इसका सेवन पाप माना गया है। सिक्खोंमें तो तम्याकू छूना भी बडा भारी पाप माना है। लिखनेका तात्पर्य यह, कि तम्याकू, जिसका कि पृथ्वीपर इतना प्रचार है, अत्यन्त बुरी तथा आर्थिक, धार्मिक और आयुर्वेदीय दृष्टिसे अस्पृश्य एवं त्याज्य वस्तु है। भारतवर्ष जैसे उष्ण देशमें तम्राकू हमारे देशवासियोंके स्वास्थ्यको बर्बाद कर रही है। नये नये रोगोंकी सृष्टि करके मौतके मुखमें डाल रही है। वीर्य सम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करनेवाली यह तम्याकू ही है। यदि स्वास्थ्यरक्षा करना चाहते हो तो सबसे पहिले तम्राकू आदि मादक पदार्थों का सेवन छोडो।

यद्यपि चाय, काफी, कोको प्रभृति मादक पदार्थ हैं किन्तु इन्हें खराब ठहराकर लोगोंको समझा देना असम्भव है। लोग भले ही मानें या न मानें परन्तु ये वस्तुएं दूषित अवश्य है। आश्चर्यकी बात है कि चाय आदि पदार्थों का हमारे उष्णदेशमें

भी इतना अधिक प्रचार हो गया, कि मेहमानो और मित्रता भी आजकल चायकी पत्तियोंमें ही समाई हुई है। कोई मेहमान आया या दोस्त मिला, तुरन्त ही चायके एक प्यालेसे उसका सत्कार किया जाता है। चायकी पार्टियाँ दी जाती हैं! लार्ड कर्जनके जमानेसे तो चायने हमारे देशमें खूब अच्छी तरहसे पञ्जा जमा लिया है। यदि चायमें दूध और शक्कर न डाली जावे तो उसमें पोषक तत्व बिलकुल नहीं है। चाय एक प्रकारका नशा है किन्तु इसे बाप बेटे खूब आनन्दसे निर्लज्जता पूर्वक पीते हैं। मातापिता अपने बालकोंको जबरदस्ती पिलाते देखे गये हैं। लोग कहते हैं कि इससे शरीरमें गर्मी रहती है, सर्दीके दिनोंमें पीनेसे जुकाम, बुखार वगैर. का भय नहीं रहता। इसके पीनेसे शरीरमें फुर्ती रहती है इत्यादि। ये सब बातें पीनेके लिये गढी गई हैं। परन्तु थोडे वर्षों पहिले जब हमलोग चायको जानते तक भी नहीं थे तब क्या लोग रातदिन जुकाम, बुखार और क्षुल्नोंमें ही पड़े रहते थे? हमारे पूर्वज धन्य थे, जिनके समयमें तम्बाकू चाय, काफी, कोको आदि निकृष्ट पदार्थोंका यहाँ नामोनिशान भी नहीं था। हमलोग इतने अविद्याके चङ्गुलमें फँसे हुए हैं कि बिना अपना हानि-लाभ विचारे ही पश्चिमीय लोगोंको देखादेखी बुरी से बुरी वस्तुको भी काममें लाने लगते हैं।

जितना प्रचार चायका हुआ उतना काफी और कोकोका नहीं हुआ। इसका कारण यह है, कि हमारे भाग्यसे ये

महँगे हैं, परन्तु बडे बडे घरोंमें इनका अधिक आदर सत्कार होता है। चाय एक प्रकारका नशा है, क्योंकि जिन्हें इसका व्यसन हो जाता है, उनसे फिर यह छूट नहीं सकतो। और समय पर यदि नहीं मिले तो वे किसी कामके नहीं रहते—मुर्देसे हो जाते हैं। चायसे पाचन शक्ति खराब हो जाती है, सिर दर्द होने लगता है, मुंह पीला पड़ जाता है, संग्रहणी और अतिसार हो जाता है, निर्बलता हो जाती है। चायके व्यसनीका वीर्य पतला पड़ जाता है। इंग्लैण्डके वेटरसी म्यूनीसिपेलिटीके डाक्टरने बडे अनुभवके बाद यह बात जानी है कि "उसके मुहल्लोंमें हजारों स्त्रियोंके ज्ञान तन्तु चाय पीनेके कारण खराब हो गये हैं।" लोग भले हो मानें या न मानें किन्तु इतना तो निश्चय है कि चाय, काफी, और कोको मनुष्यके समापवर्त्ती पक्के शत्रु हैं। इन्हें सेवन करके कोई भी व्यक्ति आरोग्य और दीर्घायुकी आशा स्वप्नमें भी न करे।

चायकी जगह यदि आप चाहें तो दूधमें खौलते समय तुलसीके २ पत्ते डालदे—आगसे नीचे उतार कर उन पत्तोंको दूधमें मसल दे। यह चायसे भी उत्तम गुण रखनेवाला पेय है। चायके भक्त इसे आजमा कर देखले। महात्मा गान्धीजी अपनी "आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान" नाम्नी पुस्तकमें लिखते हैं कि—"गेहुओंको खूब साफ कर लेना चाहिये। फिर उन्हें कढ़ाईमें डाल कर आगपर सेंकिये, जब वे अत्यन्त सुर्ख होकर

कुछ कुछ काले पड़ जावें, तब उन्हें साधारण बारीक (काफीकी चक्कीमें) दल लेना चाहिये। इस दलियेको एक चम्मच भर लेकर उसमें खौलता हुआ पानी डाल दीजिये, यदि इसे एक मिनिट तक चूल्हे पर रखा जावे तो बहुत ही अच्छा होगा। यदि इच्छा हो तो आवश्यकतानुसार दूध शक्कर मिलाकर, नहीं तो वैसे ही पी सकते हैं। यह चाय, काफी और कोकोकी गरज पूरी करेगा। इससे पैसा भी बचेगा और तन्दुरुस्ती भी बचेगी। यह अत्यन्त पुष्टिकारक है और चाय तथा काफीके स्वादसे इसका स्वाद भी बहुत कुछ मिलता है।

चाय, काफी और कोको अधिकांश शर्त्त बन्दीके बन्धनमें फँसे हुए हमारे भारतीय मजदूरोंकी मेहनतसे पैदा होते हैं। जहाँ ये पैदा होते हैं वहाँके मजदूरोंके साथ जैसा अन्याय होता है, उसे यदि हम अपनी आँखोंसे देख ले, तो हम इन चीजोंका स्वप्नमें भी नामतक न लेवे। इनपर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे गये हैं। हिन्दी भाषामें "प्रवासी भारतवासी" नाम्नी पुस्तक पढ़कर इस विषयका ज्ञान सम्पादन किया जा सकता है। तात्पर्य यह कि चाय, काफी और कोको सब तरहसे त्याज्य वस्तुएं हैं।

खुराक कितनी बार और कितनी खानी चाहिये? इस विषयपर विचार करनेकी भी जरूरत है। इसमें डाक्टरोंके अलग अलग विचार हैं। शारीरिक श्रम करने वाले जिस खुराकको पचा सकते हैं मानसिक श्रम करनेवाले

खुराकको कदापि नहीं पचा सकते। यह बात एक मानी हुई है, कि सबल और निर्बल मनुष्यकी खुराकका वजन बराबर नहीं हो सकता। बलवान व्यक्ति दिनमें कई बार खाकर भी अपनी खुराक हज्म कर सकता है, परन्तु दुर्बल एक बार खाकर भी अच्छी तरह नहीं पचा सकता। स्त्री और पुरुषोंके आहारमे भी अन्तर है। स्त्रियाँ अधिक और पुरुष कम खाते हैं। बडों और बच्चोंके आहारमें भी भेद होता है। ऐसी स्थितिमें खुराकका परिमाण बता देना कठिन बात है।

एक डाक्टर महाशयने शरीरके वजन परसे खुराकका वजन बताया है। यह बात भी कुछ अनुचित सी ही जान पडती है। डाक्टरोंका कहना है कि निन्यानवे प्रतिशत मनुष्य आवश्य कतासे ज्यादा खुराक खा लेते हैं। इसका कारण हमारे मसालेदार स्वादुयुक्त पदार्थ हैं। वास्तवमें मनुष्यको अपनी अपनी पाचनशक्तिके अनुसार अपनी खुराक कायम करनी चाहिये। इसमें डाक्टर, वैद्य, हकीम और पण्डितोंकी सम्मति लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। नमक मिर्चसे रहित, साधारण खुराकको अपनी जठराग्निमें पचाकर अपनी खुराकका अन्दाज लगा लेना चाहिये। जिस प्रकार अधिक भोजनसे स्वास्थ्य नष्ट होता है, उसी तरह अल्प भोजनसे भी मनुष्य निर्बल हो जाता है। हमें हमारी खुराकके लिये, देश और कालका ध्यान रखना भी बहुत जरूरी है। कई स्थान ऐसे होते हैं, जहाँ अग्नि मन्द पड जाती है और कई स्थान ऐसे हैं जहाँके जल-वायुसे अग्नि

प्रदीप्त हो जाती है। शीत ऋतुमें अग्नि प्रदीप्त रहती है तो वर्षा और ग्रीष्ममें मन्द हो जाती है।

सबसे पहिली बात तो हमें यह याद रखनी चाहिये, कि हमें अपनी खुराक खूब चबाकर खानी चाहिये। यह दीर्घायुका मूल मन्त्र है। खुराक खूब चबाकर खानी चाहिये—यह आज्ञा निम्न वेद-मन्त्र भी दे रहा है—

"यद्गिरामि सं गिरामि समुद्रइव संगिरः।
प्राणानमुष्य संगीर्य संगिरामो अमुं वयम्।"

अथर्व ६। १३५। ३

अर्थात्—"जो कुछ वस्तु मैं खाता हूं, उसे वैसे पचा लेना चाहिये जैसे समुद्र पचा सकता है। (अमुष्य) उस पदार्थके (प्राणान्) जीवन तत्वोंको (संगीर्य) चबाकर (अमुम्) उसको (सम्) विधिपूर्वक (वयम्) हम (गिराम) खावें।" तात्पर्य यह कि खुराक खूब चबाकर खानी चाहिये। चबानेका तात्पर्य दो चार दांत मारनेसे नहीं है बल्कि खुराक को इतना चबाना चाहिये कि वह मुंहमें घुलकर बिलकुल थूक बन जावे। इस तरह चबाकर खाई हुई वस्तु अत्यन्त पौष्टिक, गुणदायक और स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। जिन्हें हमारे इस कथनमें सन्देह हो, वे पहिले अपनेको तौल लें और हमारे लिखे मुआफिक एक महीने चबाकर खानेके बाद अपनेको तौलें तो अवश्य ही शरीरका वजन बढ़ जायगा। थूकमें पाचन करनेकी शक्ति है। अतएव अपनी खुराकमें थूक खूब मिल जाये इस

बातका ध्यान रखना चाहिये। जो लोग अपनी खुराकको कम चबाकर खाते हैं वे लोग दाँतोंका काम आँतोंसे लेते हैं। आँतोंका काम केवल इतना ही है, कि खुराकको पचाकर उसका रस बनादे। आँतोका काम उसे फोडना, कूटना, पीसना, या कुचलना नहीं है। आँतें सिर्फ खुराकको मथकर उसमेंसे सार भाग ग्रहण करके शेषको मल बना देती हैं। यदि आप विना चबाये किसी अन्नको खालेंगे तो वह पाखानेमें ज्योंका त्यों निकल आवेगा। इससे सिद्ध होता है कि आँतोंका काम केवल रस निकालनेका है, न कि चबानेका। इसलिये हमें चाहिये कि हम अपनी खुराकको इतनी चबाकर आँतोंको दें कि उन्हें कुछ भी परिश्रम न हो और वे सहजहीमें उत्तम रस निकाल कर शरीरको दे सकें। बडे बूढे लोग कहा करते हैं कि अन्नको ३२ दाँतोंसे खाना चाहिये अर्थात् कमसे कम बत्तीस बार चबानेके बाद ही ग्रासको गलेके नीचे उतारना चाहिये। चबाकर खानेवालेको कम खुराक ही उतना बल प्रदान करती है जितना कि विना चबाये, लोग खाकर प्राप्त करते है। जो लोग खूब चबा चबाकर खाते हैं, उनका दस्त दुर्गन्ध रहित, चिकना, सूखा, बँधा हुआ, थोडा और काले रंगका होता है। जिनका ऐसा दस्त न हो उन्हें समझना चाहिये कि पेटमें उत्तम पाचन नहीं होता है। दस्तसे भी अधिक या कम खुराकका अन्दाज लगाया जा सकता है। परिमाणसे अधिक खानेवालेको अच्छी नीन्द नहीं आती, बुरे स्वप्न आते

ं, और प्रातःकाल नींदसे उठनेपर जिह्वाका स्वाद बिगड़ा आ रहता है। बहुतसे लोगोंके श्वासोच्छ्वासमें बदबू रहती है, सभी अधिक खुराक खानेकी निशानियाँ हैं।

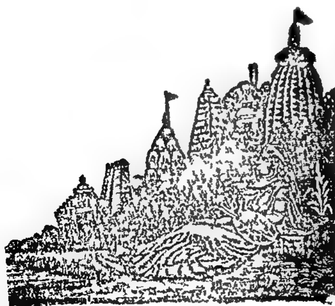
जो लोग अधिक खाते हैं, उनके मुँह पर फोड़े फुन्सी, मुहाँसे, कीले आदि हो जाती हैं। रक्त बिगड़ जाता है, उदर सम्बन्धी अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं। खट्टी खट्टी डकारें आती रहती हैं। शरीर सुस्त रहता है, खाद बहुत आता है, पेट भारी रहता है और दर्द करता रहता है। पेटका बोलना भी अधिक खुराकको सूचित करता है। जिन लोगोंको ऐसी हालत हो, उन्हें यह समझ लेना चाहिये, कि हमारा पेट बिगड़ गया है और हम बीमार हैं। जिन्हें अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनी हो, उन्हें दावतें और ज्योनारोंकी बातें नहीं करनी चाहिये। हमें हमारे पेटके चार भाग करके दो हिस्से भोजनके लिये, एक हिस्सा जलके लिये, और एक हिस्सा श्वासोच्छ्वास-की क्रियाके लिये खाली रखना चाहिये।

हमारे पूर्वजोंने हम अधिक भोजियोंके लिये उपवास, रोज़े, आदि मुकर्रर कर दिये हैं। उपवास स्वास्थ्यके लिये बड़ी ही आवश्यक वस्तु है। प्रति सप्ताह एक दिन अवश्य उपवास करना चाहिये। उपवासका अर्थ सिवाय जलके कुछ भी नहीं खाना है। फलाहार, कलाकन्द खाना, दूध पीना, शर्बत ठण्डाई पीना उपवास नहीं है। ऐसे उपवास कभी नहीं करने चाहियें; क्योंकि इनसे स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। उपवासका

लङ्घन है—लंघनोंसे ही लाभ होता है! एक अंग्रेज प्रति सप्ताह उपवास करता था। जिससे उसने १०० वर्षसे अधिक आयु पाई। आज कल उपवास-चिकित्सा द्वारा बडे बडे रोग हटाये जाते हैं और उपवासपर बड़े बडे ग्रन्थ लिखे गये हैं। आरोग्यके लिये उपवासकी बडी ही आवश्यकता है। वर्षाऋतुमें हिन्दू लोग एक बार ही खानेका व्रत लेते हैं, यह बडी ही अच्छी बात है। इस बातमें आरोग्यता भरी हुई है। जब हवामें नमी होती है और सूर्य नहीं दिखाई पडता, तब जठराग्नि मन्द हो जाती है—अतएव ऐसे ऋतुमें जरा सोच समझकर ही खाना अच्छा है!

कितनी बार खाना चाहिये, अब इस विषयपर यहाँ विचार करना चाहिये। हिन्दुस्तानी लोग, मजदूरोंको छोडकर प्राय. चौबीस घण्टोंमें केवल दो बार ही खाते हैं। अंग्रेज लोग दिनमें कई बार भोजन करते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। अब तो अमेरिका और इग्लैण्डमें ऐसी सभाएँ स्थापित हो गई हैं जो मनुष्योंको दो बारसे अधिक भोजन करनेके लिये रोकती हैं। इस विषयपर डाक्टर ड्यूईने एक उपयोगी पुस्तक भी लिखी है। भोजन प्रात काल १० और ११ बजेके भीतर ही कर लेना चाहिये और सायंकाल को ७ और ८ बजेका समय ठीक होता है। सुबह बहुत जल्दी और रात्रिको बहुत देरसे भोजन नहीं करना चाहिये। खास करके रात्रिका भोजन देरसे नहीं करना चाहिये क्योंकि निद्रितावस्थामें जठराग्नि भी शिथिलता पूर्वक

ी करती है। जो कुछ भी खाना हो, दो ही वक्तमें खा लेना
हिये। भोजनके पश्चात् दिन भर मुंह चलाते रहनेसे स्वास्थ्य
ब हो जाता है—पाचन शक्ति कम हो जाती है। दिनभर
न कुछ खाते रहनेकी आदत बहुत ही बुरी है—यदि ऐसी
त पड़ गई हो, तो उसे शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये। भोजन
' एक ही समयपर करना चाहिये। एक दिन नौबजे, दूसरे
दस बजे और तीसरे दिन १२ बजे इस प्रकार नहीं खाना
ये। भोजनके बाद काममें लग जाना चाहिये। सोना,
ा, गाना, इत्यादि ठीक नहीं है। लोगोंको भोजन—
के विषयमें अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये, क्योंकि
थ्य और दीर्घायु इसीपर अवलम्बित है।



वस्त्राभूषण

जिस तरह खुराक पर हमारी आरोग्यता निर्भर है, उसी तरह वस्त्रोंसे भी हमारे स्वास्थ्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज कल लोग वस्त्र अपने स्वास्थ्यके लिये नहीं पहनते हैं, बल्कि फेशन और शोभाके लिये पहिनते हैं। बहुतसे लोग गर्मीके दिनोंमें इतने कपड़े लादे फिरते हैं, कि जाडेके दिनोंमें भी उन्हें पहिननेसे शायद पसीना आ जावे। बहुतसे महीन कपडेके शौकीन पौष और माघके खूब जाडे में भी मलमलका कुरता पहिनकर इधर उधर अपना फेशन दिखाते फिरते हैं। यद्यपि इस तरहके महीन वस्त्रोंमें लोग ठिठुर कर ठाकुर बन जाते हैं तथापि मोटे वस्त्र नहीं पहिनते क्योंकि फेशनमें बट्टा आता है!! बाजारमें जितने भी वस्त्र मिलते हैं, उन सबोंमें अधिकतया फेशनसे ही भरे हुए हैं। स्वास्थ्य-रक्षाकी दृष्टिसे अधिकाश वस्त्र नहीं बनाये जाते हैं। फेशन नहीं बिगडनी चाहिये, स्वास्थ्य भले ही बिगड जावे। दर्जी और रगोंका कलप शरीरको स्पर्श करके विविध रोग उत्पन्न करता है। रङ्गीन कपडे भी स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त हानिकारक होते हैं, क्योंकि रङ्ग प्राय ऐसी वैसी वस्तुओंसे ही तय्यार होते हैं। आज ससार फेशनके लिये लाखों रुपये व्यर्थ ही खर्च रहा है

लेकिन स्वास्थ्यके लिये कुछ पैसा लगाना लोगोंको अच्छा नहीं लगता। एक आदमी कपड़ेवालेकी दूकान पर जाकर अपने पहिननेके लिये कपड़े खरीद रहा है—उसमें उसे खूबसूरतीका ध्यान रहेगा। खूबसूरत वस्त्रके लिये कुछ अधिक पैसे भी दे डालेगा, किन्तु उस वस्त्रसे स्वास्थ्यको हानि होगी या लाभ—इस बातका उसके दिलमें खयाल तक भी नहीं होगा।

विदेशी स्त्रियाँ शोभाके लिये ही इस तरहके कपड़े धारण करती हैं कि जिनसे कमर और पैर कसे हुए रहें। चीनी स्त्रियोंके पैर इतने छोटे कर दिये जाते हैं, कि हमारे बच्चोंके पैर भी उनसे कहीं बड़े होते हैं। भारतवर्षमें भी हमारी बहिनें ऐसे वस्त्र और आभूषण पहिनती हैं कि जो उनकी तन्दुरुस्तीको नष्ट करते रहते हैं। पैरोंमें ऐसे मोटे मोटे कड़े पहिनती हैं जिनसे टखनेके पास पाँव बिलकुल पतला रह जाता है और ऊपर नीचे मोटा हो जाता है। हाथोंमें जो चूड़ियाँ पहिनती हैं, उनकी स्वच्छता न रहनेसे अधिकाश स्त्रियोंकी चूड़ियोंमें बदबू आती रहती है। शोभाके लिये नाकमें छेद किया जाता है और बहुतेरी औरतोंके कान बालियाँ पहिननेके लिये चलनी बना दिये जाते हैं। राजपूताना, मालवा, तथा पञ्जाबकी स्त्रियाँ सिरमें आभूषण पहिनती है, जिनके लिये उन्हें अपने सिरको बाँध जूड़कर रखना होता है। इसलिये कितने ही दिनोंतक सिर नहीं धोया जाता और उसमेंसे सड़ाँध आने लगती है। सारांश

कि हमें वस्त्राभूषण धारण करते समय अपने आरोग्यका कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

वस्त्र पहिननेकी मनुष्यको आवश्यकता है या नहीं—यह बात सबसे पहिले विचार करने योग्य है। प्राकृतिक नियमोंको देखते हुए, यदि वस्त्र पहिननेकी आवश्यकता है तो केवल इतनी ही है कि स्त्री पुरुष अपने गुह्य भागको ढाँक लें। बाकी सारा शरीर हवामें खुला रहना चाहिये। जो खुले बदन रहते हैं, उनका चमड़ा सहनशील और मजबूत बन जाता है। हमारे शरीर पैदा होनेके समयसे ही वस्त्रोंमें लपेट दिये जाते हैं। इसलिये हम वस्त्रोंके इतने गुलाम हो गये हैं कि हम अपने शरीरको नंगे रखना आज असभ्यता समझते हैं। जो लोग सदा उघाड़े शरीर रहते हैं उन्हें ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि कोई ऋतु हानि नहीं पहुँचा सकती। हम अपने "वायु" प्रकरणमें पीछे लिख आये हैं, कि नाकके अतिरिक्त हम ... रोम कूप द्वारा भी हवा जाती आती है। ई ... इन छि ... इसीलिये बनाया है, कि ... पहुँचने दें। कितने ...

इस

स्वास्थ्य

पहुँचा

आलसी बना दिया या यों कहिये कि हम आलसी होकर वस्त्र धारण करने लगे। अब भी आप देखेंगे, कि जो लोग मेहनती हैं वे अधिक वस्त्र नहीं पहिनते और जो आलसी हैं, वे ही अधिक कपड़े पहिनते हैं।

कोई यह कहे कि बिना वस्त्रके शीत, ग्रीष्म आदि ऋतुएँ नहीं निकल सकतीं। यह कपडे पहिननेके लिये एक बहाना है। आप बहुतसे लोगोंको और अधिकतर साधु सन्तोंको देखेंगे कि वे हरेक ऋतुमें उघाड़े शरीर रहते हैं। उनके शरीर भी हम वस्त्र धारियोंसे पुष्ट, दृढ और स्वस्थ्य देखते हैं। जो लोग बिलकुल उघाडे शरीर नहीं रह सकते, उन्हें चाहिये कि ऋतुओंकी परवाह न करते हुए अपने शरीरको किसी एक वस्त्र से ढकें। अभ्यास हो जाने पर अच्छा आनन्द मिलता है। शरीर पर जिस वस्त्रको आप धारण करें, वह ढीला होना चाहिये ताकि हवा रोम छिद्रों द्वारा भी शरीरमें अच्छी तरह प्रवेश कर सके। इस पुस्तकके लेखकको भी आजसे कुछ वर्ष पूर्व बहुत वस्त्र पहिननेकी आदत थी। उस समय अनुभव किया गया, कि इतने वस्त्र पहिननेसे सिवा हानिके लाभ बिलकुल नहीं है। अब वह एक कुरतेमें और एक धोतीमें बिना किसी कष्टके सब ऋतुओंमें रहनेका अभ्यासी हो गया है। पूस कड़ाकेके शीतमें, जेठ बैशाखकी धूपमें और बरसते पानीमें नंगे सिर और नंगे पाँवों सिर्फ दो वस्त्रोंमें वह बहुत समय तक रहकर भी कोई कष्टका अनुभव नहीं करता। अभ्यास बढो

वस्तु है। जो लोग अधिक वस्त्र पहिन कर सुखी बने हुए हैं, वास्तवमें वे दुखी हैं, तभी इतने वस्त्र ओढ़ पहिनकर अपने जीर्णशीर्ण स्वास्थ्यकी रक्षा करनेमें लगे रहते हैं। ऐसे लोग वर्षा, ग्रीष्म और शीतसे बड़े ही भयभीत रहते हैं। यह उनकी निर्बलताका सूचक है। यदि सबल और स्वस्थ रहनेकी इच्छा हो तो अधिक वस्त्र पहिननेकी आदतको धीरे धीरे छोड़ दीजिये। संक्षिप्तमें हमारे इस लिखनेका यह साराश है, कि गुह्य स्थानोंको छुपाकर नग्न रहना सबसे उत्तम दशा है। इस दशाको ही हमलोग ऋषि-जीवन, पवित्र जीवन मानते हैं। मध्यम दशा उन लोगोंकी है जो बहुत कम वस्त्र धारण करते हैं। और ऐसे लोग जो बहुत कपड़े पहिनते हैं, स्वास्थ्य संसारमें उनका दर्जा तीसरा है। जिन्हें उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवनकी इच्छा हो, उन्हें पोशाक बहुत सोच समझकर ही पहिननी चाहिये। घरमें अधिकाश उघाड़े बदन रहकर, और बाहिर जाते समय वस्त्र धारण करनेवाले व्यक्ति भी उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। अगर उघाड़े बदन घरके बाहिर जाना असभ्यता है तो घरमें अधिकतर उघाड़े शरीर रहना चाहिये। इससे भी शरीर बहुत कुछ स्वस्थ्य रहता है।

वास्तवमें देखा जावे तो प्रकृतिने हमें चर्मरूपमें उत्तम पोशाक प्रदान की है। यह बात हँसी उड़ानेकी नहीं है बल्कि बहुत ही विचारने की है। हमारे घरू कुत्तोंके शरीरपर बाल होते हैं और जङ्गली कुत्तोंके बाल बहुत बड़े होते हैं।

न्योलेके शरीरपर बड़े बड़े बाल हैं तो बिल्लीके शरीरपर छोटे छोटे रोम हैं। शेरके शरीरपर छोटे छोटे पशम होते हैं तो रीछके बदन पर चार चार छ छ अंगुल लम्बे बाल पाये जाते हैं। बकरीको देखिये, उसके शरीरपर छोटे छोटे बाल हैं, परन्तु भेड़ीके लम्बे लम्बे बाल हैं। इसका क्या कारण है? क्या आपने कभी इस विषयपर बुद्धि दौड़ाई है? इस प्रकारकी रचना व्यर्थ नहीं है, प्रकृतिके कार्योंमें पोल और अन्धेर नहीं है। जब कि अन्य प्राणी बिना कपड़े लत्ते पहिने ही अपना जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत करते हैं, तब मनुष्यका वस्त्रोंमें अपने शरीरको छुपाना मानों ईश्वरकी रचनामें दोष बताना है। ज्यो ज्यों हम लोगोंके पास रुपया पैसा बढ़ता जाता है त्यों त्यों हम अपनेको कपड़े लत्तोंसे तथा जेवरोंसे सजाते जाते हैं। खूबसूरतसे खूबसूरत वस्त्र भूषण पहिनकर—अपनेको रूपवान बनाकर, अपने रूप लावण्यका बड़ा ही गर्व करते हैं। वास्तवमें देखा जावे तो जो कुछ रूप लावण्य नग्नावस्थामें है, वह सजावटमें नहीं है। जो प्रकृतिके नियमोंको लाँघकर, वस्त्रा-भूषण, मांगपट्टी, तिलक टोपीसे अपने शरीरको खूबसूरत बनाते हैं, वे अपने रूपको बदरूप बनाते हैं। इस बातको साधारण आदमियोंकी अपेक्षा कवि, चित्रकार कुछ शाघ्र ही समझ सकेंगे। जितने भी सजधजके प्रेमी आप देखेंगे उन्हें अत्यन्त निर्बल पायेंगे। ऐसे लोग अपने जीवनको भार समझकर जैसे तैसे व्यतीत करते रहते हैं। जो मनुष्य उघाड़े शरीर रहता है उसे

वस्तु है। जो लोग अधिक वस्त्र पहिन कर सुखी बने हुए हैं, वास्तवमें वे दुखी हैं, तभी इतने वस्त्र ओढ़ पहिनकर अपने जीर्णशीर्ण स्वास्थ्यकी रक्षा करनेमें लगे रहते हैं। ऐसे लोग वर्षा, ग्रीष्म और शीतसे बड़े ही भयभीत रहते हैं। यह उनकी निर्बलताका सूचक है। यदि सबल और स्वस्थ रहनेकी इच्छा हो तो अधिक वस्त्र पहिननेकी आदतको धीरे धीरे छोड़ दीजिये। संक्षिप्तमें हमारे इस लिखनेका यह साराश है, कि गुह्य स्थानोंको छुपाकर नग्न रहना सबसे उत्तम दशा है। इस दशाको ही हमलोग ऋषि-जीवन, पवित्र जीवन मानते हैं। मध्यम दशा उन लोगोंकी है जो बहुत कम वस्त्र धारण करते हैं। और ऐसे लोग जो बहुत कपड़े पहिनते हैं, स्वास्थ्य संसारमें उनका दर्जा तीसरा है। जिन्हें उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवनकी इच्छा हो, उन्हें पोशाक बहुत सोच समझकर ही पहिननी चाहिये। घरमें अधिकाश उघाड़े बदन रहकर, और बाहिर जाते समय वस्त्र धारण करनेवाले व्यक्ति भी उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। अगर उघाड़े बदन घरके बाहिर जाना असभ्यता है तो घरमें अधिकतर उघाड़े शरीर रहना चाहिये। इससे भी शरीर बहुत कुछ स्वस्थ्य रहता है।

वास्तवमें देखा जावे तो प्रकृतिने हमें चर्मरूपमें उत्तम पोशाक प्रदान की है। यह बात हँसी उड़ानेकी नहीं है बल्कि बहुत ही विचारने की है। हमारे घरू कुत्तोंके शरीरपर बाल कम होते हैं और जङ्गली कुत्तोंके

न्योलेके शरीरपर बड़े बड़े बाल हैं तो बिल्लीके शरीरपर छोटे छोटे रोम हैं। शेरके शरीरपर छोटे छोटे पश्म होते हैं तो रीछके बदन पर चार चार छ छ अंगुल लम्बे बाल पाये जाते हैं। बकरीको देखिये, उसके शरीरपर छोटे छोटे बाल हैं, परन्तु भेड़ीके लम्बे लम्बे बाल हैं। इसका क्या कारण है? क्या आपने कभी इस विषयपर बुद्धि दौड़ाई है? इस प्रकारकी रचना व्यर्थ नहीं है, प्रकृतिके कार्योंमें पोल और अन्धेर नहीं है। जब कि अन्य प्राणी बिना कपड़े लत्ते पहिने ही अपना जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत करते हैं, तब मनुष्यका वस्त्रोंमें अपने शरीरको छुपाना मानों ईश्वरकी रचनामें दोष बताना है। ज्यों ज्यों हम लोगोंके पास रुपया पैसा बढ़ता जाता है त्यों त्यों हम अपनेको कपड़े लत्तोंसे तथा जेवरोंसे सजाते जाते हैं। खूबसूरतसे खूबसूरत वस्त्रा भूषण पहिनकर—अपनेको रूपवान बनाकर, अपने रूप लावण्यका बड़ा ही गर्व करते हैं। वास्तवमें देखा जावे तो जो कुछ रूप लावण्य नग्नावस्थामें है, वह सजावटमें नहीं है। जो प्रकृतिके नियमोंको लाँघकर, वस्त्रा-भूषण, मांगपट्टी, तिलक टोपीसे अपने शरीरको खूबसूरत बनाते हैं, वे अपने रूपको बदरूप बनाते हैं। इस बातको साधारण आदमियोंकी अपेक्षा कवि, चित्रकार कुछ शीघ्र ही समझ सकेंगे। जितने भी सजधजके प्रेमी आप देखेंगे उन्हें अत्यन्त निर्बल पायेंगे। ऐसे लोग अपने जीवनको भार समझकर जैसे तैसे व्यतीत करते रहते हैं। जो मनुष्य उघाड़े शरीर रहता है उसे

अपने शरीरके सौन्दर्य वर्द्धनार्थ ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य रक्षाका ध्यान रखना पड़ेगा। जो लोग वस्त्राभूषणोंकी भड़क दिखानेमें रहते हैं, उन्हें अपने शरीरकी उतनी अधिक चिन्ता नहीं रहती, क्योंकि वह कपड़े लत्तोंके भीतर छुपा रहता है। मुहँको, तेल फुलेल लगाकर—मांगपट्टी काढ़कर, तिलक छापे लगाकर खूबसूरत बनाये रहते हैं, लेकिन प्राकृतिक सौन्दर्यका उनके मुखपर नामोनिशाँ भी नहीं होता! यहाँ यह बात न भूलिये कि—

"नाराणाम् भूषण रूपम् रूपाणाम् भूषण गुण।"

जो बात हम पोशाकके विषयमें लिख आये हैं। वही बात जेवरोंके विषयमें भी है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक आभूषण पहिनती है। धनाढ्य लोग यदि सोने चाँदीके जेवर पहिनते हैं, तो गरीब लोगोंकी स्त्रियाँ पीतल और काँसेके ही पहिनती हैं। पुरुष अधिकाश हाथोंमें कड़े, पैरोंमें लङ्गर, कानोंमें मुरकी, भेले, गलेमें डोरे कण्ठी और हाथोंमें अँगूठियाँ पहिनते हैं। ये सब अपवित्रताके घर है। औरतें जेवर क्या पहिनती है, वे अपने शरीरपर मैल चढ़ाती हैं। कितने खेदकी बात है, कि उन्होंने इस गन्दगीको ही अपना शृङ्गार मान लिया है!!! प्राय देखा गया है कि कान पक गये हैं लेकिन स्त्रियोंने बालियाँ नहीं निकालीं। हाथमें फोड़े फुन्सी हो गई है, बुरी तरह सड़ रहे हैं, लेकिन चूड़ियाँ नहीं निकल सकतीं! अँगुली पककर कीड़े भले ही पड़ जाये परन्तु क्या मजाल जो अँगूठी

निकाली जावे। ऐसे लोग भी आज भारतमें बहुत मिलेंगे। सबसे पहिला और अच्छा काम है तो, वह यह है कि आवश्यकतासे अधिक वस्त्र और जेवरोंका पहिनना छोड़ दिया जावे। आरोग्यताका यही मुख्य मन्त्र है।

आजकल तो पोशाकके विषयमें कुछ कह देना ही असम्भव नहीं तो अशक्य है। लोगोंकी एक पोशाक नहीं है। भारतमें कई पोशाक पहिनी जाती हैं क्योंकि सारे देशका जलवायु समान नहीं है। अपनी अपनी आवश्यकताके अनुसार लोगोंने अपनी अपनी पोशाकें तैयार की थीं। परन्तु पश्चिमीय लहरने लोगोंको दूसरी ओर ही बहा दिया। अपना रोब जमानेके लिये तथा मान प्राप्तिके लिये लोग कमीज वेस्टकोट, कोट, पेंट, और हैट तक पहिनते हैं। इन कपड़े लत्तोंके पहिननेवालोंके लिये ही जेण्टलमेन (Gentleman) शब्द काममें लाया जाता है। हमें यहाँ इस विषयपर अधिक लिखनेका अधिकार नहीं है, अतएव सिर्फ इतना ही लिख देना समझदारोंके लिये काफी होगा कि योरोप जैसे ठण्डे देशकी पोशाक भारत जैसे उष्णदेश तथा धार्मिक देशके लिये कदापि लाभप्रद नहीं हो सकती। पतलूनको ही हम यहाँ उदाहरणार्थ लेते हैं। सबसे पहिली दिक्कत तो यह है, कि उसे पहिन कर जमीन पर बैठ जाना बड़ा ही मुश्किल है। दूसरे पेशाब करनेमें बड़ी ही कठिनाई होती है। योरोपियन लोग तो हाथमें एक बरतन लेकर उसमें खड़े खड़े मूत लेते हैं परन्तु भारतका कोई भी हिन्दू या मुसलमान

इस कार्यको अच्छा नहीं कहेगा। खडे होकर पेशाब करनेसे छींटे उडते हैं, जो हिन्दू और मुसलमान दोनोकी दृष्टिमें अपवित्रता है। भारतवर्षकी प्रत्येक जातिका पहनावा अलग अलग था किन्तु इस योरोपके पहिनावेने तो गजब ढा दिया है। ब्राह्मण, क्षत्री आदि वर्ण और हिन्दू, मुसलमान आदि सभी जातियोंने इसे थोडे बहुत रूपमें अपनाया है। कमीजपर वास्कट, अङ्गरखी पर कोट, कमीज और कोट पर पगडी, पतलून पर देशी जूते, धोतीपर अंग्रेजी टोप पहिने भी बहुतसे मूर्ख लोग हमारी दृष्टिमें आये हैं। यह न जाने कहाँका फैशन है? इन सब परिस्थितियो पर विचार करते हुए यही तात्पर्य निकलता है कि भारत वर्षके लिये किसी एक प्रकारकी पोशाकको निश्चित कर देना बिलकुल असम्भव है।

हमलोग अधिकांश अपने सिरको ढके रहते हैं। देशमें मूर्खता इतनी बढ़ गई है, कि नङ्गे सिर रहना अशकुन गिना जाता है। सिरपर जो चीज रहती है उसे ही "इज्जत" कहते हैं। जिसके सिरपर कुछ नहीं होता, वह वेइज्जत गिना जाता है। यह कितनी अज्ञानता है! मानसिक निर्बलताके कारण यदि हमेशा नंगे सिर रहना आपकी शक्तिके बाहिर है तो, जहाँ भी मौका मिले वहाँ सिर उघाडा ही रखिये, इसीमें फायदा है। यदि बचपनसे सिरपर बडे बाल रखनेका अभ्यास हो तो फिर सिरके बाल नहीं कटाने चाहियें। सिरपर बाल रखनेवाले यद्यपि आजकलकी पुरुष सभ्यतामें जङ्गली गिने जावे गे तथापि बाल रखना

बड़ा ही उत्तम है। आजकलकी यह नवीन सभ्यता सच्ची सभ्यता नहीं है। यहाँ यह वेदमन्त्र विचार करने योग्य है।

"दृंह प्रत्नान् जनयाजातान् जातानु वर्षीयसस्कृधि।"

अथर्व ६। १३६। २

(प्रत्नान्) पुराने बालोंको (दृंह) दृढ़कर (अजातान्) बिना हुओंको (जनय) पैदाकर और (जातान्) जो हैं उन्हें (वर्षीयस) बहुत लम्बे (कृधि) कर। इसके बाद यह मन्त्र देखिये—

"अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेया।
केशा नडाइव वर्धन्ता शीर्ष्णस्ते असिता परि॥"

अथर्व ६। १३७। २

(केशा) बाल (अभीशुना) अँगुलीसे नापनेयोग्य और फिर (व्यामेन) दोनों भुजदण्डसे (अनुमेया) नापने योग्य (आसन्) हो गये हैं। वे (असिता) काले रहकर (ते) तेरे (शीर्ष्णः) सिरसे (नडाइव) नरकट घासकी भाँति (परिवर्धन्ताम्) अच्छी तरह बढ़े।

वेदमें बालोंका बढ़ाना उत्तम माना है। साथ ही वेदमें हजामत बनानेकी आज्ञा भी है। देखिये—

"यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा, वप्ता वपसिकेशश्मश्रु।
शुभं मुखं मान आयुः प्रमोषी॥" अथर्व ८। २। १७

(यत् सुतेजसा मर्चयता क्षुरेण) जब तेज और उत्तम तथा खर्र खर्र शब्द करनेवाले उस्तरेसे (वप्ताकेशश्मश्रु वपसि) तू नाई बालोंको काटता है तब हमारा (शुभं मुखं) शुभ

मुख बनता है। परन्तु हजामतके साथ (न आयु: म(प्रमोषी·) हमारी आयुका नाश मत करो।"

वेदमें दोनों बातोंकी आज्ञा है परन्तु बाल मुंडानेसे आयुका घटना माना है। और बाल रखनेमें किसी तरहका झगडा नहीं है। मूर्ख नाइयों द्वारा हजामत बनवाने वाले दाद, खाज, फोडे फुन्सी, गंज आदि रोगोंमें फँस जाते हैं, यह एक मानी हुई बात है। हम इस विषयमें अपना अधिक अनुभव नहीं रखते। हाँ, इतना कह सकते हैं कि हमारे ऋषि मुनि जटाधारी होते थे और वे दीर्घायु क्या परमायु पाते थे! यदि बाल न कटाये जावें तो अच्छी बात है बशर्ते कि बाल रखनेसे शरीरको कोई हानि न हो। बहुतसे लोगोंको जिन्हें लम्बे बाल रखनेकी आदत नहीं होती, उन्हें बाल रखनेपर सिर दर्द, नकसीर, दृष्टि-माद्य आदि रोग हो जाते हैं। इसलिये लोगोंको अपनी शारीरिक प्रकृतिके अनुसार ही इस बातका निश्चय कर लेना चाहिये। बाल बढाकर उन्हें कटवा कर ठीक बनवाते रहना और उनमें पट्टियाँ पाडना जङ्गलीपनही मालूम होता है। बढ़ाये हुए बालोंमें धूल, मैल और जूँ लीख आदि जीव नहीं होने पावें इस बातका अधिक विचार रखना चाहिये। पगडी बाँधनेवाला व्यक्ति अंग्रेजोंकी तरह बाल बढावे और माँगपट्टी पाडे यह मूर्खता का चिह्न है!

पैरोंमें जूते पहिनने चाहियें या नहीं यह बात भी विचारणीय है। बूट वगैर पहिननेवालोंके पैर कोमल हो जाते हैं।

उनमेंसे पसीना निकलता है और दुर्गन्ध पैदा हो जाती है। बूट और मोजे पहिननेवालोंको यह बात उतनी कष्टप्रद नहीं होती जितनी कि एक शुद्ध वायुमें रहने वालेको सिर दर्द पैदा कर देती है। इस तरहके जूते पहिनना अपने हाथों अपने स्वास्थ्यको नष्ट करना है। जहाँतक हो सके पावोंको सदा नंगे रखना ही उत्तम है। यदि काँटों, झाड़ोंमें तथा ग्रीष्मकालकी तपती हुई पृथ्वी पर चलनेका काम पड़े तो पादुका—खड़ाऊँ तथा चपरखियोंका उपयोग अवश्य अवश्य, केवल पाँवके तलवोंकी रक्षाके लिये प्रबन्ध कर लेना चाहिये। इस प्रकारकी जूतियाँ बाजारसे तलाश करके काममें लाना चाहिये। पैरोंमें पसीना आना स्वास्थ्यके लिये बहुत ही बुरा है। जिन्हें सिर दर्द रहता हो, या निर्बलता अधिक हो, उन्हें कुछ दिनतक नंगे पावों चलकर अनुभव कर लेना चाहिये। लकड़ीकी खड़ाऊ बहुत अच्छी वस्तु है। बूट, लाँग बूट आदि पहिनना भारत-वर्षके लिये आर्थिक और शारीरिक हानि पहुचाता है। हाथोंमें दस्ताने, पैरोंकी जुर्राबें भारतवासियोंके कामकी वस्तु नहीं हैं। इन्हें त्यागना ही उत्तम है। जिन्हे दीर्घायु तथा उत्तम स्वास्थ्यकी आवश्यकता है, उन्हें हमारे इस लिखनेपर अच्छी तरह विचार करनेके पश्चात् अपने वस्त्राभूषणोंमें यथावश्यक सुधार शीघ्र ही करना चाहिये।*

---

*वस्त्र विषयक अधिक बातें जाननेकी इच्छा हो तो मेरी लिखी हुई "खादीका इतिहास" नाम्नी पुस्तक पढ़िये। लेखक—

किसी दूसरेके पहिने हुए वस्त्र और जूते नहीं पहिनने चाहियें। गौतम स्मृतिमें लिखा है कि—

"अन्य धृतं वासोन विभृयात्।" दूसरेका पहिना हुआ वस्त्र नहीं पहिनना चाहिये। मनुजी कहते हैं—

"उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्नधारयेत्।
उपवीत फलङ्कार स्त्रज करक मेवच॥" ६६ श्लो० ४ अ

दूसरोंके पहिने हुए जूते और वस्त्र नहीं पहिनने चाहिये। यही बात भीष्मजीने महाभारतमें अपनी दीर्घायु पानेके अन्य कारणोंके साथ गिनाई है। मैले वस्त्र कदापि नहीं पहिनने चाहियें। पोशाक भले ही फटी हुई हो, लेकिन स्वच्छ और पवित्र होनी चाहियें। मैले कपडे पहिनने वालेको चर्मरोग हो जाते हैं। बहुतसे लोग ऊपरका वस्त्र अत्यन्त साफ सुथरा पहिनते हैं और शरीरको स्पर्श करनेवाला अत्यन्त गन्दा रखते हैं। यह स्वास्थ्यके लिये बडी बुरी बात है। कपडा भलेही मैला न हो, परन्तु शरीरसे जो दूषित वायु निकलता हैं उससे वह २। ३ दिनमें खराब हो जाता है। अतएव दूसरे तीसरे दिन उस वस्त्रको जो शरीरको स्पर्श करनेवाला है, अवश्य धो डालना चाहिये। जो बहुत वस्त्र रख सकते हैं वे लोग धोबीसे धुलालें और जिनके वस्त्र कम हों उन्हें अपने हाथों धो डालना चाहिये। थोडासा आलस्य त्यागनेसे यह काम अच्छी तरह हो सकता है। वस्त्रोंको खौलते हुए पानीमें डाल देना और भी अच्छा है। आशा है, पाठक इस बातका हमेशा ध्यान रखेंगे।

आरोग्यता

आरोग्यताकी परिभाषा सर्वसाधारणकी समझमें एक नये ढंगकी ही है। लोगोंने अच्छी तरह खाने पीने और चलने फिरनेको ही आरोग्यता समझ ली है। लेकिन आरोग्यता इन शब्दोंमें सीमाबद्ध नहीं हो चुकी है। यह तो कुछ और ही वस्तु है। बहुतसे लोग आप ऐसे पायेंगे जो रोगसे पीड़ित हैं, किन्तु उन्हें हम स्वस्थ समझ रहे हैं। कुछ लोग रोगकी परवाह नहीं करते और रोगी दशामें ही अपनी जिन्दगी व्यतीत करते रहते हैं। कुछ लोग रोगी होनेपर भी अपने रोगको लोगोंपर प्रकट नहीं होने देते। यदि यह कह दिया जाये तो अनुचित न होगा कि इस लोकमें शायद ही कोई मनुष्य तन्दुरस्त हो।

रोग शब्दका अर्थ :—दोष, बीमारी, पेग, इल्लत, उपद्रव, धातु अथवा दोषोंके वैषम्यमें उत्पन्न व्याधि इत्यादि है। रोग दो प्रकारके होते हैं—शारीरिक और मानसिक। एक अंग्रेज कहता है कि—"निरोग वही कहा जा सकता है, जिसके शुद्ध शरीरमें शुद्ध मन हो।" यह बिलकुल सत्य है। शरीर और मनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि यह शरीर पुष्प है तो सुगन्ध

आत्मा है। शरीर तो स्थूल पदार्थ है, इसके भले बुरे होनेसे मनुष्यका भला या बुरा होना नहीं पाया जा सकता, अत्यन्त बदसूरत भी बडे बडे महापुरुष पाये जाते हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्यका चरित्र ही उसके भले बुरेकी पहिचान है। मान-लीजिये कि शरीर बिलकुल स्वस्थ है और उसका मन दुर्व्यसनोंमें संलग्न है, तो क्या हम ऐसे मनुष्यको नीरोग मान सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। और यदि मन पवित्र है परन्तु शरीर व्याधि मन्दिर है, तो वह भी स्वस्थ नहीं है। जो लोग चरित्र-वान होते हैं, और शरीरसे भी नीरोग होते हैं, वे ही वास्तवमें नीरोगी कहे जा सकते हैं। टेसूका फूल बडा ही मनमोहक तथा नयनाभिराम होता है, किन्तु उसे कोई भी पसन्द नहीं करता। इसी तरह जो मनुष्य शरीरसे सुन्दर हो किन्तु दुश्चरित्र हो तो उससे कोई भी प्रेम नहीं करता।

यह एक बात बिलकुल मानी हुई है, कि जिनका मन स्वस्थ है, उसीका शरीर भी स्वस्थ है और जिसका शरीर स्वस्थ है उसीका मन भी स्वस्थ है। दोनोंका रात और दिनकी तरह घनिष्ट सम्बन्ध हैं। परन्तु इन दोनोंमें शरीरकी अपेक्षा मनका महत्व बहुत है अतएव सबसे प्रथम आरोग्य मनकी जरूरत है। यदि शरीर अस्वस्थ भी रहा तो स्वस्थ और बलवान मन बिना किसी औषधके उसे नीरोग कर सकता है। साराश यह कि जिसे स्वस्थ रह कर दीर्घायु पानेकी इच्छा हो, उसे सबसे पहिले अपने मनको स्वस्थ—दोष रहित बना लेना चाहिये।

मनकी शक्ति कोई साधारण शक्ति नहीं है! यह बात मत भूलिये कि—

मन एव मनुष्याणाम् कारण बन्ध मोक्षयो ।" मै० उ०६।३४

किसी कविने ठीक ही कहा है कि, बिगड़े हुए मनकी आज्ञामें कभी नहीं रहना चाहिये क्योंकि—

मनलोभी, मन लालची, मन चञ्चल, मन चोर।
मनके कहे न चालिये, पलक पलक मन और।"

जिसका मन, लोभी, लालची, चञ्चल और चोर हो, उसे अपने ऐसे अस्वस्थ मनके कहनेमें नहीं चलना चाहिये। येही मनकी बीमारियां है। एक मनुष्य चोर है—क्या ऐसा मनुष्य नीरोग कहा जा सकता है। क्रोधी मनुष्यको कोई भी स्वस्थ नहीं कहेगा, क्योंकि उसके मनको क्रोध रूपी भयङ्कर रोग लगा हुआ है। ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, गर्व, मात्सर्य, आलस्य, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, जुआ, कुसङ्ग, परनिन्दा, मूर्खता, वैर, भय, चिन्ता, आदि बहुत सी बीमारियाँ मनकी हैं। जिसका शरीर बिलकुल स्वस्थ हो और मन ऊपर लिखे हुए मानसिक रोगोंसे अथवा किसी अन्य रोगसे बीमार हो तो वह मनुष्य स्वस्थ है, ऐसा कदापि नहीं माना जा सकता।

स्वस्थ मनुष्य वही हैं, जिसका शरीर न तो भङ्ग है और न जिसके अधिक शरीरमें अधिक अङ्ग हैं। आँख कान दुरस्त हैं, नाकसे अधिक श्लेष्मा, रातदिन न बहता हो, शरीरसे निर्गन्ध पसीना निकलता हो, दांत साफ हों, मुखमेंसे बदबू न

आत्मा है। शरीर तो स्थूल पदार्थ है, इसके भले बुरे होनेसे मनुष्यका भला या बुरा होना नहीं पाया जा सकता, अत्यन्त बदसूरत भी बड़े बड़े महापुरुष पाये जाते हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्यका चरित्र ही उसके भले बुरेको पहिचान है। मान लीजिये कि शरीर बिलकुल स्वस्थ है और उसका मन दुर्व्यसनोंमें सलग्न है, तो क्या हम ऐसे मनुष्यको नीरोग मान सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। और यदि मन पवित्र है परन्तु शरीर व्याधि मन्दिर है, तो वह भी स्वस्थ नहीं है। जो लोग चरित्रवान होते हैं, और शरीरसे भी नीरोग होते हैं, वे ही वास्तवमें नीरोगी कहे जा सकते हैं। टेसूका फूल बड़ा ही मनमोहक तथा नयनाभिराम होता है, किन्तु उसे कोई भी पसन्द नहीं करता। इसी तरह जो मनुष्य शरीरसे सुन्दर हो किन्तु दुश्चरित्र हो तो उससे कोई भी प्रेम नहीं करता।

यह एक बात बिलकुल मानी हुई है, कि जिसका मन स्वस्थ है, उसीका शरीर भी स्वस्थ है और जिसका शरीर स्वस्थ है उसीका मन भी स्वस्थ है। दोनोंका रात और दिनकी तरह घनिष्ट सम्बन्ध है। परन्तु इन दोनोंमें शरीरकी अपेक्षा मनका महत्व बहुत है अतएव सबसे प्रथम आरोग्य मनकी जरूरत है। यदि शरीर अस्वस्थ भी रहा तो स्वस्थ और बलवान मन बिना किसी औषधके उसे नीरोग कर सकता है। सारांश यह कि जिसे स्वस्थ रह कर दीर्घायु पानेकी इच्छा हो, उसे सबसे पहिले अपने मनको स्वस्थ—दोष रहित बना लेना चाहिये।

मनकी शक्ति कोई साधारण शक्ति नहीं है! यह बात मत भूलिये कि—

मन एव मनुष्याणाम् कारण बन्ध मोक्षयो ।" मै० उ०६।३४

किसी कविने ठीक ही कहा है कि, बिगड़े हुए मनकी आशामें कभी नहीं रहना चाहिये क्योंकि—

मनलोभी, मन लालची, मन चञ्चल, मन चोर ।
मनके कहे न चालिये, पलक पलक मन और ।"

जिसका मन, लोभी, लालची, चञ्चल और चोर हो, उसे अपने ऐसे अस्वस्थ मनके कहनेमें नहीं चलना चाहिये। येही मनकी बीमारियाँ है। एक मनुष्य चोर है—क्या ऐसा मनुष्य नीरोग कहा जा सकता है। क्रोधी मनुष्यको कोई भी स्वस्थ नहीं कहेगा; क्योंकि उसके मनको क्रोध रूपी भयङ्कर रोग लगा हुआ है। ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, गर्व, मात्सर्य, आलस्य, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, जुआ, कुल्लड़, परनिन्दा, मूर्खता, वैर, भय, चिन्ता, आदि बहुत सी बीमारियाँ मनकी हैं। जिसका शरीर बिलकुल स्वस्थ हो और मन ऊपर लिखे हुए मानसिक रोगोंसे अथवा किसी अन्य रोगसे बीमार हो तो वह मनुष्य स्वस्थ है, ऐसा कदापि नहीं माना जा सकता।

स्वस्थ मनुष्य वही है, जिसका शरीर न तो भद्दा है और न जिसके अधिक शरीरमें अधिक वस्त्र हैं। आँख कान दुरुस्त है, नाकसे अधिक श्लेष्मा, रातदिन न बहता हो, शरीरसे निर्गन्ध पसीना निकलता हो, दाँत साफ हो, मुखमेंसे बदबू न

आती हो, पैर गन्दे नहीं हों, हाथ पाँव आदि सबल हों, विषया सक्त न हो, इन्द्रियाँ अधीन हों, चोरी, व्यभिचार, क्रोध आदि न हो। इस प्रकारका स्वास्थ्य ही दीर्घायुका देनेवाला है।

औषधियाँ खा पीकर स्वास्थ्य सुधारने वाले लोग भूल करते हैं। औषधियोंसे शरीर आरोग्यता प्राप्त कर सकता है ऐसा मानना ही भ्रम है। देखिये डाक्टर लोग क्या कहते हैं!

डाक्टर मेजेन्डी—"वैद्यक कोरा ढोंग है।"

डाक्टर बेकर—"रोगसे जितने रोगी मरते हैं, उससे अधिक रोगी उसकी दवासे मरते देखे जाते हैं।"

डाक्टर टामस वाटसन—"बहुतसे ऐसे प्रश्न हैं, कि जिनका उत्तर हमारा डाक्टरी सिद्धान्त नही दे सकता।"

डाक्टर मेसनगुड—"प्लेग, हैजा, महामारी, शीतला आदि रोगोंसे जितने लोग नहीं मरते, उतने इन रोगोंकी दवाओंसे मरते देखे गये हैं।"

डाक्टर फ्रैंक—"हमारे इन औषधालयोंसे सहस्रों मनुष्योंकी मृत्यु होती रहती है।"

डाक्टर पस्टली—"वैद्यक शास्त्र केवल अटकल पच्चू ही चल रहा है।"

इत्यादि! बहुतेरे डाक्टरोंका कहना है कि औषधसे रोग हटाया नहीं जाता बल्कि दबाया जाता है। जो लोग दवाओंके प्रेमी हैं, उन्हें दवादारूसे सर्वथा बचनेका ध्यान रखना चाहिये। यह देखा गया है, कि एक बार जिसके घरमें दवाको उदरमें

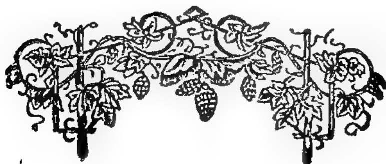
धारण करके श्रीशीतल देवीने पदार्पण किया कि फिर उस घरसे वह बाहर नहीं निकलतीं!

आप लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि "नीम हकीम खतरे जान।" इतना जान बूझकर भी हकीमों, वैद्यों और डाक्टरोंके घर हम लोग ढूढते फिरते हैं, यह कैसी मूर्खता है? आज हमारी दृष्टिमें सभी "नीम हकीम" हैं। क्या आप किसी डाक्टर, वैद्य, या हकीमपर पूर्ण विश्वास रखकर कह सकते हैं कि "यह पूरा वैद्य है।" मेरा तो ऐसा अनुमान है कि भले ही आप दवा खा रहे हैं लेकिन आपको भी उस दवापर पूरा विश्वास नहीं होता। आज संसारमें पूर्ण वैद्य तो कोई नहीं दिखाई देता। तभी तो कहा है कि—

"भेषज जाह्नवी तोयम् वैद्यो नारायणो हरि।"

यह बड़ा ही उत्तम उपदेश है। लोगोंको वैद्योंसे उतना ही भय मानना चाहिये जितना कि शेर, चीते, भेड़िये आदि हिंसक जन्तुओंसे। आज हमारे देशमें ऐसे पाखण्डी वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंकी कमी नहीं है, जिन्हें शारीरिक ज्ञान बिलकुल नहीं है और झूठ मूँठ लोगोंकी नाड़ी देखकर उन्हें मनमानी दवा दे डालते हैं, जिससे बेचारा रोगी मृत्युके मुखमें पहुंच जाता है। आज जितने भी वैद्य हैं सब ९९ प्रतिशत धन कमानेके लिये वैद्य बने हुए हैं। रोगी भारत हतबुद्धि सा हो कर मूर्ख वैद्योंकी तरफ मृग तृष्णाकी भाँति दौड़ कर दिन दिन रोगी होता जा रहा है। विज्ञापनबाजोंके तूफानमें देश

हो रहा है। एक एक पैसेकी चीजके लोग दस दस रुपये ले रहे हैं॥ तात्पर्य यह कि हमारे भाइयोंको अब इन वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंके जालसे बचना चाहिये और प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा तथा हमारे बताये हुए नियमों द्वारा सदैव आरोग्य रहकर पूर्णायु प्राप्त करना चाहिये। दवाओंसे डरते रहिये, इन्हें अपना जानी दुश्मन समझ कर त्याग दीजिये। जल चिकित्सा, उपवास चिकित्सा, और मिट्टी आदिके उपचारोंसे रोगोंको हटाइये। इन चिकित्साओंकी अलग अलग पुस्तकें आप बाजारसे मोल ले सकते हैं, इसलिये यहाँ हम इन चिकित्साओं पर कुछ नहीं लिखते। यदि थोडा बहुत लिखें तो पुस्तकके बहुत बढ जानेका भय है अतएव अब हम इतना लिखकर ही अपनी पुस्तकको समाप्त करते हैं कि इस पुस्तकके अनुसार नियम पूर्वक चलनेसे आपको डाक्टरों, हकीमों, और वैद्योंके घर नहीं जाना पडेगा तथा जीवन भर स्वस्थ और निरोग रहकर दीर्घायु प्राप्त कर सकेंगे।



दीर्घायु पानेके उपाय

(१) सूर्योदयके चार घड़ी पहिले उठ खड़े होना चाहिये।

(२) उठते ही बिछौनेमें बैठकर ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमें शुभमार्ग पर चलनेकी सद्बुद्धि दे।

(३) शौचके लिये जङ्गलमें गाँवसे बहुत दूर जाइये।

(४) जिधरकी हवा हो, उस ओर मुख करके पाखाना बैठना चाहिये।

(५) चौबीस घण्टे अर्थात् १ दिनमें २ बार से अधिक शौच नहीं जाना चाहिये। क्योंकि दो बार से अधिक रोगकी निशानी है।

(६) पाखाना जाते वक्त सिरको रूमालसे या किसी अन्य वस्त्रसे बाँध लेना चाहिये।

(७) पाखानेमें जोर लगाकर मल त्यागना अच्छा नहीं है।

(८) पाखाना जाते समय मुहं बन्द रखना चाहिये।

(९) अपवित्र हाथोंको तथा मलमूत्रके द्वारोंको, मलत्यागनेके बाद खूब मिट्टी लगाकर धोना चाहिये।

(१०) पाखानेसे आकर भोजन नहीं करना चाहिये। पाखानेमें और भोजनमें आध घण्टेका अन्तर अवश्य होना चाहिये।

(११) पेशाब करनेके बाद मूत्रेन्द्रियको जलसे धोकर शुद्ध करना चाहिये।

(१२) व्यायामके बादमें पेशाब कर देना चाहिये।

(१३) पेशाबके बाद जल नहीं पीना चाहिये, बल्कि जल पीना हो तो पहिले जल पीलेना चाहिये।

(१४) रात्रिको सोनेके पहिले जल पीकर तथा पेशाब करके सोना चाहिये।

(१५) प्रात काल शय्या त्यागते ही आधसेरके करीब जल पीलेना चाहिये।

(१६) सूर्योदयके पूर्व, अथवा सायंकालके ठण्डे समयमें दूर तक वायु सेवनके लिये जाना चाहिये।

(१७) वृक्ष शाखाकी दतूनसे अच्छी तरह दाँत साफ करने चाहियें।

(१८) दाँत, जीभ, तालू, और दाँतोंकी जडको हमेशा शुद्ध रखना चाहिये।

(१९) कसरत नित्य बिला नागा करनी चाहिये।

(२०) आसनोंका अभ्यास भी नित्य करना चाहिये।

(२१) योगाभ्यास नित्य करना चाहिये।

(२२) शुद्ध वायुमें नियम पूर्वक नित्य प्राणायाम करना चाहिये।

(२३) इन्द्रियोंको वशमें करना चाहिये।

(२४) अपनी आत्मापर प्रभुत्व स्थापित करो।

(२५) शुद्ध जलमें अच्छी तरह रगड़ मसलकर स्नान करो।

(२६) सिरपर गर्म जल मत डालो।

(२७) सिरमें मैल मत जमने दो। रीठे, आँवले, नीबू तथा काली, मुलतानी या अन्य किसी प्रकारकी क्षार रहित मिट्टीसे धो डालना चाहिये।

(२८) शरीरपर या सिरपर साबुन मत लगाओ। महीनोंमें यदि साबुन लगानेकी इच्छा हो तो, लगानेके बाद विपुल जलमें अच्छी तरह धो डालो।

(२९) भोजन २४ घण्टोंमें सिर्फ २ वक्त ही करना चाहिये।

(३०) दिन भर कुछ न कुछ खाते रहनेका अभ्यास ठीक नहीं है।

(३१) अपनी खुराकको खूब चबा चबाकर ही खाइये।

(३२) अत्यन्त भूख लगनेपर ही, थोड़ी भूख रखकर भोजन करो।

(३३) हमेशा सादा भोजन करो।

(३४) मिर्च मसालेदार अत्यन्त चटपटा भोजन मत करो।

(३५) इतना ही खाइये कि पाचक, औषध अथवा जुलाब लेकर पेट साफ न करना पड़े।

(३६) हफ्तेमें एक बार निराहार उपवास अवश्य करना चाहिये।

(३७) उपवासके दिन, शर्बत, कलाकन्द, पेड़े, मिठाई,

फल आदि कुछ मत खाओ। आवश्यकता पडने पर जलमें ८।१० बूँदें नीबूके रसकी डालकर पीओ।

(३८) फल हमेशा अधिक खाइये।

(३९) शुद्ध छना हुआ जल पीना चाहिये।

(४०) वर्षा ऋतुमें तो अवश्य ही जलको उबाल कर पीना चाहिये।

(४१) चा, तम्बाकू आदिसे लगाकर शराब तक कोई भी नशा मत करो।

(४२) तङ्ग वस्त्र कदापि मत पहिनो।

(४३) मैले वस्त्रोंको बिना साफ किये काममें मत लाओ।

(४४) शरीरको छूनेवाले वस्त्रको नित्य नहीं तो दूसरे दिन अवश्य धो डालना चाहिये।

(४५) उतरे हुए—दूसरोंके पहिने हुए, कपड़े और जूते मत पहिनो।

(४६) रूमालसे नाक साफ कर उसे जेबमें मत रखे फिरो।

(४७) घरको झाड बुहार कर हमेशा शुद्ध रखो। मकडी छिपकली, खटमल, पिस्सू, मच्छर, मक्खी, साँप, बिच्छू, बर्र, ततैये, चूहे, मेंढक आदि प्राणियोंको घरमें नहीं आने देना चाहिये।

(४८) जहाँतक हो सके चूनेके बने मकानोंमें ही रहो। यदि निर्धनता इसमें बाधक हो तो मकानोंको कलईसे

(४९) घरके आँगनमें तुलसी या
वृक्ष लगाने चाहियें।

(५०) घरमें पाखाने और पेशा
बनाओ। यदि हो तो, उन्हें पानीसे नित्य
रखना चाहिये।

(५१) घरमें चूहे, मेंढक आदि प्रा
कभी उन्हें खानेके लिये साँप घरमें आ
मेंढक आदिको घरमेंसे भगा देना चाहिये

(५२) सूर्यके शुद्ध प्रकाशमें रहनेका

(५३) शुद्ध वायुमें ही निवास करो।

(५४) घरके आसपास कीच, कूडा,
फूस आदि मत रहने दो।

(५५) हमेशा नाकसे ही सबकी तरह
क्रिया करो। मुखसे कदापि साँस मत लो

(५६) खुली हवामें सोनेसे मत डरो।

(५७) मुँह ढक कर कभी मत सोओ

(५८) एक वस्त्रमें दो तीन मनुष्य घुसक

(५९) तङ्ग जगहमें बहुतसे आदमी मत

(६२) तङ्ग जूते मत पहिनो। बन सके तो नंगे पाँव रहो।

(६३) शरीरको हमेशा कपड़ोंमें छुपाये मत रहो। इसे धूप और हवा भी लगने दो।

(६४) जङ्गलकी शुद्ध हवामें बीस पचीस बार नित्य दीर्घ श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करो।

(६५) पहाड़ों पर तथा पहाड़ियोंपर नित्य वायु सेवनके लिये जाना चाहिये।

(६६) हफ्तेमें एक दिन बिलकुल छुट्टी रखो।

(६७) मिट्टी तथा अन्य किसी वनस्पति-विशेषके रङ्गमें रंगे हुए कपड़ोंके अतिरिक्त अन्य रंगीन वस्त्र मत पहिनो।

(६८) आवश्यकतासे अधिक, अनावश्यक वस्त्र कदापि मत पहिनो।

(६९) वर्षाऋतुको छोड़ कर शेष ऋतुओंमें छाता नहीं लगाना चाहिये।

(७०) वासी पदार्थों को मत खाओ।

(७१) वासी पदार्थोंको फिरसे गर्म करके नहीं खाना चाहिये।

(७२) ब्रह्मचर्य कालमें अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालन करो।

(७३) गृहस्थाश्रम पालन करते समय ऋतुगामी रहो।

(७४) पुरुष परस्त्री को मातृ-दृष्टिसे, तथा स्त्रियाँ पर-पुरुषको पिता एवं भाईकी दृष्टिसे देखें।

(७५) बाल विवाह नहीं करना चाहिये।

(७६) जीवन भर वीर्य रक्षा करनी चाहिये।

(७७) कच्चा दूध मत पियो।

(७८) बलवान, निरोग और अच्छी खुराक खानेवाले पशुका ही शुद्ध दूध पिओ।

(७९) मिठाई, खटाईका अधिक सेवन मत करो।

(८०) हलवाइयोंके दोने मत चाटो।

(८१) सिर पर बोझा मत लादो।

(८२) कमर झुकाकर मत बैठो। पृष्ठवंशको सदेव सम रेखामें रखो।

(८३) चलते वक्त गर्दन, पीठ झुकाकर मत चलो। हमेशा सीधे रहकर चलनेका ध्यान रखो।

(८४) प्रत्येक ऋतुमें शीतल जलसे स्नान करना चाहिये।

(८५) मिट्टीके तेलसे धूआँ, पत्थरके कोयलेका धूआँ, चिताका धूआँ तथा अन्य ऐसे ही स्वास्थ्य नाशक धूआँसे अपनेको दूर रखो।

(८६) नित्य दो बार नहीं तो दिनमें एक बार प्रात समय शीतल जलसे अवश्य नहाना चाहिये।

(८७) स्नानके पश्चात् किसो मोटे खुरदरे वस्त्रसे शरीरको खूब रगड कर पोंछ डालना चाहिये।

(८८) मक्खियोंको दूर भगाओ।

(८९) जिन पदार्थों पर मक्खियाँ बैठती हों, उन्हें मत खाओ।

(६२) तङ्ग जूते मत पहिनो। वन सके तो नगे पाँव रहो।

(६३) शरीरको हमेशा कपड़ोंमें छुपाये मत रहो। इसे धूप और हवा भी लगने दो।

(६४) जङ्गलकी शुद्ध हवामें वीस पचीस वार नित्य दीर्घ श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करो।

(६५) पहाड़ों पर तथा पहाड़ियोंपर नित्य वायु सेवनके लिये जाना चाहिये।

(६६) हफ्तेमें एक दिन विलकुल छुट्टी रखो।

(६७) मिट्टी तथा अन्य किसी वनस्पति-विशेषके रङ्गमें रंगे हुए कपड़ोंके अतिरिक्त अन्य रंगीन वस्त्र मत पहिनो।

(६८) आवश्यकतासे अधिक, अनावश्यक वस्त्र कदापि मत पहिनो।

(६९) वर्षाऋतुको छोड़ कर शेष ऋतुओंमें छाता नहीं लगाना चाहिये।

(७०) वासी पदार्थों को मत खाओ।

(७१) वासी पदार्थों को फिरसे गर्म करके नहीं खाना चाहिये।

(७२) ब्रह्मचर्य कालमें अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालन करो।

(७३) गृहस्थाश्रम पालन करते समय ऋतुगामी रहो।

(७४) पुरुष परस्त्री को मातृ-दृष्टिसे, तथा स्त्रियाँ पर-पुरुषको पिता एवं भाईकी दृष्टिसे देखें।

(७५) वाल विवाह नहीं करना चाहिये।

(७६) जीवन भर वीर्य रक्षा करनी चाहिये।

(७७) कच्चा दूध मत पियो।

(७८) बलवान, निरोग और अच्छी खुराक खानेवाले पशुका ही शुद्ध दूध पिओ।

(७६) मिठाई, खटाईका अधिक सेवन मत करो।

(८०) हलवाइयोंके दोने मत चाटो।

(८१) सिर पर बोझा मत लादो।

(८२) कमर झुकाकर मत बैठो। पृष्ठवंशको सदैव सम रेखामें रखो।

(८३) चलते वक्त गर्दन, पीठ झुकाकर मत चलो। हमेशा सीधे रहकर चलनेका ध्यान रखो।

(८४) प्रत्येक ऋतुमें शीतल जलसे स्नान करना चाहिये।

(८५) मिट्टीके तेलसे धूआँ, पत्थरके कोयलेका धूआँ, चिताका धूआँ तथा अन्य ऐसे ही स्वास्थ्य नाशक धूआँसे अपनेको दूर रखो।

(८६) नित्य दो बार नहीं तो दिनमें एक बार प्रात समय शीतल जलसे अवश्य नहाना चाहिये।

(८७) स्नानके पश्चात् किसी मोटे खुरदरे वस्त्रसे शरीरको खूब रगड़ कर पोंछ डालना चाहिये।

(८८) मक्खियोंको दूर भगाओ।

(८६) जिन पदार्थों पर [illegible] हों, उन्हें [illegible]

(९०) मामुली रोगोंको हटानेके लिये दवा मत खाओ। बल्कि खान पान तथा प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही अपने रोगोंको हटाओ।

(९१) बाजारू हेअर आँयल (Hair oil) बालोंमें मत लगाओ। क्योंकि हेअर आँयल प्राय सफेद तेल (White oil) पर तैयार किये जाते हैं।

(९२) दवा खाकर रोग हटानेका प्रयत्न मत करो, बल्कि बिना दवाके ही अन्य उपायोंसे उसे हटा दो।

(९३) सड़े बासे फल मत खाओ।

(९४) खटमल, पिस्सू, मच्छर, आदि रक्तमें विष उत्पन्न करनेवाले जीवोंको भगा दो।

(९५) मास कदापि मत खाओ।

(९६) प्राकृतिक नियमोंका ध्यान रखो और उन्हें भङ्ग न करो।

(९७) चिन्तामें मत पडो।

(९८) दुष्कर्मो से अपनेको दूर रखो।

(९९) भयभीत मत रहो।

(१००) दुखोंको आनन्द पूर्वक हँसते हुए सहन करनेका अभ्यास करो।

(१०१) किसीकी जूठन मत खाओ।

(१०२) बाजारू पेय जैसे, सोडा, लेमोनेड, शर्बत, आइ-आदि नहीं पीने चाहिये।

(१०३) भोजन और स्नानमें तीन घण्टेका अन्तर होना चाहिये।

(१०४) क्रोध नहीं करना चाहिये।

(१०५) दूसरेकी उन्नती देखकर चित्तको कदापि दुखी मत करो।

(१०६) कसरतके आध घण्ट याद ही कुछ खाना पीना चाहिये।

(१०७) दिनमें स्त्रीप्रसग कभी न करो।

(१०८) रजस्वला स्त्रीसे मैथुन न करो।

(१०९) मैथुनोपरान्त पुरुषको पेशाब करना चाहिये।

(११०) दिनमें नहीं सोना चाहिये। ग्रीष्म ऋतुमें यदि थोड़ी देर सो लेवे तो कोई हानि नहीं।

(१११) अधिक न सोओ। रात भर न जागकर नित्य ठीक समय पर सो जाना चाहिये। यह याद रखो कि—"Early to bed and early to rise, makes the man healthy, wealthy and wise" अर्थात् जल्दी सोओ और जल्दी उठो।

(११२) नित्य कोई मनोरञ्जक खेल अवश्य खेलो।

(११३) हँसते रहो, लेकिन बहुत और बनावटी हास्य मत हँसो।

(११४) नित्य नहीं तो प्रति सप्ताह घरमें कोई पदार्थ जलाकर हवा शुद्ध रखनी चाहिये।

(११५) पाखानेकी हाजत और पेशावकी जरूरतको कभी मत रोको ।

(११६) गर्म वस्तु खाकर या पीकर फौरन ही ठण्डा जल मत पियो ।

(११७) कठोर शय्यापर ही शयन करो ।

(११८) ठाले मत बैठो। यह याद रखो कि—"ठाले न बैठो, कुछ किया करो। काम न हो तो पाजामा उधेडकर ि करो।"

(११९) मनको अपने वशमें करो।

(१२०) हमेशा प्रसन्न रहो।

"शुभ मस्तु सर्वजगता, सर्वो भद्राणि पश्यतु।
लोका समस्ता. सुखिनो भवन्तु !"

